हिन्दी कहानियाँ

सम्पादक
डा० श्रीकृष्ण लाल एम्० ए०, डी० फिल
अध्यापक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

डा० रामकुमार वर्मा

के कर-कमलों में

सादर समर्पित

श्रीकृष्ण लाल

परिचय

डा० श्रीकृष्ण लाल का "आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (१६००-१६२५ ई०)" शीर्षक ग्रंथ पढ़ते समय मेरा ध्यान इस ओर गया था कि वर्तमान हिन्दी साहित्य की भिन्न-भिन्न धाराओं के ऐसे गंभीर तथा आलोचनात्मक अध्ययन के उपरान्त डा० लाल प्रत्येक धारा से सम्बन्ध रखने वाले प्रतिनिधि अंशों का संग्रह सरलता से तैयार कर सकते हैं। अतः मेरे व्यक्तिगत अनुरोध से सुयोग्य लेखक ने हिन्दी कहानियों का प्रस्तुत संकलन तैयार करने का कष्ट उठाया। संग्रहकर्त्ता ने निम्नलिखित शब्दों में अपने इस संकलन की विशेषताओं का उल्लेख संक्षेप में किया है—"प्रस्तुत संग्रह के तैयार करने में मैंने इस बात की ओर विशेष ध्यान किया है कि इसमें आधुनिक कहानी के कला पक्ष के क्रमिक विकास का इतिहास जाना जा सके, साथ ही आधुनिक कहानी के विविध कला-रूपों और शैलियों का भी उदाहरण प्रस्तुत किया जा सके। इसके अतिरिक्त मैंने यह भी प्रयत्न किया है कि हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ उच्चकोटि के कहानी-लेखकों की कम से कम एक कहानी संग्रह में दी जा सके जो यदि सर्वोत्तम नहीं तो कम से कम उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक हो।"

ग्रंथ के प्रारम्भ में अत्यन्त परिश्रम से लिखी गई विस्तृत भूमिका ने संकलन का महत्व और भी बढ़ा दिया है। विश्वास है कि हिन्दी कहानियों के अनेक संग्रह के रहते हुए भी यह कृति अपनी विशेषताओं

के कारण हिन्दी पाठक तथा विद्यार्थी-वर्ग दोनों ही के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। डा० रामकुमार वर्मा के अनुरोध से जिन कहानी-लेखकों तथा प्रकाशकों ने अपनी कहानियाँ इस संग्रह में सम्मिलित करने की अनुमति देने की कृपा की उनके प्रति हम लोग विशेष आभारी हैं। मेरी इच्छा है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य की अन्य प्रमुख धाराओं के भी इसी प्रकार वैज्ञानिक संकलन सुयोग्य लेखक तैयार करने का कष्ट करें। ऐसा हो जाने से अपने साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को समझने में हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों को बहुत सहायता मिल सकेगी।

हिन्दी विभाग
विश्वविद्यालय, प्रयाग

धीरेन्द्र वर्मा
वैशाख पूर्णिमा, सं० २०००

सूची

भूमिका

भारतवर्ष में कथा-कहानियों का इतिहास सहस्रों वर्ष प्राचीन है। इसका प्रारम्भ उपनिषदों की रूपक-कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों तथा बौद्ध साहित्य की जातक-कथाओं से होता है। परन्तु आजकल साहित्य के जिस अंग को हम कहानी कहते हैं और जिस प्रकार की कहानी प्रस्तुत पुस्तक में संगृहीत है, उसका इतिहास केवल कुछ ही वर्षों का है। यों प्रयाग की सुप्रसिद्ध मासिक-पत्रिका 'सरस्वती' और काशी के माधव मिश्र द्वारा संपादित 'सुदर्शन' के प्रकाशन के साथ ही साथ १९०० ई० में आधुनिक हिन्दी कहानी का जन्म हुआ था, परन्तु कहानी के आधुनिक कला-रूप का विकास प्रेमचंद के हिन्दी-प्रांगण में प्रवेश करने के साथ १९१५-१६ में हुआ। चंद्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' (सरस्वती, जून १९१५) तथा प्रेमचंद का 'पञ्च परमेश्वर' ('सरस्वती' जून १९१६) हिन्दी की सर्वप्रथम उच्च-कोटि की कहानियाँ हैं और उन्हीं से आधुनिक कलापूर्ण कहानियों की सृष्टि प्रारम्भ हुई। हिन्दी के कला-पूर्ण कहानियों का इतिहास केवल पच्चीस वर्षों का इतिहास है।

कथा-साहित्य का विकास

भारतवर्ष में कथा-साहित्य के विकास के मुख्य तीन युग हैं। प्राचीन काल में उपनिषदों की रूपक-कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों तथा जातक-कथाओं का उल्लेख पहले आ चुका है। ऐति-हासिक दृष्टि से इन कथाओं का महत्व बहुत अधिक है; परन्तु साधारण जनता कहानी को जिस अर्थ में ग्रहण करती है, उस अर्थ में इन

कहानियों का महत्त्व उतना अधिक नहीं है, क्योंकि उनका उद्देश्य मनोरंजन नहीं था, वरन् कहानी के रूप में किसी गंभीर तत्त्व की आलोचना अथवा नीति और धर्म की शिक्षा ही इनका एक मात्र ध्येय था। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने लेख 'कादम्बरी के चित्र' में सत्य ही लिखा है कि;

पृथ्वी पर सब जातियाँ कथा कहानियों को सुनना पसन्द करती हैं; किन्तु केवल प्राचीन भारतवर्ष को ही किस्से-कहानियों का शौक न था। सभी सभ्य देश अपने साहित्य में इतिहास, जीवन-चरित्र और उपन्यासों का संचय करते हैं परन्तु भारतवर्ष के साहित्य में यह बात नहीं देख पड़ती।

[प्राचीन-संस्कृति : इंडियन प्रेस संस्करण पृ० ५७]

वास्तव में संस्कृत-साहित्य में मनोरंजन के लिए लिखी गई कथा कहानियों का बहुत अभाव है। 'वासवदत्ता' 'कादम्बरी' 'दशकुमार-चरित' इत्यादि कुछ इनी-गिनी कथाएँ ही संस्कृत साहित्य की निधि हैं। परन्तु साहित्य में इसका अभाव होने पर भी संभव है साधारण जनता में कथा-कहानियों का प्रचार पर्याप्त मात्रा में हो रहा हो। अवंती नगरी की बैठकों में बैठ कर वृद्ध लोग राजा उदयन की कथा कहते थे, इसका प्रमाण 'मेघदूत' में प्राप्त है। कवि-कुल-गुरु कालिदास ने उन कथाओं का उल्लेख नहीं किया जिससे हम भी उस काल की कहानियों का आस्वादन पा सकते, परन्तु इतना तो निश्चित है कि देश के अन्य भागों में और भी कितने 'उदयनों' की कथा वृद्ध लोग अपने उत्सुक श्रोताओं को सुनाते रहे होंगे। बहुत दिन बाद विक्रमादित्य, भरथरी (भर्तृहरि), मुंज और राजा भोज की कथाएँ भी वृद्ध लोग उसी चाव से अपने श्रोताओं को सुनाते रहे होंगे और मध्य-काल में आल्हा-ऊदल, पृथ्वीराज तथा अन्य शूर-वीरों की कहानियाँ भी उसी प्रकार कथाओं की श्रेणी में सम्मिलित कर ली गई होंगी। ये

कथाएँ मौखिक-प्रथा से निरंतर चलती रहती थीं। इनमें प्रसिद्ध और लोक-प्रचलित राजाओं तथा शूर वीरों की वीरता, प्रेम, न्याय, विद्या, और वैराग्य इत्यादि गुणों का अतिरंजित वर्णन हुआ करता था। 'सिंहासन-बत्तीसी', 'बैताल-पचीसी' तथा 'भोज-प्रबन्ध' इत्यादि कथा-संग्रह उन्हीं असंख्य कहानिओं के कुछ अवशेष-मात्र बच गये हैं।

महाभारत के उपाख्यानों, उपनिषदों की रूपक-कथाओं तथा जातक-कथाओं की परम्परा भी लोप नहीं हुई, वरन् पुराणों में उस परंपरा का एक विकसित रूप मिलता है। इन पुराणों में आर्यों की अद्भुत कल्पना शक्ति ने असंख्य नये देवी देवताओं की सृष्टि की और उनके सम्बन्ध में कितनी ही तरह की कहानियों की सृष्टि हुई। आजकल की बुद्धिवादी जनता उन पौराणिक कथाओं को कपोल-कल्पना कह कर उनकी उपेक्षा और अवहेलना कर सकती है, परन्तु भातरवर्ष की सरल जनता का इन कहानियों पर अटल विश्वास था और इनमें उसे कोई अस्वाभाविकता अथवा अतिशयोक्ति नहीं दिखाई पड़ती थी।

'कादम्बरी' तथा 'दशकुमार-चरित' आदि साहित्यिक रचनाओं में भाषा का आडम्बर और अद्भुत शब्द-जाल, विविध प्रकार के लम्बे-लम्बे वर्णन तथा अवांतर प्रसंग ही अधिक मिलते हैं, कथा सौंदर्य की ओर लेखक की रुचि कम पाई जाती है। इस प्रकार की रचनाएँ हैं भी बहुत कम। इससे जान पड़ता है कि प्राचीन काल में जनता मुख्य दो वर्गों में विभाजित की जा सकती थी—एक शिक्षित द्विजों का वर्ग जो महाभारत के उपाख्यानों, जातक-कथाओं तथा पुराणों की अद्भुत कल्पनापूर्ण कथाओं से अपना मनोरंजन करती थी और दूसरा अशिक्षित शूद्रों, वर्णसंकरों तथा स्त्रियों का वर्ग जो उदयन की प्रेमकथाओं, विक्रमादित्य के पराक्रम और न्याय की अतिरजिंत कहानियों तथा भरथरी, मुंज, भोज, पृथ्वीराज, आल्हा-ऊदल इत्यादि की प्रेम-वीरता तथा विद्या-वैराग्य की कथाओं से अपना मनोरंजन करती थी।

एक बहुत ही छोटा वर्ग उन साहित्यिकों का था, जिन्हें कथा-कहानियों से विशेष रुचि न थी, वरन् कथा-आख्यानों की ओट में अपना पांडित्य-प्रदर्शन करना ही उनका उद्देश्य हुआ करता था।

कथा-साहित्य के विकास का दूसरा युग तेरहवीं शताब्दी से प्रारंभ होता है, जब उत्तर भारत में मुसलमानों का आधिपत्य फैल गया। पंजाब तो महमूद ग़ज़नवी के समय—ग्यारहवीं शताब्दी—से ही मुसलमानी राज्य का एक प्रांत रहा था, परन्तु तेरहवीं शताब्दी में समस्त उत्तरी भारत में मुसलमानों का आधिपत्य हो गया। इतना ही नहीं भारत में मुसलमानों की संख्या बढ़ती ही गई और वे गाँवों तक में अधिक संख्या में बस गए। वे अपने साथ अपनी एक संस्कृति ले आए थे और ले आए थे कथा-कहानियों की एक समृद्ध परम्परा। अरब निवासी अपने साथ 'सहस्त्र रजनी-चरित्र' (Arabian Nights) तक फ़ारसदेश के निवासी अपने देश के प्रेमाख्यान लेते आए थे। यहाँ भारत में पुराणों की कथा-परम्परा सजीव थी। इन परम्पराओं के परस्पर-संपर्क से, आदान-प्रदान से, एक नयी कथा-परम्परा का प्रारंभ हुआ होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। जिस प्रकार धर्म, कला, समाज और संस्कृति के क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान दो महान् जातियों के परस्पर सम्पर्क और आदान-प्रदान से एक नये धर्म और समाज, कला और संगीत, साहित्य और संस्कृति का विकास हुआ, उसी प्रकार अथवा उससे कहीं अधिक विकास कथा-कहानियों की परम्परा में हुआ होगा, क्योंकि कथा-कहानियों का सम्पर्क साधारण जनता का सम्पर्क था, किसी वर्ग विशेष का नहीं। धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा अन्य क्रांतियों का प्रभाव तो तत्कालीन साहित्य और इतिहास में मिल जाता है, परन्तु कथा-कहानियों की परम्परा में जो अद्भुत क्रांति हुई होगी वह बहुत कुछ मूक मौखिक क्रांति थी। साहित्य में, इतिहास में उसका उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों के

प्रेमाख्यानों तथा लोक-प्रचलित अकबर और बीरबल के नाम से प्रसिद्ध विनोदपूर्ण कथाओं में इस परंपरा का कुछ आभास मिल जाता है, जो आगे बढ़ कर अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में मुंशी इंशाअल्लाह खाँ भी 'उदयभान-चरित्र या रानी केतकी की कहानी' के रूप में प्रकट होता है। १८५०-६० ई० के आसपास जब मुद्रण यंत्र के प्रचार से कुछ कथा-कहानियों के संग्रह प्रकाशित हुए, तब 'तोता-मैना', 'सारंगा-सदावृक्ष,' छबीली भठिआरिन', 'गुलबकावली,' 'किस्सए चार यार' इत्यादि कहानियाँ जिन्हें जनता बढ़े चाव से पढ़ती थी, उसी परंपरा की प्रतिनिधि कहानियाँ थीं।

मुसलमान-युग की कहानियों की प्रमुखतम विशेषता उनमें प्रेम का चित्रण है। प्रेम का चित्रण प्राचीन भारतीय साहित्य में भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। कालिदास के नाटक 'शकुंतला' 'विक्रमोर्वशी' और 'मालविकाग्निमित्र'; भवभूति की 'मालतीमाधव'; हर्ष की 'रत्नावली'; शूद्रक की 'मृच्छकटिक' तथा बाण की 'कादंबरी' में प्रेम का ही चित्रण मिलता है। पुराणों में भी गोपियों और श्रीकृष्ण की रासलीला, उषा-अनिरुद्ध और नल-दमयंती की प्रेम-कथाएँ विस्तारपूर्वक वर्णित है। लोक-प्रचलित कहानियों में भी राजा उदयन की प्रेम-कथाएँ बड़े चाव से सुनी जाती थीं। सच बात तो यह है कि गुप्त काल से ही उत्तर भारत में एक ऐसी संस्कृति का विकास हो रहा था, जिसमें प्रेम और विलासिता की ही प्रधानता थी। फिर इधर मुसलमान अपने साथ लैला-मजनू और शीरीं--फरहाद की प्रेम-कथाएँ ले आए थे। दोनों के संपर्क से कहानी की जो नयी परंपरा चल निकली, उसमें प्रेम की प्रधानता स्वाभाविक ही था। प्रेम-मार्गी सूफ़ी कवियों के प्रेमाख्यानों में प्रेम का विशद चित्र देखिए। इन कहानियों का कथानक फ़ारस देश के प्रेमाख्यानों के आधार पर भारतीय वातावरण के अनुरूप कल्पित हुआ। नल दमयंती, उषा-अनिरुद्ध और शकुंतला-दुष्यंत इत्यादि की भारतीय प्रेमकथाओं

के साथ फ़ारसी प्रेमाख्यानों का सम्मिश्रण कर भारतीय वातावरण के अनुरूप आदर्शों की रक्षा करते हुए इसी प्रकार की कितनी ही प्रेम-कहानियाँ जनता में प्रचलित रही होंगी। इन कहानियों में पारलौकिक और विशुद्ध प्रेम से प्रारंभ करके विषय-भोग-जन्य अश्लील प्रेम तक का चित्रण मिलता है। प्रेममार्गी सूफी कवियों के प्रेमाख्यानों में प्रेम का आदर्श विशुद्ध रूप में मिलता है और उसमें स्थान-स्थान पर अलौकिक और पारलौकिक प्रेम की ओर भी संकेत होता है। जायसी के 'पद्मावत' को ही लीजिए—उसमें रतनसेन और पद्मावती का प्रेम कितना विशुद्ध और आदर्श है। मुंशी इंशाअल्लाह खाँ रचित 'रानी केतकी की कहानी' में भी प्रेम का वही रूप मिलता है। धीरे-धीरे समय बीतने पर राजकुमारों और राजकुमारियों के आदर्श और विशुद्ध प्रेम के स्थान पर साधारण प्रेमियों और नायक-नायिकाओं के लौकिक प्रेम का भी प्रदर्शन होने लगा और क्रमशः वासना-जनित भोग और विलास की भी अभिव्यक्ति होने लगी। 'छबिली भठियारिन' 'तोता-मैना' और 'गुलबकावली' इत्यादि कहानियों में इसी लौकिक प्रेम तथा भोग-विलास का चित्रण मिलता है।

इस युग की कहानियों की दूसरी विशेषता हास्य और विनोद की अवतारणा थी। गंभीर प्रकृति वाले आर्य हास्य और विनोद से दूर ही रहते थे, परंतु मुसलमान प्रायः विनोद-प्रिय होते थे। इसीलिए उनके संसर्ग से विनोद-प्रिय कहानियों की सृष्टि प्रारम्भ हो गयी। अकबर और वीरबल के नाम से प्रसिद्ध विनोदपूर्ण कहानियों की सृष्टि इसी काल में हुई थी। इस युग की तीसरी प्रमुख विशेषता अस्वाभाविक, अतिप्राकृतिक और अति मानुषिक प्रसंगों की अवतारणा थी। यों तो पौराणिक कथाओं में भी इस प्रकार के प्रसंग पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, परंतु पुराणों में जहाँ आर्यों की सृजनात्मक कल्पना प्रतीकवादी ढंग से अधिकांश देवी, देवता तथा अन्य शक्तियों की सृष्टि करती थी, वहाँ इन कहा-

नियों में प्रतीक की भावना है ही नहीं, वरन् कथा को मनोरंजक बनाने के लिये और कभी-कभी कथा को आगे बढ़ाने के लिये भी अभौतिक अथवा अतिभौतिक सत्ताओं तथा अस्वाभाविक और अतिमानुषिक प्रसंगों का उपयोग किया जाता था। उड़नखटोला, उड़नेवाला घोड़ा, बातचीत करने वाले मनुष्यों की भाँति चतुर पशु और पक्षी, प्रेत, राक्षस देव, परी और अप्सरा इत्यादि की कल्पना केवल कल्पना मात्र थी, इनसे किसी आध्यात्मिक सत्य अथवा गंभीर तत्त्व की गवेषणा नहीं होती थी, केवल कथा में एक आकर्षण और सौंदर्य आ जाता था। उदाहरण के लिये कुतुबन की 'मृगावती' में राजकुमारी मृगावती उड़ने की विद्या जानती थी। मंझन कृत 'मधुमालती' में अप्सराएँ मनोहर नामक एक सोते हुये राजकुमार को रातों-रात महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्रसारी में रख आती हैं। मनोहर से अचल प्रेम होने के कारण जब मधुमालती की माता क्रोध में आकर उसे पक्षी हो जाने का शाप देती है, तो राजकुमारी पक्षी बनकर उड़ने लगती है, फिर भी उसे मनुष्यों की भाँति वाणी, भाषा और पहचान की शक्ति है। 'पदमावत' में हीरामन तोता तो पूरा पण्डित है और प्रेम-दूत बनने में नल के हंस का भी कान काटता है। 'रानी केतकी की कहानी' में तो इस प्रकार के अस्वाभाविक और अतिमानुषिक प्रसंग आवश्यकता से अधिक मिलते हैं।

भारतीय कहानियों के विकास का तीसरा युग बीसवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। १७५७ ई० से ही अंग्रेजों ने भारत में अपनी जड़ जमाना प्रारम्भ कर दिया था और १८५७ ई० तक सारे भारतवर्ष में उनका साम्राज्य स्थापित हो गया। उन्होंने अँगरेज़ी शिक्षा के लिए स्कूल और कालेज खोले, न्यायालयों की सृष्टि की, मुद्रण-यंत्र का प्रचार किया और रेल तार डाक, अस्पताल इत्यादि खोले। साथ ही ईसाई मिशनरियों ने घूम-घूम कर अपने धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ

कर दिया। इसके फलस्वरूप हमारे साहित्य, संस्कृति, धर्म, समाज और राजनीति इत्यादि सभी क्षेत्रों में एक अभूतपूर्व परिवर्तन दिखाई पड़ा। कहानी-साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा और उसमें भी अद्भुत परिवर्तन हुआ। परन्तु यह परिवर्तन तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में मुसलमानों के आगमन से कहानी-साहित्य में जो परिवर्तन हुआ था, उससे नितांत भिन्न था। आधुनिक काल में पाश्चात्य कथा-साहित्य और परम्परा का भारतीय कथा-साहित्य और परम्परा से संपर्क हुआ ही नहीं और यदि हुआ भी तो बहुत कम, क्योंकि अंगरेज़ों ने अपना साम्राज्य तो स्थापित अवश्य किया, परन्तु मुसलमानों को भाँति वे भारत में बसे नहीं और अपने को भारतीय जनता से दूर ही रखते रहे। फिर भी पाश्चात्य साहित्य, संस्कृति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और भौतिक विचार-धारा का भारतवासियों पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि आधुनिक काल में जनता की रुचि, विचार, भावना, आदर्श और दृष्टिकोण प्राचीन काल से एकदम भिन्न हो गया, और इतना अधिक भिन्न हो गया कि प्राचीन कहानी को अब हम कहानी मानने के लिए भी प्रस्तुत नहीं होते। राजकुमारों और राजकुमारियों की प्रेम-कथाएँ, राजा-रानी की आश्चर्यजनक बातें, विक्रमादित्य की न्याय-कहानियाँ राजा भोज का विद्याव्यसन और दान की कथाएँ अब हमारा मनोरंजन नहीं कर पातीं, पुराणों की कथाएँ, कर्ण और दधीचि का दान, अर्जुन और भीम की वीरता हमें कपोल-कल्पना जान पड़ने लगीं। फल यह हुआ कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से कहानी की एक बिलकुल नयी परम्परा चल निकली जिसे हम 'आधुनिक कहानी' कहते हैं।

प्राचीन और आधुनिक कहानियों का अन्तर

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है प्राचीन और आधुनिक कहानियों में महान् अन्तर है और इस अन्तर का कारण उन्नीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य संस्कृति और विचारों के सम्पर्क से उत्पन्न एक नवीन जागृति

और चेतना है। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से हमारे दृष्टिकोण में महान् परिवर्तन उपस्थित हो गया। आधुनिक शिक्षा की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं—यह आलोचनात्मक और वैज्ञानिक है। यह सन्देह का पोषण करती है और गुरुडम की विरोधी है; प्रकृति की भौतिक सत्ताओं पर विश्वास करती है और अभौतिक अथवा अतिभौतिक सत्ताओं का अविश्वासी है; व्यक्तिगत स्वधीनता की घोषणा करती है और रूढ़ियों, परंपराओं तथा अंधविश्वासों का विरोध करती है। इस बुद्धिवाद के प्रभाव से हमें भूत, प्रेत, जिन्न, देव, राक्षस, उड़न-खटोला, उड़नेवाला घोड़ा इत्यादि अभौतिक अथवा अतिभौतिक अप्राकृत अथवा अति-प्राकृति अमानुषिक अथवा अतिमानुषिक सत्ताओं में अविश्वास होने लगा। फलतः कहानियों में इनका उपयोग असह्य जान पड़ने लगा। इस प्रकार आधुनिक काल में कहानी की सृष्टि करने में केवल आकस्मिक घटनाओं (Chances) और संयोगों (Coincidences) का ही सहारा लिया जा सकता है। प्रसाद, ज्वालादत्त शर्मा और विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की प्रारम्भिक कहानियों में यही हुआ भी। कहानी लेखक को कथानक चुनने और उसका कार्य क्रम सजाने में अब अधिक सतर्क रहना पड़ता था, क्योंकि अभौतिक तथा अतिभौतिक सत्ताओं के लोप से कथा की मनोरञ्जनता का सारा भार आकस्मिक घटनाओं और संयोगों के कौशलपूर्ण प्रयोग पर ही आ पड़ा। ठीक इसी बीच भारतवर्ष में मनोविज्ञान के अध्ययन की ओर विद्वानों की अभिरुचि बढ़ने लगी। लोगों को यह जान कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि देखने और सुनने जैसे साधारण कार्यों में भी आँखों और कानों की अपेक्षा मस्तिष्क का ही अधिक महत्वपूर्ण कार्य होता है। इस प्रकार हमें मानव मस्तिष्क की व्यापक महत्ता का बोध हुआ और यह अनुभव होने लगा कि आकस्मिक घटनाओं तथा संयोग की अपेक्षा जीवन में मनुष्य के मस्तिष्क और मन का कहीं अधिक प्रभाव और

महत्त्व है। संसार का वास्तविक नाटक मानव मस्तिष्क और मन का नाटक है, आँख, कान तथा अन्य इन्द्रियों का नहीं। फलतःकहानियों में इसी मानव मस्तिष्क और मन के नाटक का चित्रण होने लग गया। अभौतिक और अतिभौतिक सत्ताओं के निराकरण से कहानियों की मनोरंजकता में जो कमी आ गई थी, उसे इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ने पूरा ही नहीं किया, वरन् और आगे भी बढ़ाया। जैसे स्वर्गीय मुंशी प्रेमचन्द ने लिखा है—आधुनिक कहानी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ चित्रण का अपना ध्येय समझती है।

संक्षेप में, प्राचीन काल की कहानियों में मानव के बाह्य प्रकृति का चित्रण हुआ करता था। केवल आकस्मिक घटनाओं और संयोगों से कहानी की सृष्टि हुआ करती थी, जिसमें मनोरंजन के लिए और कहीं-कहीं कथा को आगे बढ़ाने के लिए भी अभौतिक और अतिभौतिक सत्ताओं का उपयोग होता था। इन सत्ताओं में प्रतीक की भावना न थी और यदि कहीं थी तो ये केवल बाह्य शक्ति की प्रतीक होती थीं अंतः-शक्ति की नहीं। परन्तु आधुनिक काल की कहानियों में मानव के अंतः प्रकृति का चित्रण होने लग गया, जिनमें अभौतिक और अप्राकृत सत्ताओं का उपयोग नहीं होता। जब कभी इन सत्ताओं का उपयोग होता भी है जैसा कि प्रेमचंद और सुदर्शन की कुछ कहानियों में मिलता है, तब ये सत्ताएँ किसी अंतःशक्ति की प्रतीक होती हैं, बाह्य शक्ति की नहीं। इस अंतःप्रकृति के चित्रण ने हमें मानव-चरित्र और भावना नाम की अद्भुत वस्तु दी। अब तक मानव देव, दानव, राक्षस आदि अतिभौतिक और अतिप्राकृत सत्ताओं तथा नियति के हाथों का एक कठपुतला मात्र था, वे उसे जैसे नचाते वह नाचता था, उसे विचार-स्वातंत्र्य न था न उसकी भावना ही कोई महत्त्व रखती थी परन्तु अब मानव को विचार-स्वतंत्र्य मिल गया है, वह जो भी काम करता है अच्छी तरह सोच-विचार कर करता है, उसके

कामों का प्रभाव उसके चरित्र पर भी पड़ता है। आधुनिक काल में मानव चरित्र और मानव-मस्तिष्क की प्रधानता स्वीकार कर ली गई है और उन्हीं के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ने कहानी को मनोरंजकता प्रदान की। प्राचीन कहानियों की अपेक्षा आधुनिक कहानी की आत्मा अधिक सजीव, गम्भीर और सूक्ष्म है।

प्राचीन कहानियों में अधिकांश राजा, राजकुमार और राजकुमारियों का ही चित्रण हुआ करता था। सच बात तो यह है कि प्राचीन काल में साधारण जनता का कोई विशेष महत्त्व ही न था। राजा का वाक्य ही राज्य-विधान हुआ करता था। राजा, रानी, राजकुमार, मंत्री, सामंत इत्यादि कुछ थोड़े-से ही लोग जीवन का सुख पाते थे, शेष मनुष्य पैदा होते थे, खाते पीते थे और मर जाते थे। इसीलिए प्राचीन कहानियों में राजा, रानी और राजकुमार आदि का ही चित्र होता था। परन्तु आधुनिक काल में सार्वजनिक समानाधिकार की भावना बढ़ चली। विधान और शिक्षा की दृष्टि से सभी मनुष्यों को समान अधिकार मिला। स्त्री-पुरुष, शूद्र-ब्राह्मण किसी में कुछ भी भेद नहीं रहा। स्वच्छन्दतावाद की भावना के जोर पकड़ने से सामान्य मानवता के यथार्थ चित्रण की ओर लेखकों की अभिरुचि बढ़ने लगी। अस्तु, आधुनिक कहानी में राजा, रानी और राजकुमार के स्थान पर जुम्मन शेख, अलगू साहु, बीसू चमार, मुन्नू मेहतर, महादेव सोनार, सेठ छक्कामल, लहनासिंह जमादार, वकील, बैरिस्टर, डाक्टर, प्रोफेसर, कवि, क्लर्क, दीवान, मिनिस्टर इत्यादि सभी लोगों के जीवन का चित्र उपस्थित किया जाने लगा। फिर प्राचीन कहानियों में अधिकांश प्रेम का ही चित्रण हुआ करता था, परन्तु अब प्रेम के अतिरिक्त अन्य भावों और भावनाओं का भी चित्रण होने लग गया है। सारांश यह कि आधुनिक काल में कहानियों के विषय और उपादान का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत हो गया है।

प्राचीन काल में कहानियों का प्रारम्भ बिना किसी भूमिका के ही हुआ करता था। 'एक राजा था और उसकी दो रानियाँ थीं' कहकर ही कहानी का प्रारम्भ कर दिया जाता था। जनता को इससे अधिक परिचय की आवश्यकता भी न थी। राजा शब्द निकलते ही सरल जनता के अंतर्नयनों के सामने एक सुन्दर, सुडौल, विलासी नवयुवक का चित्र उपस्थित हो जाता था, जिसके वैभव और ऐश्वर्य का कोई अंत ही नहीं और वह उत्सुक होकर पूछ बैठती थीं 'तो उस राजा का क्या हुआ?' परन्तु आधुनिक काल में राजा शब्द निकलते ही संशयवादी और बुद्धिवादी जनता अविश्वास की भावना से सिर हिला कर प्रश्न कर बैठती है कि वह राजा किस देश का अधिपति था? वह किस युग में राज्य करता था? किस वंश का वह भूषण था? उसका नाम क्या था? और उसके शासन-काल की मुख्य ऐतिहासिक घटनाएँ क्या-क्या थीं? इत्यादि। कहानी लेखक भी अब पहले से अधिक चतुर हो गए हैं। वे भी गुरु-गम्भीर होकर थोड़ा खाँस कर एक पांडित्यपूर्ण कहानी सुना देते हैं कि उस राजा का नाम आदित्यसेन था, वह विदर्भ देश का राजा था और राजा नल की बीसवीं पीढ़ी में पैदा हुआ था। ईसा से ८०२ वर्ष पूर्व उसने आठ अश्वमेध यज्ञ किए थे और उसके बहुत से सिक्के और शिला-लेख अमुक नगर में मिले हैं। इस पांडित्य पूर्ण उत्तर से जनता को फिर अविश्वास करने का साहस ही नहीं होता। जनता के संदेहों का समुचित उत्तर तो गल्पों की काल्पनिक कथाओं में नहीं दिया जा सकता, फिर भी उसे भुलावा तो दिया ही जा सकता है और आधुनिक कहानी-लेखकों ने वही किया भी। अपनी कहानी की काल्पनिक कथा को सत्य घटना का रूप देने के लिए आधुनिक कहानी-लेखक एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करता है कि उसकी गम्भीरता, स्वाभाविकता और यथार्थवादिता से प्रभावित होकर पाठकों को पूरी कहानी को सत्य

मानना ही पड़ता है। कम से कम कहानी पढ़ते समय तो वह कहानी कि लिखी सभी बातों को सत्य समझता है।

कहानी में वातावरण की सृष्टि से वही प्रभाव पड़ता है, जो नाटकों में रङ्गमञ्चीय कौशल (Stagecraft) से पड़ता है। मध्ययुग में यदि निर्जन निकुञ्ज में संध्या की गोधूलि में राधाकृष्ण का मिलन दिखाना होता था, तो रासलीलाओं में सूत्रधार रङ्गमञ्च पर आकर इतना कह जाया करता था कि अब राधा और कृष्ण का यमुना तट पर निर्जन निकुञ्ज में संध्या समय मिलन होगा और दर्शकों को उसी सूखे रङ्गमञ्च पर अपनी कल्पना शक्ति से यमुना तट, रिर्जन निकुञ्ज और गोधूलि इत्यादि का चित्र उपस्थित कर लेना पड़ता था। परन्तु आधुनिक नाटकों में इसी दृश्य का अभिनय करने के लिए पहले रङ्गमञ्च पर एक पर्दा डालकर यमुना तट और निर्जन निकुञ्ज का यथार्थ चित्र उपस्थित कर दिया जाता है, प्रकाश को धुँधला करके संध्या समय का भान किया जाता है और फिर मोर, मुकुट, गुजा, माल, पीताम्बर की कछनी धारण किये, सुरीली बाँसुरी में अमृत की धारा बहाते हुए श्रीकृष्ण और इसी प्रकार यथार्थ जान पड़ने वाली वेशभूषा में सज्जित राधिका का मिलन कराया जाता है। जनता इस दृश्य को देखकर कुछ समय के लिए उन्हें वास्तविक श्रीकृष्ण और रधिका मान लेती है और उस मिलन को आज से कई हजार वर्ष पहले की एक सत्य घटना का प्रतिविम्ब मानकर उस पर विश्वास करती है। इसी प्रकार यथार्थ वातावरण की सृष्टि करके-कहानी लेखक एक ऐसा चित्र उपस्थित कर देता है कि कहानी पढ़ते समय पाठकगण उसे कोरी कपोल कल्पना नहीं समझ सकते, वरन् उसे सत्य घटना का यथार्थ चित्र मानते हैं। उदाहरण के लिए देखिए गुलेरीजी की कहानी 'उसने कहा था' में नायक लहना सिंह और नायिका के प्रथम मिलन के लिए लेखक ने एक ऐसा यथार्थ वातावरण उपस्थित कर दिया है कि उसके

पढ़ने के बाद पाठकों को उसके मिलन की यथार्थता में सन्देह नहीं रह जाता। लेखक कहानी के प्रारम्भ में ही वातावरण की सृष्टि करता है :

बड़े-बड़े शहरों के इक्के गाड़ी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं; कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पैरों को चींथ कर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले, तङ्ग चक्करदार गलियों में हर एक लड्ढी वाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसाजी' 'हटो भाई जी' 'ठहरना भाई' 'आने दो लाला' 'हटो बाछा' कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बतखों, गन्ने और खोमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटाना न पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उसकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा जीणे जोगिये; हट जा करमा वालिए; हट जा, पुत्तां प्यारिए; बच जा लम्बी वालिए। समष्टि से इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है; पुत्रों की प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने हैं, क्योंकि मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है। बच जा।

और फिर मुख्य कहानी का प्रारम्भ होता है :

ऐसे बम्बूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की

चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। इत्यादि।

इस वातावरण की यथार्थवादिता से ही पाठक इतने मुग्ध हो जाते हैं कि उन्हें पूरा विश्वास हो जाता है कि लेखक जो लिख रहा है, वह कपोल-कल्पना हो ही नहीं सकती—उसकी सत्यता में उन्हें सन्देह ही नहीं रहता। इसी प्रकार 'कौशिक' की 'उद्धार' नामक कहानी का प्रारम्भ देखिये :

"बेटी सुशीला अब रहने दे। बारह तो बज गए, सबेरे देखा जायगा। आज दिन भर और इतनी रात काम करते ही बीतीं।"

रात के बारह बज चुके हैं। संसार का अधिकांश भाग निद्रा की गोद में खर्राटे ले रहा है। जाग केवल वे लोग रहे हैं, जिन्हें जागने में सोने की अपेक्षा विशेष आनन्द और सुख मिलता है। अथवा वे लोग, जो दिन को रात तथा रात को दिन समझते हैं और या फिर वे लोग जो रात के अन्धकार और लोगों की निद्रावस्था से अनुचित लाभ उठाने को उत्सुक रहते हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त कुछ और प्रकार के लोग भी जाग रहे हैं। ये लोग वे हैं जिनके उदर-पोषण के लिए दिन के बारह घंटे यथेष्ट नहीं, जिनके लिए सोने और आराम करने का अर्थ दूसरे दिन फाका करना है; जो निद्रा देवी के प्रेमालिंगन का तिरस्कार इसलिए कर रहे हैं कि उसके बदले में दूसरे दिन उन्हें क्षुधा-राक्षसी की मार सहनी पड़ेगी।

उनकी आँखें झुकी पड़ती हैं, सिर चकरा रहा है परन्तु पेट को क्षुधा की यंत्रणा से बचाने के लिए वे अपनी शक्ति के बचे-खुचे परमाणुओं से काम ले रहे हैं।

एक छोटे से घर में रेंड़ी के तेल का दीपक टिमटिमा रहा है। उसी दीपक के पास एक टूटी-फूटी चटाई पर दो स्त्रियाँ झुकी हुई बैठी हैं। उनके सामने एक नीली मखमल का लहँगा है, और वे दोनों उस पर

सलमें सितारे का काम बना रही हैं। एक की उमर पचास साल के लगभग है और दूसरी की पचीस के लगभग। उनकी रुक रुककर चलनेवाली उँगलियाँ काम करने से मुंह मोड़ रही हैं और मौन भाषा में यह कह रही हैं कि वे इतनी थकी हुई हैं कि उनसे अधिक काम लेना उन पर अत्याचार करना है।

काम करते करते सहसा वृद्धा ने सुई छोड़ दी। कुछ सेकिंडों तक आँखों पर हाथ रक्खे रहने के पश्चात् वह बोली—"बेटी सुशीला अब रहने दे।......' इत्यादि

इतना पढ़ने पर कौन कह सकता है कि लेखक सत्य घटना का चित्र नहीं खींच रहा। स्थान, काल और पात्र का विचार संभाव्य सभी बातों के यथार्थ चित्रण से आधुनिक लेखक वातावरण की सृष्टि करता है और यह सृष्टि लेखक की कल्पना पर एक रहस्यमय अवगुंठन डाल कर उसे सत्य का स्वरूप प्रदान करती हैं।

जिन कहानियों में लेखक को कोई असंभव घटना अथवा प्रसंग दिखाना पड़ता है, वहाँ भी लेखक इस प्रकार का वातावरण उपस्थित करता है और असंभव घटना को इस कौशल से प्रस्तुत करता है कि पाठक उस असम्भव को संभाव्य मान लेता है। उदाहरण के लिए गोविंदवल्लभ पंत की कहानी 'प्रियदर्शी' लीजिए। इसमें लेखक ने कुछ असम्भव बातों का उल्लेख किया है, जैसे अशोक के चार सिपाही जब भिक्षु की हत्या करने के लिए तलवार चलाते हैं तो भिक्षु के सिर कटने के स्थान पर उन्हीं का सिर कट कर भूमि पर लोटने लगता है। उसी प्रकार सेनापति द्वारा भिक्षु के दाहिने हाथ पर तलवार चलाने पर स्वयं उसका दाहिना हाथ कट कर गिर पड़ता है और अन्त में जब अशोक स्वयं भिक्षु पर तलवार चलाता है तब भिक्षु का सिर कटने के स्थान में उस पर फूल बरसाते हैं। इन असंभव प्रतीत होने वाली घटनाओं को लेखक ने एक ऐसे वातावरण में प्रस्तुत किया है कि

असंभव होते हुए भी वे उस स्थान पर असम्भाव्य नहीं जान पड़ती। वातावरण का ऐसा ही महत्व है। यह वातावरण आधुनिक कहानी की एक मौलिक और नवीन सृष्टि है। जिस प्रकार रात के अँधेरे में रस्सी में साँप की प्रतीति होती है उसी प्रकार यथार्थ वातावरण के कारण एक कल्पित कथा में सत्य घटना की प्रतीति होती है। प्राचीन कहानी में इस प्रकार की कोई माया न थी।

आत्मा और वातावरण के अतिरिक्त, अधुनिक कहानी के रूप और शैली भी प्राचीन कहानियों से नितांत भिन्न हैं। प्राचीन काल में कहानियों की प्रायः मौखिक सृष्टि हुआ करती थी। कभी-कभी वे लिखी भी जाती थीं अवश्य, परन्तु सभी कहानियों का जनता में प्रचार मौखिक-प्रथा से ही हुआ करता था, परन्तु आधुनिक काल में मुद्रण यंत्र के प्रचार से पुस्तकें बहुत सस्ती हो गई हैं, जिन्हें साधारण जनता भी आसानी से क्रय कर सकती है। फिर आजकल के नागरिक जीवन में सामूहिक विनोदों और उत्सवों का स्थान एकांत विनोदों ने ले लिया है। इस कारण अब पहले की भाँति वृद्ध लोगों को उत्सुक श्रोताओं को कहानी सुनाना नहीं पड़ता, वरन् उत्सुक पाठक अब एकांत में बैठकर मुद्रित ग्रन्थों से एकांत में कहानियों का आनन्द उठाते हैं। मासिक पत्र पत्रिकाओं के प्रचार से कहानियों की मौखिक-प्रथा का एकदम लोप ही हो गया इस कारण आधुनिक कहानी के रूप और शैली में एक अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया है, क्योंकि कहानी के सुनने और पढ़ने में एक महान् अन्तर होता ही है।

आधुनिक कहानी के रूप और शैली पर पाश्चात्य कहानियों के रूप और शैली का भी बहुत प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य देशों में आधुनिक कहानी का प्रारम्भ १८५० से पहले ही हो गया था और उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रेंच कहानियों ने अत्यधिक उन्नति कर ली थी। भारतीय

कहानी-लेखकों ने पाश्चात्य महान् लेखकों की कहानियों के साहित्यिक रूप और शैली का अनुकरण किया। फिर कला की भावना के जोर पकड़ने पर कहानियों के रूप और शैली का और भी परिष्कार और परिमार्जन हुआ और इस प्रकार आधुनिक कहानी का रूप और शैली इतनी अधिक परिवर्तित हो गई कि इसे प्राचीन कहानियों की 'बिरादरी' में बैठाया ही नहीं जा सकता।

आधुनिक कहानी की परिभाषा

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर आधुनिक कहानी है क्या वस्तु ? यों तो साहित्य के प्रत्येक अंग और रूप की परिभाषा प्रस्तुत करना सरल काम नहीं है, परन्तु आधुनिक कहानी की परिभाषा प्रस्तुत करना शायद सबसे कठिन है। फिर भी साहित्य के अन्य रूपों के साथ इसकी समता और विषमता प्रदर्शित कर, इसकी विशेषताओं का सूक्ष्म विश्लेषण कर, इसकी व्याख्या संतोषजनक रूप से की जा सकती है।

कथानक और शैली की दृष्टि से कहानी उपन्यास के बहुत निकट है। कुछ लोग तो यहाँ तक समझते हैं कि कहानी और उपन्यास में कोई विशेष अन्तर नहीं है—केवल कहानी का विस्तार उपन्यास से बहुत कम होता है। इस मत के अनुसार हम इस सारांश पर पहुँचते हैं कि कहानी उपन्यास का ही लघु रूप है और एक ही कथानक इच्छानुसार बढ़ाकर उपन्यास और छोटा करके कहानी के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। परन्तु यह मत सर्वथा भ्रांतिपूर्ण है। कहानी उपन्यास का छोटा रूप है; वरन् यह उससे एक सर्वथा भिन्न और स्वतंत्र साहित्य रूप है। बाह्य दृष्टि के कहानी और उपन्यास में समानता अवश्य है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर दोनों में विषमता स्पष्ट प्रकट हो जायगी।

उपन्यास में सबसे प्रधान-वस्तु उसका कथानक हुआ करता है और बिना कथानक के उपन्यास की सृष्टि हो ही नहीं सकती। भाव-प्रधान उपन्यासों में भी एक कथानक का होना अनिवार्य होता है। परन्तु आधुनिक कहानी में कथानक का होना आवश्यक होते हुये भी अनिवार्य नहीं है। कितनी ही कहानियों में कथानक होता ही नहीं। कभी-कभी केवल कुछ मनोरञ्जक बातों, चुटकुलों और चित्त को आकर्षित करनेवाली सूझों के आधार पर ही कहानी की सृष्टि हो जाया करती है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत पुस्तक में संकलित भगवतीचरण-वर्मा की कहानी 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' देखिए। इसमें कथानक कुछ भी नहीं है, है केवल एक मनोरञ्जक बात जिसे लेखक ने अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति से, केवल अपनी शैली के बल पर एक सुन्दर कहानी के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' में कुछ चरित्रों के द्वारा एक वातावरण की सृष्टि की गई है, परन्तु उसमें कथा भाग नगण्य है। इसी प्रकार 'अज्ञेय' की कहानी 'रोज़' में कथानक का अंश बहुत ही गौण है। लेखक ने कुछ चरित्रों के द्वारा एक अद्भुत प्रभाव (effect) की सृष्टि की है, जिससे कथानक की ओर पाठकों का ध्यान भी नहीं जाता।

आधुनिक कहानी में जहाँ कथानक होता भी है, वहाँ कहानी का कथानक उपन्यास के कथानक से बहुत भिन्न हुआ करता है। उपन्यास में प्रायः एक मुख्य कथानक के साथ ही साथ दो-तीन गौण कथाएँ भी चलती रहती हैं और जहाँ गौण कथानक नहीं होते, वहाँ मुख्य कथानक ही इतना विस्तृत हुआ करता है कि उससे जीवन का पूरा चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है। परन्तु कहानी में अधिकांश गौण कथाएँ होती ही नहीं केवल एक मुख्य कथा होती है और उससे भी जीवन का पूरा चित्र प्रकाश में नहीं आता, केवल किसी अङ्ग विशेष पर ही प्रकाश पड़ता है। कुछ कहानियों में जहाँ मुख्य कथानक

के अतिरिक्त कुछ गौण कथाएँ भी होती हैं वहाँ भी जीवन के किसी अंग विशेष पर ही प्रकाश पड़ता है, पूरे जीवन का चित्र उपस्थित नहीं होता। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि कहानी का कथानक अपूर्ण-सा होता है और उसे इच्छानुसार पूर्ण किया जा सकता है—आगे बढ़ाया जा सकता है। कहानी का कथानक अपने में ही पूर्ण होता है और उसे कठिनता से आगे बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार कहानी और उपन्यास में महान् अंतर होता है।

चरित्र की दृष्टि से भी कहानी और उपन्यास में उतना ही अंतर है जितना कथानक की दृष्टि से। उपन्यास में चरित्र भी एक आवश्यक अंग है। घटना-प्रधान तथा भाव-प्रधान उपन्यासों में भी चरित्र होते हैं और उनका यथार्थ चित्रण किया जाता है, परन्तु कहानियों में चरित्र का होना अनिवार्य नहीं है। कितनी ही कहानियों में चरित्र होते ही नहीं या होते भी हैं तो गौण होते हैं। उदाहरण के लिए भगवती-चरण वर्मा की कहानी 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' में चरित्र है ही नहीं और 'पूस की रात' तथा 'रोज' कहानियों में चरित्र-चित्रण का प्रयास नहीं मिलता, वरन् उनमें चरित्र केवल निमित्त मात्र हैं, लेखक का मुख्य उद्देश्य वातावरण और प्रभाव की सृष्टि करना है। चरित्र-प्रधान और कथा-प्रधान कहानियों में चरित्र होते अवश्य हैं, परन्तु उपन्यासों की भाँति उसका संपूर्ण चरित्र-चित्रण कहानी में नहीं मिलता, वरन् किसी पक्ष-विशेष का ही चित्रण मिलता है। सच तो यह है कि पूर्ण रूप से चरित्र-चित्रण के लिए कहानी में स्थान ही नहीं होता।

शैली की दृष्टि से कहानी और उपन्यास में विशेष अंतर नहीं है। केवल स्थानाभाव के कारण कहानी में विस्तृत प्रकृति-वर्णन अथवा अन्य प्रकार के वर्णनों के लिए क्षेत्र बहुत ही कम है। इस-लिए कहानी की शैली अत्यन्त सुगठित और संक्षिप्त होती है।

प्रभाव-क्षेत्र (scope) और विस्तार की दृष्टि से आधुनिक कहानी

एकांकी नाटक और निबन्ध के बहुत निकट है। कहानी में एकांकी नाटक और निबन्ध की ही भाँति जीवन का पूरा चित्र नहीं मिलता, वरन् उसके किसी विशेष मनोरंजक, चित्ताकर्षक एवं प्रभावशाली दृश्य अथवा पक्ष का ही चित्र मिलता है और इसका विस्तार भी उन दोनों साहित्य रूपों (एकांकी नाटक और निबन्ध) की ही भाँति छोटा होता है, जिससे पूरी कहानी एक बैठक में ही अर्थात् घंटे डेढ़ घंटे के भीतर ही भली प्रकार पढ़ी जा सके। परन्तु इतनी समानता होने पर भी कहानी उन दोनों में सर्वथा भिन्न रहती है। एकांकी नाटक अभिनय की वस्तु है इसलिए उसमें प्रकृति-वर्णन तथा अन्य प्रकार के वर्णनों का सर्वथा अभाव रहता है और शैली की दृष्टि से तो कहानी एकांकी नाटकों से बिल्कुल भिन्न साहित्य-रूप है। निबन्ध में स्वाभाविक वर्णन तो मिलता है और वह कहानी ही की भाँति सुगठित एवं संक्षिप्त शैली में होता भी है, परन्तु इसमें उस कल्पना शक्ति का अभाव रहता है जिसके सहारे आधुनिक कहानी में किसी मनोरंजक कथा, किसी प्रभावशाली और सुन्दर चरित्र किसी मनोवैज्ञानिक चित्र, किसी कवित्वपूर्ण अथवा यथार्थ वातावरण तथा किसी शक्तिशाली और सुन्दर प्रभाव की सृष्टि होती है।

आधुनिक कहानी की प्रमुख दो विशेषताएँ हैं। प्रथम विशेषता इसमें कल्पना-शक्ति का आरोप है। यों तो साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र और विभाग में कल्पना का उपयोग अत्यावश्यक एवं अनिवार्य हुआ करता है, परन्तु कहानी में ही शायद इसका सबसे अधिक उपयोग होता है। कल्पना ही कहानी का प्राण है। चाहे प्रेमचन्द और 'प्रसाद' के गम्भीर मानव चरित्र का चित्रण ले लीजिए, चाहे जैनेन्द्रकुमार और भगवतीप्रसाद वाजपेयी का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण; चाहे 'हृदयेश', राधिकारमण प्रसाद सिंह और गोविन्दवल्लभ पंत की कवित्वपूर्ण वातावरण प्रधान कहानियाँ लीजिये चाहे 'अज्ञेय' और चंद्रगुप्त विद्यालंकार की प्रभाववादी (impressionistic) कहानियाँ, चाहे भगवतीचरण वर्मा की व्यंगात्मक

कहानियाँ लीजिए, चाहे जी० पी० श्रीवास्तव की अतिनाटकीय (Melodramatic) प्रसंगों से युक्त हास्यमय गल्प, चाहे गोपालराम गहमरी की जासूसी कहानियाँ ले लीजिए, चाहे दुर्गा प्रसाद खत्री की रहस्यमयी और साहसिक कहानियाँ—सभी स्थान में कल्पना की ही प्रमुखता मिलेगी। सच तो यह है कि बिना कल्पना के ही कहानी की सृष्टि हो ही नहीं सकती। किसी भावना को कहानी का रूप देने के लिए, किसी मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रदर्शित करने के लिए, किसी प्रभाव की सृष्टि करने के लिए, किसी मनोरंजक बात को साहित्यिक रूप प्रदान करने के लिए अथवा किसी चरित्र-विशेष के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिए घटनाओं का क्रम एवं घात-प्रतिघात-संयुक्त कथानक की सृष्टि करना कल्पनाशक्ति का ही काम है। कोई भी कहानी ले लीजिए—सबके तह में का ही प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ेगा। आधुनिक कहानी में कल्पना कल्पना की सबसे अधिक जादूगरीन पुराण-कथा (Myth-making) शैली में मिलती है। मोहनलाल महतो की कहानी 'कवि' में कल्पना के अतिरिक्त और है ही क्या? कमलाकांत वर्मा की 'पगडंडी' देखिए—लेखक ने अमराइयों को चीर कर जाती हुई एक छोटी सी पगडंडी देखी थी और उसी पर एक दार्शनिक भावनापूर्ण सुन्दर कहानी की सृष्टि कर दी—केवल अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति से। वास्तव में आधुनिक कहानी की प्रमुखता विशेषता कल्पना के अद्भुत आरोप में है।

आधुनिक कहानी की दूसरी विशेषता कम से कम पात्रों अथवा चरित्रों द्वारा कम से कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता में कथानक, चरित्र, वातावरण और प्रभाव इत्यादि की सृष्टि करना है। किसी व्यर्थ चरित्र अथवा निरर्थक घटना और प्रसंग के लिए कहानी में स्थान ही नहीं है। यों तो व्यर्थ चरित्र और निरर्थक घटना और प्रसंग नाटक, उपन्यास और एकांकी नाटक में भी अनावश्यक हैं, परन्तु स्थानाभाव के कारण कहानी में इनका निराकरण अत्यंत आवश्यक होता है। आधुनिक

कहानी साहित्य का एक विकसित कलात्मक रूप है, जिसमें व्यर्थ चरित्र और निरर्थक प्रसंग उनके सौंदर्य के लिए घातक प्रमाणित हो सकते हैं।

अस्तु आधुनिक कहानी साहित्य का विकसित कलात्मक रूप है, जिसमें लेखक अपनी कल्पना शक्ति के सहारे, कम से कम पात्रों अथवा चरित्रों के द्वारा, कम से कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से मनोवांछित कथानक, चरित्र, वातावरण, दृश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि करता है।

आधुनिक कहानी का प्रारम्भ

आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रारम्भ 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' के प्रकाशन से १९०० ई० में होता है। इससे भी पहले १८९९ ई० में बृहत्कथा के आधार पर 'कात्यायन वररुचि की कथा' और 'उपकोशा की कथा' कहानी रूप में 'हिन्दीप्रदीप' में प्रकाशित हुई थी। 'सरस्वती' में शेक्सपियर के अनेक नाटकों से अनुवाद कहानी-रूप में प्रकाशित हुए। १९०० ई० का जनवरी में सिम्बलीन' (Symbeline) फरवरी में 'ऐथेन्सवासी टाइमन' (Timon of Athens), मार्च तथा अप्रैल में 'पेरिक्लीज' (Pericles) और सितम्बर तथा अक्तूबर में 'कौतुकमय मिलन' (Comedy of Erros) प्रकाशित हुये। साथ ही साथ इसमें बहुत से संस्कृत नाटक भी कहानी रूप में प्रकाशित हुए जिनमें 'रत्नावली' और मालविकाग्निमित्र' की कहानियाँ अत्यन्त मनोरंजक प्रमाणित हुई। 'सरस्वती' के प्रकाशन के पूर्व ही गदाधरसिंह ने बाण की 'कादम्बरी' का एक सुन्दर अनुवाद एक बड़ी कहानी के रूप में प्रस्तुत किया। इसी समय 'सुदर्शन' में भी पौराणिक आख्यान कहानी रूप में प्रकाशित हो रहे थे। इस अनुवादित तथा रूपांतरित रचनाओं में ही आधुनिक कहानियों का प्रारम्भक रूप मिलता है।

जून १९०० ई० में 'सरस्वती' में हिन्दी की सर्वप्रथम आधुनिक कहानी 'इन्दुमती' प्रकाशित हुई। यह पूर्णतया मौलिक कृति नहीं कही

जा सकती, क्योंकि इसपर शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'टेम्पेस्ट' (The Tempest) की छाप बहुत स्पष्ट है, परन्तु इसके लेखक किशोरी लाल गोस्वामी ने इसे पूर्णरूप से भारतीय वातावरण के अनुरूप ही प्रस्तुत किया है। कहानी की नायिका इन्दुमती मिरांडा की भाँति अपने पिता के साथ विन्ध्याचल के सघन बन में निवास करती है। उसने भी अपने छोटे-से जीवन में केवल अपने पिता को ही देखा और प्यार किया था, और दूसरा मनुष्य उसकी दृष्टि-पथ में नहीं आया था। सहसा एक दिन एक पेड़ के नीचे उसने देखा एक सुन्दर नवयुवक—अजयगढ़ का राजकुमार चन्द्रशेखर—जो पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी का काम तमाम कर भाग निकला था और लोदी का एक सेनापति उसका पीछा कर रहा था। उसका घोड़ा मर चुका था और वह भी भूखा-प्यासा पेड़ के नीचे पड़ा था। प्रथम दर्शन में ही दोनों के हृदयों में प्रेम का संचार हो उठता है। इन्दुमती का वृद्ध पिता, जो वास्तव में देवगढ़ का शासक था और इब्राहीम लोदी द्वारा राज्य छिन जाने पर अपनी एकमात्र कन्या को लेकर जंगल में निवास करता था, अँग्रेजी नाटक के प्रास्पेरो की ही भाँति युगल प्रेमी के प्रेम की परीक्षा लेने के लिये चन्द्रशेखर से कठिन परिश्रम लेता है और स्वयं पहाड़ी के पीछे खड़े होकर नवयुवक हृदयों का प्रेमी सम्भाषण सुनता है। वृद्ध पिता ने प्रतीक्षा की थी कि जो कोई इब्राहीम लोदी को मार कर उसके बैर का बदला लेगा, उसी से वह अपनी कन्या का विवाह करेगा! चन्द्रशेखर ने अनजाने ही यह प्रतिज्ञा पूरी कर दी थी और उसका प्रेम इन्दुमती के प्रति विशुद्ध और आदर्श था, इसलिए वृद्ध पिता ने युगल-प्रेमियों का विवाह करा दिया और वे सुख पूर्वक अपनी राजधानी में राज्य करने लगे। इस प्रकार 'टेम्पेस्ट' की छाया लेकर एक राजपूत कहानी के आधार पर हिन्दी में सर्वप्रथम मौलिक कहानी की सृष्टि हुई।

इसके पश्चात् अन्य अनेक कहानियाँ अनुवादित रूपांतरित और मौलिक भी 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' में निकलती रहीं। १६०० ई० से १६१० ई० तक आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रयोगात्मक युग था, जब कि कहानी की कोई निश्चित परम्परा न थी और उसके साहित्यिक रूप तथा शैली के सम्बन्ध में कोई निश्चित आदर्श सामने न था। कितने ही लेखक अवश्य कुछ फुटकल कहानियाँ गद्य में और छन्दबद्ध भी लिखा करते थे जो समय-समय पर मासिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं, परन्तु वे केवल कुछ अनिश्चित प्रयोग के रूप में थी, उनमें न कोई क्रम था न आदर्श, न कोई निश्चित रूप था न शैली। एक ओर टूटी-फूटी भाषा में छन्दबद्ध कहानियाँ प्रकाशित हो रही थीं—'जम्बुकी न्याय' (सरस्वती, मार्च १६०६) में पञ्चतन्त्र और हितोपदेश की भाँति उल्लू, स्यार, गिरगिट, कौआ इत्यादि की उपदेशपूर्ण कथा है, जो ईसप की कहानियों (Aesop's Fables) की याद दिलाती है। विद्यानाथ शर्मा[1] की कहानी 'विद्या-बहार' (सरस्वती, मार्च १६०६) में काशी का एक विद्वान् गोंडवाने का राजा होता है और उसे चौपट कर देता है। कहानी के अन्त में लेखक यह उपदेश देता है।

अनुभव बिना है सूना पुस्तक ज्ञान
होते नहीं विवेकी सब विद्वान।

इसी प्रकार 'कुली नाथ पाँडे' (सरस्वती, मई १६०६ ई०) में सरकारी चपरासी और साहबों की अन्धाधुन्धी का सहारा लेकर एक कहानी खड़ी कर दी गई है, जिसमें कुलीनाथ पाँडे साहब की खुशामद करके कुली से

---

१. मेरे मित्र श्री रामेश्वर गुरु 'कुमार हृदय' ने मुझे सूचित किया है कि विद्यानाथ शर्मा दूसरे कोई नहीं, हमारे वृद्ध साहित्यिक महारथी व्याकरणाचार्य स्वर्गीय श्री कामताप्रसाद गुरु ही थे।

राजा हो जाता है, और 'निन्नानबेका फेर' (सरस्वती' अगस्त १९१० ई०) में मैथिलीशरण गुप्त ने एक सुन्दर कहानी का रूप प्रस्तुत किया है। इन छन्दबद्ध कहानियों में उपदेश की भावना भरी है और इनमें हितोपदेश तथा ईसप की कहानियों की परम्परा मिलती है। दूसरी ओर 'सुदर्शन' में माधव मिश्र पौराणिक आख्यायिकाएँ लिख रहे थे, जिनमें प्राचीन-काल की झलक मिलती है। सत्य और संतोष का फल प्रदर्शित करने-वाली नाभाग की कथा (सुदर्शन, आषाढ़ सं० १९६०) इस प्रकार की एक अपूर्व रचना है। 'सरस्वती' में भी सूर्यनारायण दीक्षित ने मार्च १९०६ में जैमिन पुराण के आधार पर 'चन्द्रहास का अद्भुत उपाख्यान' लिखा। यह तो प्राचीन परम्परा के आधार पर नए प्रयोग थे। इनके अतिरिक्त एक ओर बङ्ग महिला, पार्वतीनंदन, उदयनारायण वाजपेयी इत्यादि लेखक बङ्गला, फ्रेंच, जर्मन और अँगरेजी भाषा से कहानियों का अनुवाद और रूपांतर उपस्थित कर रहे थे, दूसरी ओर कर्नल जेम्स टाड के 'राजस्थान' तथा टेलर (Taylor), मैकमिलन (Mac-millon) आदि अँगरेजी लेखकों की भारतीय वीरों की वीरता और प्रेम-संबंधी अँगरेजी उपन्यासों के आधार पर मध्यकालीन राजपूतों, मराठों और वीर पठानों की वीरता और प्रेम की कहानियाँ लिखी जा रही थीं। वृन्दावनलाल वर्मा ने सितम्बर १९०९ ई० में 'राखी बंद भाई' अक्तूबर १९१० ई० में 'तातार और एक वीर 'राजपूत' नामक कहा-नियाँ 'सरस्वती' में लिखीं और मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'नकली किला' नामक एक कहानी दिसम्बर १९०९ ई० में गीतिका छन्दों में लिखी, जिसमें बूँदी के हाड़ा कुम्भ की अद्भुत वीरता और त्याग का वर्णन है।

परन्तु १९०० से १९१० ई० के बीच के इस प्रयोगात्मक युग की सबसे महत्वपूर्ण और सुन्दरतम रचना बङ्ग महिला की 'दुलाईवाली' (सरवस्ती, मई १९०७) कहानी थी, जिसमें प्रतिदिन के जीवन की एक साधारण घटना लेकर स्थान-चलन (Local colour)

और यथार्थवादी चित्रण की सहायता से एक प्रभावशाली कहानी की सृष्टि की गई है। वंशीधर अपने हँसमुख और विनोदप्रिय मित्र नवलकिशोर और उनकी पत्नी से मिलने की आशा में जल्दी-जल्दी अपनी पत्नी को साथ ले बनारस से इलाहाबाद को प्रस्थान करते हैं, परन्तु मुगलसराय स्टेशन पर उन्हें अपने मित्र के दर्शन नहीं हुए। मिर्जापुर स्टेशन पर उन्हें अपने ही डिब्बे में 'दुलाईवाली' और एक अन्य स्त्री मिली। स्त्री का पति शायद स्टेशन पर छुट गया था और वह विलाप कर रही थी। वंशीधर ने उसे सांत्वना दी कि इलाहाबाद में वे उसके पति खोज करेंगे। इलाहाबाद में जब वंशीधर स्त्री के पति की खोज में इधर-उधर पूछताछ करते हैं तभी उस स्त्री के पति नवलकिशोर जो 'दुलाईवाली' के रूप में उसी डिब्बे में बैठे सब तमाशा देख रहे थे, रूप-परिवर्तन कर प्रकट हो जाते हैं और इस प्रकार दोनों मित्रों का मिलन होता है। इस मनोरंजक कथानक में लेखिका की सुन्दर और व्यंजनापूर्ण लेखन-शैली तथा स्थान-चलन संयुक्त यथार्थ-से वार्तालाप ने तो जान ही डाल दी है। उदाहरण के लिए गाड़ी में रोती हुई नवलकिशोर की पत्नी से गाँववाली स्त्रियों की बातचीत सुनिए :

दूसरी—भला पयाग जी काहे न जानी थ; ले कहै के नाही, तोहरे पच के धरम से चार दाई नहाए चुकी हुई। एसों हो सोमवारी अउर गहन दुका लाग रहा। तउन तोहरे काशी नहाय गइ रहे।

पहली—आवै जाय के तो सब अउतै जात बटलै बाटन। फुन यह सायत तो बेचारो विपत में न पड़ल बाटिन। हे हम पच हइ, राजघाट टिकस कटऊली, मोगल के सरायें उतरलीह, हों दे फुन चढ़लीह।

[कुसुम संग्रह पृष्ठ ८७]

सन् १६११ ई० में काशी में 'इन्दु' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और तब से कहानियों की एक अविच्छिन्न धारा और परम्परा चल निकली।

१९११ ई० में जयशंकर प्रसाद की सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' 'इन्दु' में प्रकाशित हुई और हास्यरस के लेखक जी० पी० श्रीवास्तव की प्रथम कहानी भी १९११ ई० में ही 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। उसी साल 'भारत-मित्र' में 'उसने कहा था' कहानी के अमर लेखक चंद्रधर शर्मा गुलेरी की प्रथम कहानी 'सुखमय जीवन' भी प्रकाशित हुई थी। अस्तु, १९११ ई० ने हिन्दी को तीन उच्चकोटि के कहानी-लेखक दिए, इसीलिए आधुनिक हिन्दी कहानी का वास्तविक प्रारंभ १९११ ई० से ही समझना चाहिए।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही भारतवर्ष में नगरों की संख्या बढ़ती जा रही थी और इन नगरों के उदय के साथ ही साथ नागरिक जीवन और नागरिक सभ्यता का विकास भी हो रहा था। पश्चिम-शिक्षा और संस्कृति का प्रभाव दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा था और नगरों का जीवन प्रतिदिन पहले की अपेक्षा अधिक जटिल और आडम्बरपूर्ण होता जा रहा था। क्रमशः व्यक्तिवाद का भी विकास बड़ी शीघ्रता से हो रहा था और लोग अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन की साधारण घटनाओं को भी महत्त्व देने लग गए थे। धीरे-धीरे समय की प्रगति के साथ-साथ प्रतिदिन के साधारण प्रसंगों के द्वारा भी जनता के गंभीर और अंतर्निहित भावों तथा विचारों को प्रभावित कर सकने की संभावना बढ़ती जा रही थी। लेखकगण साधारण घटनाओं और प्रसंगों को स्थान-चलन और यथार्थ चित्रण के बल पर प्रभावशाली बनाने लग गए थे। बंग महिला की 'दुलाईवाली' कहानी इसी ढंग की एक सुन्दर रचना थी और शायद इसी के प्रभाव से अथवा स्वतन्त्र रूप से 'प्रसाद' ने 'ग्राम' और गुलेरी ने 'सुखमय जीवन' में इसी प्रकार की साधारण परिस्थिति लेकर मनोरंजक और उच्चकोटि की कहानी लिखी। 'ग्राम' कहानी का नायक मनोहरलाल जमींदार बड़े रोब-दाब और शान-शौकत से अपने जमींदारी के गाँव जा रहा है, परन्तु उसे उस गाँव का रास्ता मालूम नहीं है। वह राहियों से, बाग में खेलते हुए

लड़कों से रास्ता पूछता है, परंतु कोई ठीक रास्ता नहीं बता पाता। यों ही भटकते-भटकते शाम हो जाती है, अंत में उसे एक लड़की मिलती है, जो उसे अपने घर लिवा जाती है और उसकी विधवा माँ अपनी करुण गाथा सुनाती है कि किस प्रकार उसके पति की जमींदारी बेईमानी से एक बनिये कुंदनलाल के हाथ चली गई और वे माँ बेटी अब कितने कष्ट से दिन काट रही हैं। मनोहरलाल और कोई नहीं उसी कुंदनलाल के बेटे हैं। आकस्मिक घटनाओं और संयोग का सहारा लेकर लेखक ने एक विषय और करुण परिस्थिति उपस्थित कर दी है। दूसरी ओर 'सुखमय जीवन' में इन्हीं (आकस्मिक घटना और संयोग) के आधार पर एक मनोरञ्जक और हास्यपूर्ण परिस्थिति की सृष्टि हुई है। कहानी के नायक 'सुखमय जीवन' नामक ग्रंथ के अनुभवहीन नवयुवक रचयिता बाबू जयदेवशरण वर्मा बी० ए० अपनी एल-एल० बी० परीक्षा का फल जोहते-जोहते घबराकर अपना समय काटने के लिए अपने एक सनकी मित्र के घर कालानगर जा रहे हैं कि रास्ते में साइकिल में पंक्चर हो गया और हवा निकल गयी। सड़क के धूल-धक्कड़ में साइकिल खींचते हुए अचानक उनकी भेंट एक लड़की से हो गई जो उन्हें अपने घर लिवा ले गयी—पानी पिलाने, पंक्चर ठीक कराने और साइकिल में हवा भराने। रास्ते में लड़की को नायक का परिचय प्राप्त हुआ और फिर 'सुखमय जीवन' के लेखक की कमला (लड़की का नाम) के वृद्ध पिता के यहाँ बड़ा आदर-सत्कार हुआ। परन्तु अनुभवहीन लेखक का सारा पुस्तक ज्ञान उस अविवाहिता, शिक्षिता और सुन्दरी कमला के आकर्षण में बह गया और उसने एकांत में कमला से अपना प्रेम भी प्रकट कर दिया। फिर एक मनोरञ्जक परिस्थिति उपस्थित हो जाती है और अंत में कमला और कहानी के नायक का विवाह हो जाता है। इस कहानी में यथार्थ चित्रण वास्तव में बड़े सुन्दर और स्वाभाविक हैं जिनसे

यथार्थवादी वातावरण की सृष्टि होती है। उदाहरण के लिए कहानी का प्रारम्भ देखिये कितना सुन्दर है।

परीक्षा देने के पीछे और उसके फल निकलने के पहले दिन किस बुरी तरह बीतते हैं यह उन्हीं को मालूम होगा जिन्हें गिनने का अनुभव हुआ है। सुबह उठते ही परीक्षा से आज तक कितने दिन गए यह गिनते हैं और फिर 'कहावती आठ हफ़्ते में कितने दिन घटते हैं यह गिनते हैं! कभी-कभी उन आठ हफ़्तों पर कितने दिन चढ़ गए यह भी गिनना पड़ता है। खाने बैठे हैं और डाकिये की पैर की आहट आई कलेजा मुँह को आया। मुहल्ले में तार का चपरासी आया कि हाथ पांव काँपने लगे। न जागते चैन न सोते—सुपने में भी यह दिखाता है कि परीक्षक साहब एक आठ हफ़्ते की लम्बी छुरी लेकर छाती पर बैठे हुए हैं। इत्यादि

१६१२ ई० में जयशङ्कर 'प्रसाद' ने एक दूसरे ढंग की कहानी का प्रारम्भ किया, जिसमें उनकी नाटकीय प्रतिभा और कवि हृदय को अपना कौशल दिखाने का उपयुक्त क्षेत्र मिला। 'रसिया बालम' नामक कहानी जो 'इन्दु' में अप्रैल १६१२ ई० में प्रकाशित हुई थी; गद्य में एक खंडकाव्य के समान है और फारसी के प्रेमाख्यानों के बहुत ही निकट है। इस प्रकार कहानियों का कथानक प्रतिदिन के जीवन की मनोरञ्जक घटनाओं और प्रसङ्गों के आधार पर नहीं; वरन् लेखक की कल्पना शक्ति से प्रसूत होता है। ये कहानियाँ प्राचीन आख्यानक गीतियों, प्रेमाख्यानक काव्यों, नाटकों और खंडकाव्यों की गद्यात्मक वंशज जान पड़ती है। प्रस्तुत पुस्तक में संग्रहीत 'प्रसाद' की कहानियाँ 'आकाशदीप' और 'पुरस्कार' इसी ढङ्ग की कहानियाँ हैं। ऐतिहासिक कहानियाँ अधिकांश इसी ढंग की रचनाएँ होती हैं।

अस्तु, आधुनिक कहानियों का प्रारम्भ दो उद्गमों से होता है। एक ओर तो सामयिक और तत्कालीन जीवन के प्रतिदिन की आक-

स्मिक घटनाओं और करुणा, हास्यमय, विस्मययुक्त तथा अद्भुत परिस्थितियों के आधार पर यथार्थवादी वातावरण के आवरण में सुसज्जित नयी कहानियों की सृष्टि होने लगी, दूसरी ओर प्राचीन खंड-काव्यों नाटकों और आख्यानक गीतियों तथा प्रबन्धकाव्यों के आधार पर कल्पना-प्रसूत कथानक गद्य में नाटकीय कहानियों के साँचे में ढाले जाने लगे। प्रथम उद्‌गम से यथार्थवादी कहानियों का प्रारम्भ हुआ और द्वितीय उद्‌गम से आदर्शवादी और कवित्वपूर्ण कहानियों का।

आधुनिक कहानी का विकास

आधुनिक कहानियों के विकास के मुख्य तीन पक्ष हैं। इन तीनों पक्षों का विकास एक साथ ही हुआ और इन तीनों के पूर्ण विकास से ही आधुनिक कहानी का पूर्ण विकास सम्भव हुआ। ये तीनों पक्ष क्रमशः आत्मा, रूप और शैली हैं। कहानियों की आत्मा और रूप में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, इस कारण इन दोनों का विकास एक साथ ही दिखाना आवश्यक है।

(क) आत्मा और रूप

प्रारम्भिक कहानियों में कथानक का क्रमिक विकास दैव-घटनाओं (Chances) और संयोगों (Coincidences) द्वारा हुआ करता था। ज्वालादत्त शर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी तथा विश्म्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की प्रारम्भिक कहानियों में केवल आकस्मिक घटनाओं और संयोगों से ही मनोरञ्जक कथा-प्रधान कहानियों की सृष्टि हुआ करती थी। उदाहरण के लिए कौशिक' की प्रथम रचना 'रक्षा-बन्धन' कहानी लीजिये। लड़की का भाई को रक्षाबन्धन बाँधने के लिए मचलना और अकस्मात् एक राही का भाई बन कर राखी बँधाना; घनश्याम का अपने मित्र के अनुरोध से अपनी भावी पत्नी को देखने के लिए अपने मित्र के साथ उसी लड़की के घर जाना और वहाँ उसका

पहचाना जाना तथा भाई-बहन और पुत्र-माता का मिलन इत्यादि सभी बातें आकस्मिक घटनाओं तथा संयोगों के सहारे ही घटित हुई और इन सबके सामञ्जस्य से एक मनोरंजक कहानी की सृष्टि हुई। इसी प्रकार ज्वालादत्त शर्मा की 'तस्कर' कहानी में इन्हीं आकस्मिक घटनाओं और संयोगों द्वारा पाकेटमार मिट्ठू एक भला आदमी बन जाता है। वह दिन में विराजमोहन की जेब कतरता है और रात को जिस मकान में सेंध लगाता है, संयोग से घर भी विराजमोहन का निकलता है, जहाँ उसकी स्त्री और बच्चे दाने-दाने को मुहताज हैं। विराजमोहन के बच्चे को देखकर मिट्ठू को अपने बच्चे की याद आ जाती है और करुणा से पिघल कर वह दिन का चुराया हुआ माल भी उसी घर में छोड़कर बाहर निकल आता है और भविष्य में एक भद्र मनुष्य का सा जीवन व्यतीत करता है।

आधुनिक कहानियों में विकास का प्रथम और प्रमुखतम सूत्र प्रेमचंद की देन है। उन्होंने पहले-पहल कहानियों को बाह्य घटनाओं के जाल से छुड़ा कर उन्हें मानव जीवन के अन्तःरहस्यों के उद्घाटन का साधन बनाया। यह बात नहीं है कि उनकी कहानियों में आकस्मिक घटनाओं और संयोगों का उपयोग है ही नहीं। इसके विपरीत उनकी कहानियों में भी इनका उपयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। परन्तु जहाँ पहले कहानियों में भीतर-बाहर सभी जगह इन्हीं आकस्मिक घटनाओं और संयोगों की प्रधानता थी वहाँ प्रेमचंद ने कथानक के बाह्य रूप-रेखा के लिए आकस्मिक घटनाओं और संयोगों का तो पूरा-पूरा उपयोग किया, परन्तु उसका अंत रूप-रेखा का विकास मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण द्वारा ही किया। उदाहरण के लिए उनकी प्रसिद्ध कहानी 'आत्माराम' लीजिये। कहानी की बाह्य रूप-रेखा तो इतनी ही है कि वेदों ग्राम का महादेव सुनार अपने तोते से अत्यधिक स्नेह करता था और वही उसके जीवन का एकमात्र सहारा रहा। एक दिन लड़कों

ने शरारत से उसके तोते का पिंजड़ा खोल दिया। वह तोता उड़ कर गाँव के बाहर एक पेड़ पर जा बैठा। महादेव भी पिंजड़ा लिए उसके पीछे-पीछे दौड़ता वहीं जा पहुँचा और उसे बुलाने लगा, परन्तु वह पिंजड़े में न आया। इतने में रात हो गयी और वह तोते के लिए उसी पेड़ के नीचे झपकियाँ लेने लगा। सहसा कोई खटका पाकर जागकर उसने देखा कि कुछ आदमी कुछ दूर पर एक पेड़ के नीचे बैठे चिलम पीते और बातें कर रहे हैं। वह भी चिलम पीने के लिए उसी ओर बढ़ा। वे सब आदामी चोर थे और चोरी का माल बाँटने के लिए ही वहाँ आ बैठे थे। एक अजनवी को आते देखा वे डर के मारे चोरी का माल छोड़कर भाग चले और महादेव को एक कलसा मोहरों से भरा मिला। फिर उसकी काया-पलट हो गयी और वह एक साधु-प्रकृति का मनुष्य हो गया। इस कहानी के बाह्य रूप-रेखा में आकस्मिक घटनाओं और संयोगों का पर्याप्त स्थान है। बाह्य रूप से इसमें 'कौशिक' के 'रक्षा-बन्धन' से कोई विशेषता नहीं, परन्तु यह बाह्य रूप इस कहानी का कोई महत्वपूर्ण अंग नहीं है। वास्तव में इसका महत्वपूर्ण अंश वह भाग है जहाँ लेखक तोते के प्रति महादेव की भावनाओं का वर्णन करता है, मोहरें मिल जाने पर उसकी मानसिक भावनाओं का चित्र खींचता है और उसकी काया-पलट का अद्भुत दृश्य उपस्थित करता है। कहानी का प्राण तो अंतर्जीवन की इस सूक्ष्म ग्रंथियों के सुलझाने में है। मोहरें मिल जाने पर महादेव का मानसिक चित्रण देखिए :—

महादेव के अन्त-नेत्रों के सामने एक दूसरा ही जगत् था—चिन्ताओं और कल्पनाओं से परिपूर्ण। यद्यपि अभी कोप के हाथ से निकल जाने का डर था, पर अभिलाषाओं ने अपना काम शुरू कर दिया। एक पक्का मकान बन गया, सराफे की एक भारी दूकान खुल गयी, निज सम्बन्धियों से फिर नाता जुड़ गया, विकास की सामग्रियाँ एकत्रित हो गयीं, तीर्थ-यात्रा करने चले और वहाँ से लौट कर बड़े-

समारोह से यज्ञ, ब्रह्म भोज हुआ। इसके पश्चात् एक शिवालय और कुआँ बन गया एक उद्यान भी आरोपित हो गया और वह नित्यप्रति कथा-पुराण सुनने लगा। साधु-सन्तों का सत्कार होने लगा।

अकस्मात् उसे ध्यान आया, कहीं चोर आ जाएँ तो मैं भागूँगा क्योंकर। उससे परीक्षा करने के लिए कलसा उठाया और दो सौ पग तक बेतहाशा भागता हुआ चला गया। जान पड़ता था उसके पैरों में पर लग गये हैं। चिन्ता शन्ता हो गयी। इत्यादि

प्रेमचंद के इस अविष्कार ने मानव-चरित्र काम की एक अद्‌भुत पिटारी खोल दी जिसके आश्चर्यों का कोई अंत ही नहीं। मनुष्य का मान-अभिमान, स्नेह प्यार, ईर्ष्या-द्वेष, छल-कपट, घृणा-ग्लानि, वैर-विरोध कब क्या रूप लेते हैं, उनमें कब क्या-क्या परिवर्तन होते हैं यह वास्तव में अद्‌भुत है। उदाहरण के लिए 'प्रसाद' की कहानी 'पुरस्कार' ले लीजिये। मधूलिका का वह गर्व और अभिमान भरा त्याग, प्रेम के पीछे उसका वह विश्वासघात, फिर अपने प्रेमी के षड़यंत्र का भंडाफोड़ कर उसे बंदी बनवाना और अंत में इसके पुरस्कार-स्वरूप मृत्यु माँगना, सभी अद्‌भुत है। मानव-चरित्र के अंतर्जीवन का यह सूक्ष्म विश्लेषण ज्वालादत्त शर्मा के आकस्मिक घटनाओं तथा संयोगों के सम्मिलित प्रभाव से भी कहीं अधिक आश्चर्यजनक, आकर्षक और मनोरञ्जक है।

मानव जीवन के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में प्रेमचंद अद्वितीय हैं। उनकी कहानियों में चरित्र के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का चरम विकास पाया जाता है। 'बूढ़ी काकी' में देखिए लेखक वृद्धा की लोलुप-प्रवृत्ति की एक-एक छोटी से छोटी प्रतिक्रिया देना भी नहीं भूला है। 'पञ्च-परमेश्वर', 'दफ्तरी', 'इस्तीफा', 'बड़े घर की बेटी', 'शङ्खनाद', 'दीक्षा', 'नशा' इत्यादि कोई भी कहानी ले लीजिये, प्रेमचंद के चरित्र-चित्रण का अद्‌भुत कौशल स्पष्ट हो जायगा।

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में मानव-चरित्र का साधारण पहलू

ही लिया है। उन्होंने अपने चारों ओर अपनी सूक्ष्म दृष्टि डाली और जो भी सामने दिखाई पड़ा, उसी का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर डाला; मानव और मानव-चरित्र ही उनके मुख्य विषय थे। सर पर लादकर घास बेचनेवाली चमारिनें, हल जोतने वाले किसान, कचहरी के मुंशी, भोजनभट्ट ब्राह्मण, वकील बैरिस्टर सभी का सूक्ष्म चित्रण उन्होंने किया। 'प्रसाद' और सुदर्शन की कहानियों में भी लेखकों की दृष्टि मानव-जीवन के साधारण पहलू की ही ओर गयी।

आगे बढ़कर जैनेन्द्रकुमार, भगवती प्रसाद वाजपेयी, विनोदशंकर व्यास इत्यादि कहानी लेखकों ने मानव-जीवन के साधारण पहलू को छोड़कर असाधारण परिस्थितियों में चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रारम्भ कर दिया। उदाहरण के लिए जैनेन्द्रकुमार की कहानी 'चलित-चित्त' लीजिए। कहानी का नायक स्वयं एक बहुत ही धनी और बड़ा आदमी है, जो रेलवे के फर्स्ट क्लास का यात्री है और जो वेटिंग रूम में बैठा गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा है। अचानक उसके सामने ही एक हीरे से जड़ी अँगूठी छोड़कर एक दूसरा यात्री कहीं बाहर चला जाता है। उस अँगूठी ने उस भलेमानुस का चित्त डांवाडोल कर दिया। उसके पास उससे भी बहुमूल्य कई अँगूठियाँ हैं, फिर भी उस असाधारण परिस्थिति में उसका विचार बदल जाता है। उस असाधारण परिस्थिति में उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सचमुच ही अद्भुत और अद्वितीय है। एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत संग्रह से 'मिठाईवाला' कहानी को लीजिए। मिठाईवाले को बच्चों से बड़ा स्नेह था। उसके बच्चे अकाल ही काल के ग्रास हो चुके थे। इस दुःख से दुखी होकर उसने निश्चय किया था कि नगर के अन्य बच्चों को प्रसन्न देखकर वह अपना शेष समय समाप्त कर देगा। इसीलिए वह कभी मिठाईवाला बन कर आता है, कभी बाँसुरियावाला और कभी खिलौनेवाला और बच्चों को कभी पैसा लेकर कभी यों ही मुफ़्त में मिठाई, खिलौने इत्यादि

सामान देकर उन्हें प्रसन्न बदन उछलते-कूदते देखकर स्वयं प्रसन्न होता है। संसार में कितने ही आदमियों के बच्चे मर जाते हैं किन्तु वे मिठाईवाला बनकर इस प्रकार कार्य नहीं करते। यह तो एक असाधारण परिस्थिति है जैसी कि कहीं देखने में नहीं आती। फिर भी यह बात असम्भव नहीं जान पड़ती और यही इन कहानियों में सौंदर्य की सृष्टि करती है।

आधुनिक कहानियों के विकास का एक रूप वातावरण-प्रधान कहानियों में मिलता है। मानव-चरित्र के सूक्ष्म अन्तःरहस्यों का उद्घाटन इसका भी ध्येय है; परन्तु इसका काल-रूप चरित्र-प्रधान कहानियों से कहीं अधिक सुन्दर है। इसमें मानव-जीवन की किसी एक भावना अथवा अनुभूति से अनुरंजित और अनुप्राणित एक कहानी की सृष्टि होती है, जिसमें कथानक, चरित्र और वातावरण सभी उसी एक भावना अथवा अनुभूति से ओत-प्रोत रहते हैं; वही एक भावना अथवा अनुभूति ही उस कहानी का प्राण है, श्वास-वायु है, और ऐसा जान पड़ता है कि उस एक भावना को निकाल देने पर उस कहानी में कुछ भी शेष न बचेगा। उदाहरण के लिए सुदर्शन की एक बहुत ही सुन्दर कहानी 'हार की जीत' ले लीजिए। बाबा भारती के पास एक बहुत ही सुन्दर और सुडौल घोड़ा है, जिस पर खड्गसिंह डाकू की दृष्टि गड़ जाती है। उसने बाबा के उस घोड़े को माँगा, परन्तु बाबा ने साफ इन्कार कर दिया। एक दिन डाकू अपाहिज बन कर रास्ते में बैठ रहता है। बाबा भारतीय जब अपने घोड़े पर उस तरफ से निकलते हैं, तो वह उनसे प्रार्थना करता है कि मैं अपाहिज हूँ, चल फिर नहीं सकता, परन्तु एक आवश्यक कार्य से एक जगह जाना है, इसलिए घोड़ा मुझे दे दीजिये। करुण हृदय बाबा उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं और वह घोड़े पर बैठकर एँड़ लगा भाग जाता है और जाते समय वह कह जाता है कि मैं डाकू खड्गसिंह हूँ। इस पर बाबा उससे प्रार्थना करते हैं कि यह

बात वह किसी से भी न कहे। कारण पूछने पर उदार हृदय बाबा ने कहा:

लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया तो वे किसी गरीब पर पर विश्वास न करेंगे।

यह बात डाकू के हृदय में तीर के भाँति चुभ जाती है और दूसरे ही दिन वह चुपचाप घोड़ा बाबा भारती के पास छोड़ जाता है। घोड़े को देखकर बाबाजी की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं, वे कह उठते हैं:

'अब कोई गरीबों की सहायता से मुँह न मोड़ेगा।'

इस कहानी का केन्द्र बिंदु बाबा भारती की केवल एक उदार भावना है और इसी भावना को प्रकाश में लाने के लिए ही लेखक ने बाबा भारती, डाकू खड्गसिंह इत्यादि की सृष्टि करके इस कहानी की कल्पना की। ऐसा जान पड़ता है कि इस वातावरण में यही एक भावना ओत-प्रोत है। प्रस्तुत पुस्तक में संगृहीत 'पूस की रात' जाड़े का एक बड़ा ही सुन्दर चित्रण है। हलकू, उसकी स्त्री मुन्नी और कुत्ता जबरा तो उस अनुभूति को प्रकाश में लाने के लिए निमित्त-मात्र है। वातावरण प्रधान कहानियों की कला की तुलना चित्र-कला से की जा सकती है। यदि किसी चित्रकार को पूस की रात के जाड़े का चित्र प्रस्तुत करना हो तो वह अपने चित्र में पेड़-पौधा, पशु-पक्षी, नर-नारी सबका चित्र खींचता है और उनकी भाव-भंगी से पूस की रात की ठंडक की ओर संकेत कराता है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नर-नारी इत्यादि उस चित्र में केवल निमित्त मात्र होते हैं। चित्रकार उनकी सहायता से एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करता है जिसमें ठंडक की भावना भरी रहती है। उसी प्रकार वातावरण-प्रधान कहानी में भी लेखक एक वातावरण की सृष्टि करता है, जिसमें कोई भावना अथवा अनुभूति ओत-प्रोत रहती है। वह चरित्रों की व्यवस्था करता है, घटना और प्रसंगों की कल्पना करता है, परन्तु वे सभी केवल एक भावना अथवा अनुभूति की ओर संकेत हैं, जो उस कहानी का प्राण है।

वातावरण-प्रधान कहानी की आत्मा तो चरित्र-प्रधान कहानी के समान ही है, परन्तु इसका कला-रूप चरित्र-प्रधान कहानियों से भिन्न होता है और चित्रकला से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। कला की दृष्टि से वातावरण-प्रधान कहानियों का महत्त्व बहुत ही अधिक है, क्योंकि ये कहानियाँ अत्यंत सुन्दर और प्रभावशाली होती हैं। 'प्रसाद' की कहानी 'आकाश दीप' वातावरण-प्रधान कहानी कला का सर्वोत्तम उदाहरण है।

मानव-चरित्र और भावना के विश्लेषण और व्यंजना के पश्चात् आधुनिक कहानी के द्वितीय उत्थान में मानव-जीवन और इतिहास के चिरंतन अथवा सामयिक सत्यों की व्यंजना होने लगी। इस विकास का प्रारंभ 'सुदर्शन' की 'कमल की बेटी', 'संसार के सबसे बड़ी कहानी' और 'एथेंस' का सत्यार्थी' इत्यादि कहानियों से हुआ, जिनमें मानव जीवन से कुछ महान् और चिरंतन सत्यों की व्यंजना पुराण-कथा के रूप में हुई। उदाहरण के लिए 'कमल की बेटी' कहानी ले लीजिए। भगवान् कृष्ण ने कमल के सौंदर्य पर मुग्ध होकर उसे एक सुन्दरी तरुणी के रूप में परिवर्तित कर दिया। परन्तु अब प्रश्न उठा कि यह सौंदर्य-प्रतिभा रहेगी कहाँ? समुद्र अतल है, हिमालय सदा हिम से आच्छादित रहता है, वनों में सूनापन है, पुष्प-वाटिकाओं में ग्रीष्म की जलती हुई लू चलती है और सरोवर में सेवार हैं। इस आदर्श सौंदर्य के लिए संसार में कोई आदर्श स्थल नहीं। भगवान् चिन्ताग्रस्त हो गये। अंत में उन्होंने देखा कि इस आदर्श सौंदर्य के लिए केवल कवि का हृदय ही उपयुक्त स्थान है। वहाँ हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों की अभ्रभेदी उत्तुंगता है, हिल्लोलमय महासागर की गंभीरता है, अरण्य सूनापन और गिरि-कंदराओं का अन्धकार है। उन्होंने कमल की बेटी से कवि के हृदय में रहने को कहा, परन्तु यह सुनते ही वह काँप उठी। भगवान् ने उसको सांत्वना दी :

'तुम सुन्दरी हो तुम्हारा आसन कवि का हृदय है। यदि वहाँ हिम है तो तुम सूरज बन कर उसे पिघला दो, यदि वहाँ समुद्र की गहराई है तो तुम मोती बनकर उसे चमका दो। यदि वहाँ एकांत है तो तुम सुमधुर संगीत आरम्भ कर दो, सन्नाटा टूट जायगा; यदि वहाँ अँधेरा है तो तुम दीपक बन जाओ, अँधेरा दूर हो जायगा ?'

कमल की बेटी इन्कार न कर सकी। वह अब तक वहाँ रहती है। यह एक कलापूर्ण सृष्टि है जिसमें लेखक ने अपनी दिव्य दृष्टि से जीवन के एक चिरन्तन सत्य को प्रत्यक्ष कर कहानी के रूप में प्रगट किया। इस प्रकार की कहानियों का सबसे महत्वपूर्ण-अंश इनका कला-रूप है, जो पुराण-कथा अथवा रूपक-कथा से बहुत मिलता-जुलता है। लेखक ने कहानी पर सत्यता की एक अमिट छाप लगाने के लिये इसे पुराण कथा का रूप दिया है। उदाहरण के लिये सुदर्शन का 'एथेंस का सत्यार्थी, देखिये। इसमें एथेंस का सत्यार्थी देवकुलीश सत्य को असली रूप में—नंगा, बेपरदा, खुला—देखना चाहता है। इसके लिए वह ज्ञान और विवेक की देवी मिनर्वा की संगमरमर की मूर्ति के सामने घंटों बैठा प्रार्थना किया करता है। अन्त में उसकी साधना सफल हुई और देवी ने स्वयं उसे सत्य का असली रूप दिखया। परन्तु इसका फल यह हुआ कि उसकी मानवी आँखें नंगे सत्य का दृश्य देखने में असमर्थ होने के कारण फूट गयी। देवी ने उसे बताया कि सत्य पर्दों के अन्दर ही से देखा जा सकता है; जब उसका पर्दा उतार दिया जाता है तो मनुष्य वह देखता है, जो कभी नहीं देख सकता।

इस कहानी में लेखक ने एक महान् सत्य की व्यञ्जना करने के लिए इस कहानी को रूप दिया है वह पुराण-कथाओं का ही रूप है। इसमें अस्वाभाविक और अप्राकृतिक बातों का समावेश है। फिर भी ऐसा जान पड़ता है कि इस सत्य की व्यंजना के लिए कोई दूसरा

रूप इतना उपयुक्त भी नहीं। जीवन के चिरन्तन सत्य हम देवी और देवताओं के ही मुख से सुनने के आदी हो गए हैं। इसलिए देवी देवताओं का समावेश सत्यता की अमिट छाप के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

मानव जीवन और इतिहास में चिरन्तन सत्य बहुत ही कम है। इसलिए पिछले लेखक कहानी के रूप में सामयिक सत्यों की व्यंजना करने लगे। मोहनलाल महतो की कहानी 'कवि', चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार का 'कामकाज', अज्ञेय का 'रोज' इत्यादि कहानियों में सामयिक सत्य की स्पष्ट और सुन्दर व्यंजना हुई है!

सामयिक सत्य की व्यञ्जना में कहानियों के मुख्य तीन कला रूप मिलते हैं। पहला रूप पुराण-कथा का रूप है, जिसे हम ऊपर देख चुके हैं। सत्य की अमिट छाप लगाने और पाठकों को आकर्षित करने के लिए यह रूप बहुत उपयुक्त है। मोहनलाल महतो की कहानी 'कवि' में लेखक इस सामयिक सत्य की व्यंजना करना चाहता है कि आधुनिक-युग कवि और कविता के लिए उपयुक्त नहीं और इस व्यञ्जना के लिए वह हिन्दी के महान् कवि तुलसी, सूर, बिहारी, देव और केशव से भारती के द्वार पर सत्याग्रह करवाता है कि भारत में फिर से कवि पैदा हों। देवी भारती कवियों का अनुरोध मानकर रामधन तेली और एक डिप्टी साहब मि० सिंह को कवित्व-शक्ति-प्रदान करती हैं, और वे दोनों ही पागल करार देकर पागलखाने में बन्द कर दिये जाते हैं। अन्त में उन कवियों को ज्ञात हो जाता है कि आधुनिक-युग भारत में कवियों के लिये उपयुक्त नहीं और वे धरना देना बन्द कर देते हैं। इस रूपक में उपर्युक्त सत्य की जितनी सुन्दर व्यञ्जना हुई है और उसकी अमिट छाप जो पाठकों के मस्तिष्क पर पड़ती है, वह और किसी रूप में सम्भव नहीं। इसी प्रकार 'उग्र' की कहानी 'देशभक्त' में पुराण-कथा के रूप में एक सुन्दर कहानी की सृष्टि हुई है। पुराण-कथा के रूप में कहानियों की

कलात्मकता और व्यञ्जना-शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

सत्य की व्यञ्जना का दूसरा रूप प्रभाववादी कहानियों में मिलता है जिसमें लेखक एक प्रभाव की सृष्टि करता है और उस प्रभाव से ही पाठकों के मन पर किसी सामयिक सत्य (जिसकी लेखक व्यञ्जना करना चाहता है) की अमिट छाप बैठ जाती है। उदाहरण के लिए 'काम-काज' कहानी लीजिये। लेखक ने तीन पृथक् चित्र तीन पृथक् कहानियों के रूप में उपस्थित किये हैं और उन तीनों में ऐसा जान पड़ता है कि मानव अपने काम काज के पीछे मानवता की बलि चढ़ चुका है। लेखक ने प्रतिदिन के जीवन के असंख्य उदाहरणों से केवल तीन नमूने छाँट कर रख दिये हैं, जो चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं कि देखो कामकाज के पीछे मानवता की बलि चढ़ गई है, उन और कहानियों के पीछे कलाकार चुपचाप मानो कह रहा है कि "मैंने अपनी ओर से कुछ भी नहीं जोड़ा घटाया है वास्तविक चित्र पाठकों के सामने है वे स्वयं देख सकते हैं।' प्रभाववादी ढंग का एक दूसरा और अधिक सुन्दर रूप 'अज्ञेय' की कहानी 'रोज' में मिलता है। इसमें भी लेखक ने प्रतिदिन के असंख्य उदाहरणों से एक सुन्दर प्रभावशाली और भावपूर्ण नमूना छाँट कर सामने रख दिया है कि साधारण मनुष्यों का जीवन कितना भाररूप और कितना ऊब पैदा करनेवाला होता है। परन्तु इस कहानी में लेखक ने इस भारग्रस्त जीवन के प्रति कठोर उपेक्षा का भाव न दिखा कर सहानुभूति ही प्रगट की है। कहानी में रूप और शैली दोनों ही बहुत भावपूर्ण और उत्कृष्ट हैं। सत्य की व्यंञ्जना का तीसरा रूप भगवतीचरण वर्मा की व्यंग्यात्मक कहानियों में मिलता है उदाहरण के लिये उनकी कहानी 'प्रेजेन्टस' ले लीजिये जिसमें आधुनिक सभ्य नारी के प्रेम और स्नेह के प्रति एक गम्भीर व्यंग की व्यंजना की गई है। उस सभ्य नारी की सम्पत्ति है उसके सैकड़ों प्रेमियों का एक-एक

'प्रेजेन्ट'। उन उपहारों के अतिरिक्त उसके नारीत्व का कुछ मूल्य नहीं। एक-एक प्रेमी पतिंगे की भाँति आते-जाते हैं और एक प्रेजेन्ट के रूप में अपने प्रेम का एक चिन्ह छोड़कर चले जाते हैं और वह सभ्य नारी किसी दूसरे प्रेमी का स्वागत करने को तैयार हो जाती है। आजकल की नारी सभ्यता पर कितना करारा व्यंग है। इसी प्रकार उनकी 'प्रायश्चित' कहानी में पुराने पोंगा-पंथी पण्डितों पर बड़ा सुन्दर व्यंग किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में संग्रहीत वर्मा जी की कहानी 'मुग़लों ने सल्तनत बख्श दी' में लेखक ने एक ऐतिहासिक सत्य की व्यञ्जना बड़े ही सुन्दर व्यंग के रूप में की है। अंगरेज़ों ने भारत को तलवार के बल से नहीं जीता, वरन् व्यापारी के रूप में आकर अपनी नीति कुशलता से एक साम्राज्य की स्थापना कर ली—इसी सत्य की व्यञ्जना कितने सुन्दर व्यंग के रूप में हुई है।

आधुनिक कहानियों का अंतिम विकास कमलाकान्त वर्मा की 'खंडहर' 'तकली' 'पगडंडी' इत्यादि कहानियों में मिलता है, जिसमें लेखक ने अध्यांतरिक (SubJective) दृष्टिकोण उपस्थित किया है। कवि हृदय लेखक ने एक खंडहर देखा और उसकी कल्पना के सामने वह चित्र उपस्थित हो गया जब कि उस खँडहर के स्थान पर एक सुन्दर अट्टालिका थी—ईंट, पत्थर, चूना और गारों से बनी हुई दृढ़ और विशाल। उसके सामने थी एक सड़क जिस पर म्युनिसिपैल्टी का लैम्प रात को प्रकाश फैलाता था। लेखक ने इस आकर्षक चित्र को एक कहानी के रूप में प्रगट किया, जिसमें महल, प्रकाश, सड़क इत्यादि मानव के रूप में उपस्थित हो अपना स्नेह प्यार, मान-अभिमान, कलह-विरोध इत्यादि कहानी सुनाते हैं। इस कल्पनापूर्ण कहानी का कलारूप आधुनिक कविता के संबोध गीति (Odes) के कलारूप से बहुत कुछ मिलता जुलता है। इस प्रकार सुमित्रानंदन पंत की कविता 'बादल' में बादल स्वयं अपनी प्रशंसा तथा गुण-दोष इत्यादि सुना

डालता है, उसी प्रकार 'पगडंडी' भी एक कहानी के रूप में अपना प्रेम और कलह, अपना मान और अभिमान अपना बचन और यौवन सबका एक सुसंगत इतिहास कह सुनाती है। 'निराला' की 'यमुना के प्रति' कविता में जिस प्रकार कवि को यमुना की लहरों के संगीत में उस अतीत स्वर्ण-युग का संगीत सुनाई पड़ता है। जब नटनागर श्याम गोपियों के साथ रासलीला किया करते थे, उसी प्रकार 'खँडहर', कहानी से कमलाकान्त वर्मा को खँडहर देखकर उस अतीत-युग के चित्र की याद आ जाती है, जब वहाँ एक महल रहा होगा अपने वैभव से परिपूर्ण। लेखक कहानी के रूप में उसी चित्र की व्यंजना करता है।

इसी प्रकार की कहानियों में कवित्वपूर्ण कल्पना का अत्यधिक उपयोग होता है। लेखक खँडहर, तकली और पगडंडी इत्यादि को मानवबुद्धि और चेतना से संयुक्त कर देता है और वे अपना अतीत इतिहास सुनाते हैं। अपने जीवन में साथियों के साथ मान-अभिमान, रूठना-मनाना और प्रेम-कलह इत्यादि सभी का वर्णन करते हैं। 'तकली' कहानी में तकली और पूनी के वार्तालप से मानव सभ्यता का पूरा इतिहास ही सामने आ जाता है।

आधुनिक कहानी की आत्मा का विकास साधारण दैव-घटनाओं और संयोगों से प्रारम्भ कर मानव-चरित्र के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण असाधारण परिस्थितियों में मनोविश्लेषण जीवन के सामयिक और चिरंतन सत्यों की व्यंजना और कल्पना के रंगीन पंखों पर जीवन के उतार-चढ़ाव के चित्रों का चित्रण तक हुआ। परन्तु आधुनिक कहानी के विकास का प्रधान अंग उसके कला-रूप का विकास है। आज का कहानी लेखक कहानी की आत्मा से कहीं अधिक उसके कला-रूप के सौंदर्य और चित्ताकर्षक प्रभाव की ओर ध्यान देता है। आज की कहानी में कथानक और चरित्र का उतना महत्त्व नहीं रह गया है जितना भावनाओं की सूक्ष्म व्यंजना और प्रभाव का।

(ख) शैली

कहानी लिखने की सबसे प्रथम और प्रचलित शैली ऐतिहासिक शैली थी, जिसमें कहानी लेखक इतिहासकार की तरह तटस्थ-सा होकर एक अन्य पुरुष की भाँति कहानी का वर्णन करता था। इस शैली में कई विशेषता न थी, हाँ, कहीं-कहीं चमत्कारपूर्ण उक्तियों और अलंकृत भाषा के कारण साहित्यिकता की झलक अवश्य मिल जाया करती थी। इस शैली का प्रथम विकास राधिका रमण सिंह की प्रथम कहानी 'कानों में कँगना' मिलती है, जहाँ लेखक ने बँगला कहानियों के प्रभाव से अपनी शैली में नाटक तत्व का सम्मिश्रण किया। जिस प्रकार एक सफल नाटककार नाटक के संघर्ष को प्रारम्भ में ही कुछ चरित्र के वार्तालाप में प्रकट कर देता है, उसी प्रकार 'कानों में कँगना' कहानी के लेखक ने प्रारम्भ में ही कहानी का मूलतत्त्व दे दिया।

"यह क्या है ?"
"कानों में कँगना।"

इस संक्षिप्त वार्तालाप में ही पूरी कहानी की कुञ्जी है। लेखक ने इसी प्रकार यथार्थवादी संभाषणों और स्वाभाविक तथा प्रभावशाली वर्णनों से एक सुन्दर कहानी की सृष्टि की। विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' और जयशंकर प्रसाद ने इस शैली को और भी अधिक पूर्ण बनाया। उदाहरण के लिए 'कौशिक' की 'ताई' का प्रारम्भ देखिये :

ताऊ जी, हमें लेलगाड़ी ला दोगे ; कहता हुआ एक पंच वर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाहें फैलाकर कहा, "हाँ बेटा ? ला देंगे।"

यहाँ लेखक ने बिना यह बताए ही कि बाबू रामजीदास कौन हैं और इस बालक का क्या परिचय है, कहानी का प्रारम्भ कर दिया। इसे

उसने पीछे वर्णनात्मक ढंग से बतला दिया है। इस प्रकार के प्रारम्भ में एक नाटकीय सौन्दर्य अवश्य आ जाता है। 'प्रसाद' ने आकाश-दीप' का प्रारंभ भी वार्तालाप से किया है और यह वार्तालाप भी इस कौशल से कराया गया है कि वार्तालाप करने वालों का बहुत कुछ परिचय उनके संभाषण से ही मिल जाता है। वास्तव में यह कौशल नाटक लिखने वालों का है और 'प्रसाद' एक सफल नाटककार थे। इसी कारण उन्होंने कहानी-लेखन-शैली में संभाषणों का महत्त्व और नाटकीय सौन्दर्य की अद्‌भुत वृद्धि की।

संभाषण-कला और नाटकीय सौन्दर्य के सम्मिश्रण से ऐतिहासिक शैली का अपूर्व विकास हुआ, फिर मनोविज्ञान के सूत्रपात से वह शैली और भी परिष्कृत और पूर्ण हो गयी। कहानी के विविध चरित्रों के कार्यों और विचारों की पूर्ण अभिव्यंजना और यथार्थ चित्रण के लिए परिस्थिति वातावरण इत्यादि का चित्रण भी आवश्यक हो गया। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द की कहानी 'ईदगाह' में ईद का यथार्थ, सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन देखिए :

रमज़ान के पूरे तीस रोजों के बाद आज ईद आई है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटने नहीं है पड़ोस के घर में सुई तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गये हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी जल्दी बैलों को सानी पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जायगी। तीन कोस का पैदल रास्ता फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असंभव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने

एक रोजा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं, लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज़ है। रोज़े बड़े-बूढ़ों के लिये होंगे। उनके लिये तो ईद है। इत्यादि

इस प्रकार के स्वाभाविक वर्णनों और यथार्थवादी चित्रों से ऐतिहासिक शैली का पूर्ण विकास हुआ।

कहानियों की दूसरी प्रधान शैली चरित-शैली (Biographical Style) है, जिसमें कहानी का कोई पात्र सारी कहानी 'उत्तम पुरुष' (मैं) में कहता है। अस्तु, सुदर्शन रचित 'अँधेरी दुनियाँ' में रजनी उत्तम पुरुष (मैं) सारी कहानी कहती है। यथा :

मैं पंजाबिन हूँ, परन्तु मेरा नाम बंगालियों का सा है। मैंने अपने सिवा किसी दूसरी पंजाबिन लड़की का नाम रजनी नहीं सुना। इत्यादि और इसी प्रकार वह अपने विवाह; अपनी आँखों की चिकित्सा इत्यादि का विस्तृत वर्णन करके पूरी कहानी सुनाती है। इस प्रकार की शैली में अन्य शैलियों की अपेक्षा सत्य का आभास अधिक मिलता है। इस शैली में भी एक दोष है कि कहानी कहने वाले के अतिरिक्त अन्य चरित्रों का चित्रण स्वाभाविक रूप से नहीं हो पाता। कहने वाला अपने भाव, विचार तथा अपने अंतस्तल की छोटी से छोटी बातों की व्यंजना कर सकता है, परन्तु अन्य चरित्रों के सम्बन्ध में उसे यह सुविधा नहीं है। जिन कहानियों में एक ही प्रधान-चरित्र होता है और अन्य सभी चरित्र गौण होते हैं, उन कहानियों के लिए यह शैली अत्यन्त उपयुक्त है।

इस दोष के परिहार के लिए उपन्यासों की भाँति कहानियों में भी सभी चरित्रों को अपनी-अपनी कहानी अपने-अपने शब्द में सुनानी पड़ती है। अस्तु, प्रेमचन्द की कहानी 'ब्रह्म का स्वांग' में पहले स्त्री अपनी कहानी सुनाती है, उसके पश्चात् पति महाशय अपने मन की बातें कहते हैं; फिर स्त्री अपनी गाथा सुनाती है, फिर पति महाशय का नम्बर आता है, अंत में स्त्री की बातों से कहानी का अंत होता है।

यहाँ सभी बातें चरित्रों के ही स्पष्ट शब्दों द्वारा कही गई हैं और सभी पात्र-पात्रियों के अनुभव उन्हीं के मुख से कहलाये गये हैं। इस प्रकार इस कहानी में यथार्थता का पूर्ण आरोप है और चरित्र-चित्रण सुन्दरतम् रूप में हुआ है। यह शैली उस कहानी में उपयुक्त हो सकती है, जिसमें दो या तीन पात्र-पात्रियाँ हों, अधिक नहीं। यहाँ दो ही पात्र हैं, इस कारण यह कहानी इस शैली में सफलतापूर्वक कही जा सकी है। परन्तु जहाँ अनेक चरित्र होते हैं वहाँ मुख्य-चरित्र के द्वारा ही सारी कहानी कहलाना अधिक अच्छा होता है। चरित्र-शैली चरित्र-प्रधान कहानियों के लिए बहुत ही उपयुक्त है।

कहानी कहने की एक और शैली पत्र-शैली (Epistolatory) है, जिसमें सारी कहानी पत्रों द्वारा कही जाती है। सुदर्शन रचित 'बलिदान' कहानी इसी शैली में है, इसमें कुल ग्यारह पत्र हैं और इन पत्रों द्वारा कहानी कथानक और चरित्रों का विकास होता है। 'प्रसाद' की 'देवदासी' और राधिकारमण सिंह की 'सुरबाला' भी इसी शैली में लिखी गई है और प्रस्तुत पुस्तक में 'अपराधी' भी इस शैली की कहानी है। शैली की दृष्टि से पत्र-शैली बहुत कुछ चरित्र-शैली के दूसरे रूप से मिलती है, जिसमें प्रत्येक चरित्र अपनी-अपनी कहानी लिखता है, क्योंकि इसमें भी पत्र लिखने वाला अपने हृदय को खोल-कर रख देता है। परन्तु इसमें कुछ दोष भी हैं। एक तो पत्रों में बहुत सी अनावश्यक बातें भी पत्रों के शिष्टाचार (Formality) के लिए लिखनी पड़ती हैं, जिनका कहानी से कोई सम्बन्ध नहीं होता। दूसरे कहानी का कथानक समझने के लिए बहुत अधिक दिमाग लगाना पड़ता है, क्योंकि किसी एक पत्र में लिखी हुई बातों का पूरा विवरण और विश्लेषण अन्य कई पत्रों के पढ़ने और समझने के पश्चात् हो पाता है। इसके अतिरिक्त कुछ अनावश्यक चरित्रों की भी आयोजना करनी पड़ती है। इस प्रकार यह शैली बहुत ही दोषपूर्ण है और इसका

प्रचार भी इसीलिए बहुत कम हुआ। केवल प्रयोग की दृष्टि से ही कुछ इनी-गिनी कहानियाँ इस शैली में लिखी गयीं।

पत्र-शैली से ही बहुत कुछ मिलती-जुलती डायरी-शैली है, जिसमें मुख्य-चरित्र अथवा अन्य-चरित्रों के डायरी के उदाहरणों से पूरी कहानी कही जाती है। इस शैली में पत्र-शैली के सभी गुण और दोष मिलते हैं। इस शैली का प्रचार हिन्दी में बिल्कुल ही नहीं हुआ, केवल दो एक कहानियाँ प्रयोग की दृष्टि से अवश्य लिखी गईं, जिनका कोई विशेष महत्व नहीं।

कहानियों का वर्गीकरण

साधारण रूप से हिन्दी कहानियों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ कहानियों में कथा होती है, कुछ में चरित्र होते हैं और कुछ में कार्य होता है। अन्य कुछ कहानियों में कथा, चरित्र और कार्य सभी होते हैं, परन्तु वे केवल निमित्त-मात्र होते हैं, लेखक का मुख्य उद्देश्य किसी भावना अथवा अनुभूति से ओत-प्रोत वातावरण की सृष्टि करना होता है। कुछ अन्य कहानियों में लेखक का उद्देश्य किसी प्रभाव की सृष्टि करना होता है, जिसमें घटनाओं और प्रसङ्गों, चरित्रों तथा कार्यों की सहायता से किसी प्रभाव की सृष्टि की जाती है। इन तीनों प्रकार की कहानियों को हम क्रम से कथा प्रधान, वातावरण-प्रधान और प्रभाव-प्रधान कहानियाँ कह सकते हैं।

(क) कथा-प्रधान कहानी

कथा-प्रधान कहानियों में चरित्र अथवा पात्र, कार्य और कार्यों तथा चरित्रों के बीच सम्बन्ध, ये तीन मुख्य पक्ष होते हैं। जिस कहानी में पात्र अथवा चरित्र शेष दोनों पक्षों की अपेक्षा अधिक प्रधान होते हैं, उसे चरित्र-प्रधान कहानी कहते हैं, जैसे 'आत्माराम', 'पुरस्कार', 'बूढ़ी काकी, इत्यादि। जिस कहानी में कार्य शेष दोनों पक्षों की अपेक्षा

अधिक प्रधान होते हैं वह कार्य-प्रधान और जिसमें कार्यों और चरित्रों के बीच का सम्बन्ध अथवा घटनाएँ और प्रसङ्ग चरित्रों और कार्यों से अधिक प्रधान होते हैं, उसे घटना-प्रधान कहानी कहते हैं।

(१) चरित्र प्रधान कहानी

चरित्र-प्रधान कहानियों में लेखक का मुख्य उद्देश्य किसी चरित्र का सुन्दर चित्रण करना होता है वह जिस चरित्र का चित्रण करना चाहता है, उसे विविध परिस्थितियों और प्रसङ्गों में डाल कर उसके गुण-विशेष की सुन्दर व्यञ्जना करता है। घटनाओं; प्रसङ्गों और परिस्थितियों की सृष्टि केवल इसीलिए होती है कि जिसमें चरित्र का सुन्दर और प्रभाव शाली चित्रण हो सके। उदाहरण के लिये प्रेमचंद की 'दफ्तरी' कहानी ले लीजिये। लेखक ने दफ़्तरी को गृहस्थी के अनेकजटिल परिस्थितियों में डालकर उसके चरित्र की सुन्दर व्यञ्जना की है कि किस प्रकार वह सभी कठिनाइयाँ, दुःख और बाधाएँ समभाव से सहन करता है। वह एक योगी है, महावीर है। स्वयं लेखक अन्त में लिखता है :

गृहदाह में जलने वाले वीर रणक्षेत्र के वीरों से कम नहीं होते।

और वास्तव में दफ़्तरी साहस और सहनशीलता में किसी वीरों से कम नहीं है।

कहानियों में स्थानाभाव के कारण चरित्रों के सभी अंगों और पक्षों का विशद् चित्रण संभव नहीं है, इसीलिये केवल एक विशेष पक्ष ही बड़ी सावधानी से चित्रित किया जाता है और अन्य सभी पक्ष अछूते रह जाते हैं, जिस एक पक्ष का चित्रण कहानी में होता है वह चरित्र के मुख्यतम् गुण विशेष का द्योतक रहता है और लेखक संक्षेप में ही उसका सुन्दरतम् चित्र खींचता है। अस्तु, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' में लहनासिंह जमादार के अपूर्व स्वार्थ-त्याग और बलिदान का बड़ा ही सुन्दर चित्रण है। लहना एक बालिका को ताँगे के नीचे आने से बचाता है, दोनों का परिचय होता है और

वे प्रायः मिल भी जाया करते हैं। बालिका बड़ी भोली-भाली है और लहना उससे प्रेम करने लगता है। कुछ समय पश्चात् बालिका का विवाह हो जाता है और लहना उसे भूल सा जाता है। कई वर्षों के पश्चात् लड़ाई पर जाने के पहले लहना अपने सूबेदार के घर जाता है और जब उसे मालूम होता है कि सूबेदारनी और कोई नहीं उसकी वह भोली बालिका है जिसे वह प्यार करता था, तब उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। सुबेदारनी लहना को अपने पुत्र और पति की रक्षा का भार देती है। इस पवित्र उत्तरदायित्व को लहनासिंह अपने प्राण देकर भी पूरा करता है। सूबेदार हजारासिंह और रोगग्रस्त बोधसिंह के प्राणों की वह रक्षा करता है और स्वयं घायल होकर वजीरासिंह की गोद में प्राण दे देता है, परन्तु उसे इतना सन्तोष है, कि उसने अपना वचन पूरा किया है। कहानी की साधारण सफलता का एक-मात्र कारण लहनासिंह का अपूर्व आत्मत्याग और बलिदान है, इसी प्रकार प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' कहानी में बूढ़ी काकी की लोभी और लालची-प्रकृति का विशद चित्रण है। बुद्धिराम और उसकी स्त्री सारे गाँव को अच्छी वस्तुएँ खिलाते हैं, परन्तु बूढ़ी काकी को कोई पूछता ही नहीं। इतना ही नहीं उसके माँगने पर उसका कई बार अपमान भी हुआ और दण्ड-स्वरूप उसे एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। बूढ़ी काकी रात को अपनी भूख मिटाने और अपनी हविस पूरी करने के लिए जूठी पत्तलों पर ही टूट पड़ती है। बुद्धिराम की पत्नी रूपा इस दृश्य को देखकर चकित रह जाती है और बूढ़ी काकी को भरपेट पूरियाँ और मिठाइयाँ खिलाती है। इस लोभ की प्रतिमूर्ति बूढ़ी काकी का चित्र इस कहानी में अपूर्व सौंदर्य संयुक्त है।

इस प्रकार की चरित्र प्रधान कहानियों के चरित्र प्रायः सभी विशेष प्रनार (Types) के अंतर्गत आते हैं और आत्म-त्याग वीरता, प्रेम, कायरता इत्यादि विशिष्ट गुणों अथवा अवगुणों के प्रतीक स्वरूप होते हैं।

'दफ़्तरी' कहानी में नायक कोई व्यक्ति विशेष नहीं है, वरन् गृह-दाह में जलने वाले वीरों का प्रतिनिधि और प्रतीक है। सच बात तो यह है कि कहानी के सीमित स्थान में व्यक्तिगत चरित्रों का चित्रण सम्भव ही नहीं है, क्योंकि किसी चरित्र का व्यक्तिकरण करने के लिए लेखक को उस चरित्र के उन विशेष गुणों को दिखाना पड़ता है, जिससे वह अपने समुदाय के व्यक्तियों से पृथक् किया जा सके और उन विशेष गुणों को दिखाने के लिए उस चरित्र को कुछ विशेष परि-स्थितियों और प्रसङ्गों में चित्रित करना आवश्यक है; जिसके लिए कहानी में पर्याप्त स्थान नहीं होता। इसलिए चरित्रों के व्यक्तिकरण के लिए अधिक से अधिक लेखक इतना ही कर सकता है कि कहीं-कहीं दो-चार अर्थ गाम्भीर वाक्य चरित्र की कुछ विशेषताओं का दिग्दर्शन मात्र करा दे। उदाहरण के लिए 'प्रसाद' रचित 'भिखारिन' को लीजिए।

सहसा जैसे उजाला हो गया—एक धवल, दाँतों की श्रेणी अपना भोलापन बिखेर गयी, "कुछ हम को दे दो रानी माँ ?"

निर्मला ने देखा एक चौदह बरस की भिखारिन भीख माँग रही है।

केवल तीन लाइन का वर्णन है, परन्तु इन्हीं तीन लाइनों ने 'प्रसाद' की भिखारिन को अन्य भिखारिनों से पृथक कर दिया है। 'धवल' दाँतो की श्रेणी, और 'भोलापन के बिखेरने, से ही हम व्यक्ति-विशेष को पहचान लेते हैं। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से पता चलेगा कि यह 'धवल दाँतों की श्रेणी' और भोलापन बिखेरने' वाली भिखारिनों का प्रतीक स्वरूप ही है, उसका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्त्व नहीं है।

चरित्र-प्रधान कहानियों में एक प्रकार की कहानियाँ ऐसी होती हैं जिनमें मुख्य-चरित्र में अचानक परिवर्तन हो जाता है। अस्तु, 'कौशिक' कि सर्वोत्तम कहानी 'ताई' में रामेश्वरी (ताई) के चरित्र में अचानक परिवर्तन होता है, वह अपने देवर के पुत्र मनोहर से घृणा करती है,

क्योंकि उसी के स्नेह के पीछे उसके पति पुत्र-प्राप्ति के लिए कोई यत्न-तीर्थ-यात्रा, पूजा-पाठ, व्रत-उपवास इत्यादि कुछ भी नहीं करते। बच्चों से उसे स्वाभाविक स्नेह है, परन्तु मनोहर की सूरत से उसे घृणा है। एक दिन मनोहर पतङ्ग पकड़ने के लिए मुँडेर पर दौड़ता है और अचानक पैर फिसल जाने के कारण गिरने लगता है। वह सहायता के लिए ताई को पुकारता है और ताई यदि चाहती तो उसे बचा भी सकती थी, परन्तु उसने सहायता न की और बच्चा चीखता हुआ नीचे गिर पड़ा। मनोहर के नीचे गिरते ही ताई के हृदय को एक धक्का लगता है और वह बीमार हो जाती है। मनोहर जब अच्छा हो गया और रामेश्वरी के पास लाया गया तभी वह अच्छी हुई और उसके बाद से वह उसे बहुत प्यार करने लगी। चरित्र प्रधान कहानियों में कहानी को प्रभावशाली बनाने के लिए इस प्रकार का अचानक परिवर्तन लेखकों का एक अत्यन्त उपयोगी कौशल है। कहानी के सीमित स्थल में चरित्र-चित्रण के लिए अनेक प्रसंगो और परिस्थितियों की आयोजना नहीं हो सकती, वरन् कुछ विशेष प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण प्रसंग ही इनमें वर्णित हो सकते हैं और सबसे प्रभावशाली तथा महत्त्वपूर्ण प्रसंग वे ही हुआ करते हैं, जिनसे नायक के चरित्र पर सबसे अधिक प्रभाव पड़े, यहाँ तक कि चरित्र में परिवर्तन भी हो जाय।

प्रधान-चरित्र के अचानक चरित्र-परिवर्तन को लेकर हिन्दी में कुछ अत्यन्त उत्कृष्ट कहानियाँ लिखी गयी। विशेषतया प्रेमचन्द तो इस कार्य में अत्यन्त प्रवीण थे। उनकी 'आत्माराम' कहानी में महादेव सुनार का तीन सौ मोहरें मिलने के पश्चात् अचानक परिवर्तन हो जाता है। वह एक ही रात में उदार-हृदय और दानी मनुष्य बन जाता है। 'दीक्षा' कहानी में वकील साहब अपनी प्रतीज्ञा भूल कर शराब पीना प्रारम्भ कर देते हैं और इसके इतने आदी हो जाते हैं कि एक रात शराब न मिलने पर साहब के चपरासी को घूस देकर साहब की

थोड़ी शराब चुरवा मँगाते हैं, परन्तु सुबह साहब को चपरासी की चोरी और वकील साहब के घूस देने का पता चलता है, तब वह वकील साहब का बहुत अपमान करता है। इस अपमान से वकील साहब ने केवल शराब पीना ही नहीं छोड़ा, वरन् शराब खोरी बंद करने के लिये वे एक सुधारक भी बन गये। चरित्र-परिवर्तन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'शंखनाद' नामक कहानी में मिलता है। गुमान कुश्ती लड़ने, कसरत करने; रामायण और भजन गाने तथा सिल्क का कुर्ता साफा बाँध कर इधर-उधर घूमने ही में सारा समय बिताता है, कोई उपयोगी कार्य नहीं करता है। उसके पिता, भाई, स्त्री सभी उसे समझा-बुझाकर, डरा-धमकाकर हार गये, लेकिन उसने किसी की न मानी, परन्तु एक घटना से उसमें एकदम पतिवर्तन हो गया। एक दिन एक फेरी वाला बच्चों के लिए अच्छी-अच्छी वस्तुएँ बेचने आया। गुमान की भाभियों ने अपने-अपने बच्चों के लिये अच्छी-अच्छी चीजें खरीद दीं, परन्तु गुमान के पुत्र के लिए खरीदने को उसकी स्त्री के पास पैसा ही न था। बच्चा निराश होकर रोने लगा। उसका यह रोना गुमान के कानों में शंखनाद के समान जान पड़ा और वह उसी दिन से परिवर्तित हो गया और घर का कामकाज करने लगा।

चरित्र-प्रधान कहानियों का एक सुन्दर और प्रभावशाली रूप उन मनोवैज्ञानिक कहानियों में मिलता है जहाँ, किसी असाधारण परिस्थिति विशेष में किसी चरित्र का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण होता है। प्रस्तुत पुस्तक में 'जाह्नवी', 'मिठाईवाला और 'अपराध' कहानियाँ इसी श्रेणी की हैं। इन कहानियों में कथा का भाग बहुत कम होता है, क्योंकि इनमें उन घटनाओं और प्रसंगों का केवल संकेत मात्र रहता है जिनके द्वारा प्रधान चरित्र के आदर्श और प्रतिनिधि गुण-अवगुण प्रकाश में लाए जाते हैं अथवा जिनके द्वारा चरित्र में अचानक परिवर्तन हो जाता है, कहानी-लेखक का मुख्य उद्देश्य उन आदर्श

गुणों अथवा अवगुणों का मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित करना होता है अथवा परिवर्तित चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना होता है। 'मिठाईवाला' कहानी में लेखक ने यह नहीं बतलाया कि मिठाईवाला कौन था? अपने लड़कों की मृत्यु के पहिले वह क्या करता था? उसके लड़कों की मृत्यु कैसे हुई? इत्यादि, इन सब बातों का संकेत मात्र कहानी में मिलता है, परन्तु उसके पुत्रों की मृत्यु के पश्चात् उसके परिवर्तित चरित्र का सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बड़ी सुन्दरता से कहानी में मिलता है। लेखक कार्यों और प्रसंगों की कम से कम सहायता लेता है, उसका एकमात्र उद्देश्य चरित्र-चित्रण है। परंतु इनमें एक कठिनाई यह पड़ती है कि कार्य और प्रसंग के अभाव में, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दुरुहता में कहानी नीरस हो जाती है और कभी-कभी तो ऐसा जान पड़ता है कि लेखक कहानी लिखने नहीं किसी मनोवैज्ञानिक समस्या को सुलझाने बैठा है। परन्तु जहाँ यह नीरसता नहीं है, जहाँ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ, रस, कार्य घटना-निर्देश का मणिकांचन योग हुआ है, वहाँ मनोवैज्ञानिक चरित्र-प्रधान, कहानियाँ उच्चतम कोटि की कहानियाँ बन पड़ी हैं।

(२) घटना प्रधान कहानी

घटना प्रधान कहानी कहानियों की सबसे साधारण श्रेणी है। इसमें चरित्र-चित्रण पर प्रधान रूप से जोर नहीं दिया जाता, वरन् उन उलझनों पर विशेष जोर दिया जाता है, जो विविध, चरित्रों के विविध परिस्थितियों में पड़ने के कारण पैदा हो जाती है। संक्षेप में, चरित्रों और परिस्थितियों के सम्बन्ध पर जोर दिया जाता है, उदाहरण के लिए 'कौशिक' की कहानी 'पावन-पतित' लीजिए। राजीवलोचन को, जो वास्तव में एक वेश्या का पुत्र था और रास्ते में पड़ा मिला था, एक पुत्रहीन धनवान मनुष्य ने बड़े ही स्नेह और आदर से पुत्र की भाँति पाला था, मरते समय उसे मनुष्य ने राजीवलोचन को बता दिया कि वह उसका

पुत्र नहीं है, वरन् सड़क पर पड़ा मिला था। राजविलोचन के हृदय को बड़ी ठेस लगती है और वह एक ताबीज़ के सहारे अपनी माँ को खोजने निकल पड़ता है। अंत में संयोग से उसे अपनी माँ के दर्शन होते हैं, जो एक वेश्या है। वह जीवन से निराश होकर अंतर्ध्यान हो जाता है—शायद आत्महत्या करने या संन्यास लेने के लिये। यहाँ लेखक ने एक चरित्र लेकर उसे विविध परिस्थितियों में डालकर एक मजेदार कहानी की सृष्टि की। 'कौशिक' की अधिकांश कहानियाँ इसी श्रेणी के अंतर्गत आती हैं। ज्वालादत्त शर्मा और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी भी घटना-प्रधान कहानी लिखने में सिद्धहस्त हैं।

कला की दृष्टि से घटना-प्रधान कहानी चरित्र-प्रधान, वातावरण-प्रधान और प्रभाव-प्रधान कहानियों से निम्नतर श्रेणी की कहानी होती है। इसमें दैव-घटना और संयोग का विशेष हाथ रहता है। इससे पाठकों के हृदय में वर्तमान कथा-कहानी-सम्बन्ध कौतूहल की शांति तो अवश्य हो जाती है; परन्तु कला और चरित्र का सौन्दर्य उसमें बहुत कम मिलता है।

(३) कार्य-प्रधान कहानी

कार्य-प्रधान कहानियों में सबसे अधिक जोर कार्य पर दिया जाता है। गोपालराम गहमरी की जासूसी कहानी बनारस के उपन्यास बहार आफिस से प्रकाशित साहसिक (Adventure) रहस्यपूर्ण (Mystry) अद्भुत (Fantastic) तथा वैज्ञानिक कहानियाँ इस श्रेणी की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। जी० पी० श्रीवास्तव की अति-नाटकीय प्रसंग-पूर्ण हास्यमय कहनियाँ भी इसी श्रेणी के अंतर्गत आती हैं। हम कहानियों में चरित्रों का कोई महत्त्व नहीं समझते। उसके कार्य ही अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। उदाहरण के लिए जासूसी कहानियों को ले लीजिए। जासूसों के चरित्र से हमें कोई मतलब नहीं, हम तो उनके विस्मयकारी चतुराइयों पर ही मुग्ध होते हैं।

(ख) वातावरण-प्रधान कहानी

वातावरण-प्रधान कहानी केवल वातावरण से युक्त कहानी नहीं है, कुछ कहानियों में परिपार्श्व (Setting) पर बहुत जोर दिया जाता है, परन्तु वातावरण-प्रधान कहानी के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। उसमें कहानी की परिस्थितियों में से किसी एक विशेष अंग अथवा पक्ष पर अधिक जोर दिया जाता है, किसी एक मुख्य भावना का प्राधान्य रखा जाता है, बाह्य-वातावरण अथवा परिपार्श्व का नहीं। इसका अभिप्राय परिपार्श्व से वातावरण का संयोग करा कर कहानी का अनुरंजन करना नहीं है, वरन् किसी मुख्य भावना को कथानक के विकास का प्रधान कारण बना कर उसी भावना से कहानी को अनुप्राणित करना है। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द का 'शतरंज के खिलाड़ी' ले लीजिए। लेखक ने पहले वाजिदअली शाह के समय लखनऊ के विलासमय जीवन का सुन्दर चित्र खींचा है। इस वातावरण ने कहानी को अनुरंजित अवश्य कर दिया। परन्तु इससे कथानक के विकास में सहायता नहीं मिलती। कथानक का विकास तो शतरंज खेलने के अपूर्व आनन्द की भावना से होता है। कहानी के पात्र तो केवल निमित्त मात्र हैं। लखनऊ के दो रईस मीरसाहब और मिर्जासाहब सुबह से आधी रात तक शतरंज खेलते हैं। पहिले तो उन्हें बेगम साहब का क्रोध सहना पड़ता है, फिर अवध की राजनीतिक दुरावस्था भी उनके इस खेल में बाधक होती है। इस कारण वे कुछ रात रहते ही दिन भर का खाना और शतरंज के मोहरे लेकर राजधानी से दूर गोमती नदी के किनारे किसी मसजिद के खँडहर में जा जमते और आधी रात तक किलाबंदियाँ होतीं, चालें चली जातीं, शह दी जाती और मात होती थी। अवध के नवाब बंदी हो जाते हैं, अवध लूटा जाता है और राज्य का पतन हो जाता है, परन्तु एक मीरसाहब और मिर्जासाहब को शह और मात से छुट्टी नहीं। परन्तु एक बार शतरंज की चालों में

गड़बड़ी हुई, मीर ने थोड़ी धाँधली कर दी, बस फिर क्या था, मीर और मिर्ज़ा, जिन्होंने नवाब साहब के लिए आँसू भी न गिराए थे, शतरंज के वजीर के लिए खून बहाने को तैयार हो गये और अंत में दोनों एक दूसरे के द्वारा मारे गये। शतरंज के खेल की ऐसी ही लत होती है। यह एक आदर्श वातावरण-प्रधान कहानी है। मीर और मिर्ज़ा तो इसमें केवल निमित्त मात्र हैं, कहानी का प्रधान उद्देश्य तो शतरंज की लत का कलापूर्ण चित्रण है।

कला की दृष्टि से वातावरण-प्रधान कहानियों का महत्त्व सबसे अधिक है। इनमें लेखक की कला की काट-छाँट और तराश दिखाने के लिए उपयुक्त अवसर मिलता है। यह वातावरण के चित्रण और परिपार्श्व की अवतारणा में मनमाना रंग भर सकता है; नाद-ध्वनि की व्यंजना कर सकता है, काट-छाँट कर सकता है। वह चाहे तो 'प्रसाद' की भाँति कवित्त्वपूर्ण वातावरण की सृष्टि कर सकता है, अथवा प्रेमचंद और सुदर्शन की भाँति लाक्षणिक सौन्दर्य से परिपूर्ण यथार्थवादी वातावरण का चित्रण कर सकता है। कहानी को अनुप्राणित करने वाली भावना भी कवित्त्वपूर्ण हो सकती है और उसकी व्यंजना में कला की तराश अच्छी तरह दिखाई जा सकती है। इस प्रकार की कहानियों में सभी जगह कला का बोलबाला होता है, सभी जगह कलाकार की महत्ता दिखाई पड़ती है। कवित्त्वपूर्ण वातावरण, कवित्त्वपूर्ण भावना और नाटकीय तथा आदर्शवादी परिस्थितियों की सृष्टि करने में जयशंकर 'प्रसाद' अद्वितीय हैं, उनकी कला कवित्त्वपूर्ण और स्वच्छंदतावादी है। दूसरी ओर सुदर्शन और प्रेमचन्द की कला में यथार्थवाद का चित्रण मिलता है।

(ग) प्रभाव-प्रधान कहानी

प्रभाव-प्रधान कहानियों में लेखक का मुख्य उद्देश्य किसी प्रभाव

विशेष की सृष्टि करना होता है और उनमें चरित्र, वातावरण, घटना इत्यादि से अधिक प्रधानता प्रभाव को दी जाती है। प्रभाव प्रधान कहानियों की कला बहुत कुछ संगीत कला से मिलती-जुलती है। संगीत के गाने के शब्दों का कोई विशेष महत्त्व नहीं है और न उस गाने का भाव ही कोई विशेष महत्त्व रखता है, मूलतत्त्व तो उसका प्रभाव है, जो सुनने वालों पर पड़ता है। इस प्रभाव की सृष्टि के लिए गायक जो अलाप लेता है गंधार और निषाद ध्वनियों का जो सामञ्जस्य उपस्थित करता है, वास्तव में उसी में संगीत की सफलता निहित है। चाहे वह 'चना जोर गरम प्यारे मैं लाया मजेदार', गाए अथवा 'ललित लवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीरे', वास्तविक वस्तु उसका प्रभाव है ठीक इसी प्रकार प्रभाव-प्रधान कहानी में उसका प्रभाव ही सब कुछ है, चरित्र कथानक इत्यादि का कोई विशेष महत्त्व नहीं। उदाहरण के लिए चंद्रगुप्त विद्यालंकार की कहानी 'क ख ग' लीजिये। इसमें लेखक ने तीन स्वतन्त्र कहानियाँ 'हत्या' 'शहादत' और 'त्याग' दी हैं, इसमें कहानियों के चरित्र और घटना का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। वास्तविक महत्वपूर्ण अंश उसका प्रभाव विशेष है, जो पढ़ने वालों के मस्तिष्क पर एक अमिट छाप लगाता है कि यह संसार स्वार्थ और सहानुभूति, हत्या और त्याग का रङ्गस्थल है, यहाँ एक ओर थोड़े से रुपये के लिये भाई भाई की हत्या करता है, तो दूसरी ओर एक स्वामिभक्त कुत्ता अपने स्वामी के बिछोह में अपने प्राण तक दे देता है। इसी प्रकार मोहनलाल महतो कहानी 'कवि' में न तो तुलसी, सूर और केशव का भारती के द्वार पर धरना और न भारती का वरदान ही मुख्य अंश है, वरन् कहानी का यह प्रभाव की आधुनिक युग कविता के लिए उपयुक्त नहीं है, इस कहानी में प्रधान वस्तु है।

प्रभाव-प्रधान कहानियों की कला का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश उन कहानियों का कला-रूप है। हिन्दी में प्रभाव-प्रधान कहानियाँ

मुख्य तीन रूपों में लिखी गई हैं, जिनका वर्णन कहानियों के विकास में हो चुका है। प्रभाव-प्रधान कहानी हिन्दी में अभी कुछ ही वर्षों से लिखी जाने लगी हैं, इसीलिए इस प्रकार की कहानियाँ हिन्दी में बहुत कम हैं।

(घ) विविध कहानियाँ

इन तीन प्रकार की मुख्य कहानियों के अतिरिक्त हास्यपूर्ण ऐतिहासिक, प्राकृतवादी और प्रतीकवादी कहानियों का उल्लेख अत्यन्त आवश्यक है।

हास्यपूर्ण कहानियाँ हिन्दी में केवल जी० पी० श्रीवास्तव, अन्नपूर्णानन्द और बद्रीनाथ भट्ट ने लिखीं। जी० पी० श्रीवास्तव की हास्यपूर्ण कहानियों का एक संग्रह 'लम्बी दाढ़ी' के नाम से प्रकाशित हुआ। परन्तु इन कहानियों में उच्चकोटि का हास्य नहीं है। बद्रीनाथ भट्ट, अन्नपूर्णानन्द और 'बेढब' इत्यादि कुछ थोड़े से लेखकों ने भी हास्यपूर्ण कहानियाँ लिखीं, परन्तु उनके हास्य में कोई विशेषता नहीं मिलती। प्रेमचन्द ने मोटेराम शास्त्री को नायक बनाकर कुछ मजेदार कहानियाँ लिखीं। जिनमें उच्चकोटि का हास्य मिलता है। मोटेराम और उनके मित्र चिन्तामणि प्राचीनकाल के विदूषकों की भाँति बड़े ही पेटू और हँसमुख ब्राह्मण हैं। मोटेराम का सत्याग्रह तो अपूर्व है और हास्यमयी कहानियों में उसका स्थान बहुत ही ऊँचा है।

वृन्दावनलाल वर्मा ने १९१० ई० के आस-पास कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ 'सरस्वती' में लिखीं, परन्तु बाद में उन्होंने उपन्यासों की ओर विशेष ध्यान दिया और ऐतिहासिक कहानियाँ लिखना बन्द कर दिया। 'प्रसाद' ने भी कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ लिखीं, जिनमें 'ममता' कहानी अत्यन्त सुन्दर और सराहनीय रचना है। प्रेमचन्द ने 'वज्रपात' और 'सारंधा', चुतुरसेन शास्त्रीने 'भिक्षुराज', जिसमें अशोक महान के

पुत्र और पुत्री राजकुमार महेन्द्र और आर्या संघमित्रा का बोधी गया से वटवृक्ष लेकर लङ्कायात्रा और लङ्का में बौद्ध धर्म के प्रचार का वर्णन है, और सुदर्शन ने 'न्यायमंत्री' जिसमें अशोक के न्यायमंत्री शिशुपाल के न्याय का वर्णन है, ऐतिहासिक कहानियाँ लिखीं। परन्तु सब कुछ लिखने के पश्चात् यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि ऐतिहासिक उपन्यासों की भाँति ऐतिहासिक कहानियाँ हिन्दी में बहुत कम हैं।

बेचन शर्मा 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री आदि कतिपय कहानी-लेखकों ने कुछ कहानियाँ प्राकृतवादी (Naturalistic) ढंग की लिखीं। इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य समाज का सुधार करना आवश्यक था, परन्तु उसमें मानवता को लज्जा प्रद और घृणास्पद बातें कलात्मक सौन्दर्य के साथ चित्रित की गई हैं! उनके सुन्दर और सत्य होने में कोई सन्देह नहीं—चरित्र चित्रण और शैली की दृष्टि से वे बड़ी शक्तिशाली और सुन्दर रचनाएँ हैं; परन्तु साथ ही वे अमंगलकारक और कुरुचिपूर्ण हैं। उनके कथानक साधारणतः वेश्याओं, खानगियों विधवाश्रमों, सड़क पर भीख माँगने वालों और गुण्डों के समाज से लिये गये हैं। उनका चरित्र-चित्रण यथार्थ और सजीव है, कला उनकी निर्दोष है, परन्तु जनता की रुचि और मंगल-भावना के लिये यह अच्छा होता कि ये समाज-सुधारक अपनी अपूर्व प्रतिभा का उपयोग किसी भिन्न रीति से करते।

प्रतीकवादी नाटकों और उपन्यासों की भाँति प्रतीकवादी कहानियाँ भी लिखी गयीं, परन्तु उनकी संख्या हिन्दी में बहुत ही कम है। राय कृष्णदास की कहानी 'कला और कृत्रिमता' जिसमें वास्तविक और कृत्रिम कला का अन्तर बड़े ही कलापूर्ण ढंग से चित्रित है, इस प्रकार की एक सफल रचना है। 'प्रसाद' की कहानी 'कला' भी बड़ी सुन्दर रचना है। स्कूल में यों तो सभी कला से प्रेम करते हैं, परन्तु रूपनाथ (सौन्दर्य के प्रतीक) और रसदेव (रस के प्रतीक)

कला की ओर सबसे अधिक आकर्षित हुए और कला भी उनसे कभी-कभी बातें कर लेती है। रूपनाथ सुन्दर, परन्तु बहुत ही कठोर हृदय वाला था। वह कला के बाह्य सौन्दर्य पर मुग्ध था और अपनी चित्र-कला में उसी का चित्रण किया करता था। दूसरी ओर रसदेव को लोग पागल समझते थे। वह कला के अंतःसौन्दर्य का उपासक था और उसके गीतों में उसके अंतःसौन्दर्य की व्यजंना मिलती थी। रूपनाथ को अपनी चित्र-कला से द्रव्य और यश दोनों की प्राप्ति होती थी। परन्तु बेचारे रसदेव को कुछ भी नहीं मिलता, मिलता है कला का आदर और सम्मान। लेखक ने अन्तःसौन्दर्य और कवित्व का महत्व बड़े ही सुन्दर और कलापूर्ण ढंग से व्यंजित किया है।

आधुनिक हिन्दी कहानी ने अब पर्याप्त उन्नति कर ली है। पहले कहानी केवल विनोद के लिये लिखी जाती थी—पत्र-पत्रिकाओं में पाठकों के विनोद के लिए दो कहानियों का होना आवश्यक समझा जाता था—उनका साहित्यिक मूल्य विशेष न था। परन्तु क्रमशः कहानी के रूप और शैली में विकास होता रहा और धीरे-धीरे कहानी भी एक साहित्यिक रूप की श्रेणी में आ गयी। 'प्रेमचन्द', 'प्रसाद', 'सुदर्शन' इत्यादि कहानी लेखकों की प्रतिभा इस साहित्यिक रूप में इस प्रकार चमक उठी कि लोगों को विवश होकर कहानी को एक स्वतंत्र साहित्यिक रूप मानना पड़ा। फिर तो इसकी उन्नति बड़ी शीघ्रता से होने लगी और अब यह केवल एक साहित्यिक रूप ही नहीं रह गई है, वरन् क्रमशः एक साहित्यिक-परम्परा में परिवर्तित होती जा रही है। आजकल कवि, नाटककार, उपन्यासकार और निबन्ध—लेखक भी कहानियाँ लिखना एक साहित्यिक कर्तव्य मानने लगे हैं। सुमित्रानन्दन 'पंत' सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान और महादेवी वर्मा जैसे लब्धप्रतिष्ठ और प्रथम श्रेणी के कवियों ने भी कहानियाँ लिखीं। लगभग आधी दर्जन पत्र-

पत्रिकाएँ ऐसी निकल रही हैं, जिनमें केवल कहानियाँ ही कहानियाँ रहती हैं। कहानी-साहित्य का भविष्य बहुत ही उज्वल दिखाई पड़ता है।

× × ×

प्रस्तुत संग्रह के तैयार करने में मैंने इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया है कि इसमें आधुनिक कहानी के कला-पक्ष के क्रमिक विकास का इतिहास जाना जा सके, साथ ही आधुनिक कहानी के विविध कला-रूपों और शैलियों का भी उदाहरण प्रस्तुत किया जा सके। इसके अतिरिक्त मैंने यह भी प्रयत्न किया है कि हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ उच्चकोटि के कहानी-लेखकों की कम से कम एक कहानी इस संग्रह में दी जा सके, जो यदि सर्वोत्तम नहीं तो कम से कम उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक हो। संग्रह करते समय मैंने कहानियों के वर्गीकरण का भी ध्यान रक्खा था और मेरी इच्छा थी कि प्रत्येक वर्ग की कहानियों का कम से कम प्रतिनिधि इस संग्रह में अवश्य हो, परन्तु स्थानाभाव के कारण कार्य-प्रधान, ऐतिहासिक, प्रतीकवादी तथा हास्यपूर्ण कहानियाँ नहीं दी जा सकीं। सुरुचि के अनुरोध के प्रकृतवादी कहानी को इस संग्रह में स्थान नहीं मिल सका। शेष सभी वर्गों की कहानियों का संग्रह प्रस्तुत किया गया है।

श्रीकृष्ण लाल

हिन्दी कहानियाँ

मुग़लों ने सल्तनत बख़्श दी

[भगवती चरण वर्मा]

हीरोजी को आप नहीं जानते, और यह दुर्भाग्य की बात है। इसका यह अर्थ नहीं कि केवल आपका दुर्भाग्य है, दुर्भाग्य हीरोजी का भी है। कारण, यह बड़ा सीधा-साधा है। यदि आपका हीरोजी से परिचय हो जाय, तो आप निश्चय समझ लें कि आपका संसार के एक बहुत बड़े विद्वान से परिचय हो गया। हीरोजी को जानने वालों में अधिकांश का मत है कि हीरोजी पहले जन्म में विक्रमादित्य के नवरत्नों में एक अवश्य रहे होंगे और अपने किसी पाप के कारण उनको इस जन्म में हीरोजी की योनि प्राप्त हुई। अगर हीरोजी का आपसे परिचय हो जाय, तो आप यह समझ लीजिये कि उन्हें एक मनुष्य अधिक मिल गया, जो उन्हें अपने शौक़ में प्रसन्नतापूर्वक एक हिस्सा दे सके।

हीरोजी ने दुनिया देखी है। यहाँ यह जान लेना ठीक होगा कि हीरोजी की दुनिया मौज और मस्ती की ही बनी है। शराबियों के साथ बैठ कर उन्होंने शराब पीने की बाजी लगाई है और हरदम पीते हैं। अफीम के आदी नहीं हैं, पर अगर मिल जाय तो इतनी खा लेते हैं, जितने से एक खानदान का खानदान स्वर्ग की या नरक की यात्रा कर सके। भंग पीते हैं तब तक, जब तक उनका पेट न भर जाय। चरस और गाँजे के लोभ में तो साधू बनते-बनते बच गये। एक बार एक आदमी ने उन्हें संखिया खिला दी थी, इस आशा से कि संसार एक पापी के भार से मुक्त हो जाय। पर दूसरे ही दिन हीरोजी उसके यहाँ पहुँचे और हँसते हुए उन्होंने कहा—"यार कल का नशा, नशा

था। राम दुहाई, अगर आज भी वह नशा करवा देते, तो तुम्हें आशीर्वाद देता।" लेकिन उस आदमी के पास संखिया मौजूद न थी।

हीरोजी के दर्शन प्रायः चाय की दूकान पर हुआ करते हैं। जो पहुँचता है, वह हीरोजी को एक प्याला चाय अवश्य पिलाता है। उस दिन जब हम लोग चाय पीने पहुँचे, तो हीरोजी एक कोने में आँखें बन्द किए हुये बैठे कुछ सोच रहे थे। हम लोगों में बातें शुरू हो गयीं और हरिजन आंदोलन से घूमते-फिरते बात आ पहुँची दानवराज बलि पर। पंडित गोवर्द्धन शास्त्री ने आमलेट का टुकड़ा मुँह में डालते हुए कहा—"भाई, यह तो कलियुग है। न किसी में दीन है न ईमान। कौड़ी-कौड़ी पर लोग बेइमानी करने लग गये हैं, अरे अब तो लिख कर भी लोग मुकर जाते हैं। एक युग था, जब दानव तक अपना वचन निभाते थे, सुरों और नरों की तो बात छोड़ दीजिये। दानवराज बलि ने वचनबद्ध होकर सारी पृथ्वी दान कर दी थी। पृथ्वी ही काहे की, स्वयं अपने को भी दान कर दिया था।"

हीरोजी चौंक उठे। खाँस कर उन्होंने कहा—"क्या बात है? ज़रा फिर से तो कहना!"

सब लोग हीरोजी की ओर घूम पड़े। कोई नयी बात सुनने को मिलेगी, इस आशा से मनोहर से शास्त्री जी के शब्दों को दुहराने का कष्ट उठाया—"हीरोजी! ये गोवर्द्धन शास्त्री जी हैं, सो कह रहे हैं कि कलियुग में धर्म-कर्म सब लोप हो गया। त्रेता में तो दैत्यराज बलि तक ने अपना सब कुछ केवल वचनबद्ध होकर दान कर दिया था।'

हीरोजी हँस पड़े—"हाँ, तो यह गोवर्द्धन शास्त्री कहने वाले हुए और तुम लोग सुनने वाले, ठीक ही है। लेकिन हमसे सुनो, यह तो कर रहे हैं त्रेता की बात, अरे तब तो अकेले बलि ने ऐसा कर दिया था, लेकिन मैं कहता हूँ कलियुग की बात। कलियुग में तो एक आदमी की कही हुई बात को उसकी सात-आठ पीढ़ी तक निभाती

गयी और यद्यपि वह पीढ़ी स्वयं नष्ट हो गयी, लेकिन उसने अपना वचन नहीं तोड़ा।"

हम लोग आश्चर्य में आ गये। हीरोजी की बात समझ में नहीं आयी, पूछना पड़ा—"हीरोजी, कलियुग में किसने इस प्रकार अपने वचनों का पालन किया?"

"लौंडे हो न?" हीरोजी ने मुँह बनाते हुए कहा—"जानते हो मुग़लों की सल्तनत कैसे गयी?"

"हाँ अंगरेजों ने उनसे छीन ली।"

"तभी तो कहता हूँ कि तुम सब लौंडे हो। स्कूली किताबों को रट-रट बन गये पढ़े-लिखे आदमी। अरे मुग़लों ने अपनी सल्तनत अंगरेजों को बख़्श दी।"

हीरोजी ने यह कौन-सा नया इतिहास बनाया! आँखें कुछ अधिक खुल गयीं। कान खड़े हो गये। मैंने कहा—"सो कैसे?"

"अच्छा तो फिर सुनो!" हीरोजी ने आरम्भ किया—

"जानते हो, शाहंशाह शाहजहाँ की लड़की शाहज़ादी रौशन आरा एक दफ़े बीमार पड़ी थी, और उसे एक अंग्रेज़ डाक्टर ने अच्छा किया था। उस डाक्टर को शाहंशाह शाहजहाँ ने हिन्दुस्तान में तिजारत करने के लिए कलकत्ते में कोठी बनाने की इज़ाज़त दे दी थी।"

"हाँ, यह तो हम लोगों ने पढ़ा है।"

"लेकिन असल बात यह है कि शाहज़ादी रौशनआरा, वही शाहंशाह शाहजहाँ की लड़की—यहाँ वही शाहज़ादी रौशनआरा एक दफ़े जल गयी। अधिक नहीं जली थी। अरे हाथ में थोड़ा सा जल गई थी, लेकिन जल तो गई थी और थी शाहज़ादी। बड़े-बड़े हक़ीम और वैद्य बुलाए गये। इलाज किया गया। लेकिन शाहज़ादी को कोई अच्छा न कर सका—न कर सका। और शाहज़ादी को भला

अच्छा कौन कर सकता था ? वह शाहज़ादी थी न ! सब लोग लगाते थे लेप, और लेप लगाने से होती थी जलन, और तुरन्त शाहज़ादी धुलवा डालती उस लेप को। भला शाहज़ादी को रोकने वाला कौन था ? अब शाहंशाह सलामत को फिक्र हुई। लेकिन शाहज़ादी अच्छी हो तो कैसे ? वहाँ तो दवा असर करने ही न पाती थी।

"उन्हीं दिनों एक अंगरेज घूमता-घामता दिल्ली आया। दुनिया देखे हुये, घाट-घाट का पानी पिये हुये, पूरा चालाक और मक्कार। उसको शाहज़ादी की बीमारी की खबर लग गयी। नौकरों को घूस देकर उसने पूरा हाल दरियाफ्त किया। उसे मालूम हो गया कि शाहज़ादी जलन की वजह से दवा धुलवा डाला करती है। सीधे शाहंशाह सलामत के पास पहुँचा। कहा कि डाक्टर हूँ। शाहज़ादी का इलाज उसने अपने हाथ में ले लिया। उसने शाहज़ादी के हाथ में एक दवा लगाई। उस दवा से जलन होना तो दूर रहा, उलटे जले हुये हाथ में ठंढक पहुँची। अब भला शाहज़ादी उस दवा को क्यों धुलवाती। हाथ अच्छा हो गया। जानते हो वह दवा क्या थी ?" हम लोगों की ओर भेद-भरी दृष्टि डालते हुये होरोजी ने पूछा।

"भाई हम दवा क्या जाने ?"—कृष्णानन्द ने कहा।

"तभी तो कहते हैं कि इतना पढ़-लिखकर तुम्हें तमीज़ न आयी। अरे वह दवा थी वेसलीन—वही वेसलीन, जिसका आज घर-घर में प्रचार है।"

"वेसलीन ! लेकिन वेसलीन तो दवा नहीं होती।"—मनोहर ने कहा।

"कौन कहता है कि वेसलीन दवा होती है ? अरे उसने हाथ में लगा दी और घाव आप-ही-आप अच्छा हो गया। वह अँगरेज बन बैठा डाक्टर—और उसका नाम हो गया। शाहंशाह शाहजहाँ बड़े प्रसन्न हुये। उन्होंने उस फिरंगी डाक्टर से कहा—

'माँगो।' उस फिरंगी ने कहा 'हुजूर मैं इस दवा को हिन्दुस्तान में रायज़ करना चाहता हूँ, इसलिए 'हुजूर' मुझे हिन्दुस्तान में तिज़ारत करने की इज़ाजत दे दें। बादशाह सलामत ने जब यह सुना कि डाक्टर हिन्दुस्तान में इस दवा का प्रचार करना चाहता है, तो बड़े प्रसन्न हुए! उन्होंने कहा—'मंजूर। और कुछ माँगो।' तब उस चालाक डाक्टर ने जानते हो क्या माँगा? उसने कहा—'हुजूर मैं एक तम्बू तानना चाहता हूँ, जिसके नीचे इस दवा के पीपे इकट्ठे किये जावेंगे। जहाँपनाह यह फरमा दें कि उस तम्बू के नीचे जितनी ज़मीन आवेगी, वह जहाँपनाह ने फिरंगियों को बख्श दी। शाहंशाह शाहजहाँ थे सीधे सादे आदमी उन्होंने सोचा, तम्बू के नीचे भला कितनी जगह आवेगी। उन्होंने कह दिया —'मंजूर'।

'हाँ, तो शाहंशाह शाहजहाँ थे सीधे-सादे आदमी, छल-कपट उन्हें आता न था और वह अँगरेज था दुनिया देखे हुए। सात समुद्र पार करके हिन्दुस्तान आया था न! पहुँचा विलायत, वहाँ उसने बनवाया रबड़ का एक बहुत बड़ा तम्बू और जहाज पर तम्बू लदवा कर चल दिया हिन्दुस्तान। कलकत्ते में उसने वह तम्बू लगवा दिया। वह तम्बू कितना ऊँचा था, इसका अन्दाज आप नहीं लगा सकते, उस तम्बू का रंग नीला था। तो जनाब वह तम्बू लगा कलकत्ते में, और विलायत से पीपे पर पीपे लद-लदकर आने लगे। उन पीपों में वेसलीन की जगह भरा था एक-एक अँगरेज जवान, मय बन्दूक और तलवार के। सब पीपे तम्बू के नीचे रखवा दिये गये। जैसे-जैसे पीपे जमीन घेरने लगे, वैसे-वैसे तम्बू को बढ़ा-बढ़ा कर जमीन घेर दी गयी। तम्बू तो रबड़ का था न, जितना बढ़ाया, बढ़ गया। अब जनाब तम्बू पहुँचा पलासी। तुम लोगों ने पढ़ा होगा कि पलासी का युद्ध हुआ था। अरे सब झूठ है? असल में तम्बू बढ़ते-बढ़ते पलासी पहुँचा था, और उस वक्त मुगल बादशाह का हरकारा दौड़ा था

दिल्ली। बस यह कह दिया गया कि पलासी की लड़ाई हुई। जी हाँ, उस वक्त दिल्ली में शाहंशाह शाहजहाँ की तीसरी या चौथी पीढ़ी सल्तनत कर रही थी। हरकारा जब दिल्ली पहुँचा, उस वक्त बादशाह सलामत की सवारी निकल रही थी। हरकारा घबराया हुआ था। वह इन फिरंगियों की चालों से हैरान था। उसने मौका देखा न महल, वहीं सड़क पर खड़े हो कर उसने चिल्ला कर कहा—'जहाँ-पनाह ग़जब हो गया! ये बदतमीज़ फिरंगी अपना तम्बू पलासी तक खींच लाये हैं, और चूँकि कलकत्ते से पलासी तक की जमीन तम्बू के नीचे आ गई है, इसलिए इन फिरंगियों ने उस जमीन पर कब्जा कर लिया है। जो इनको मना किया तो इन बदतमीज़ों ने शाही फ़रमान दिखा दिया।' बादशाह सलामत की सवारी रुक गई थी। उन्हें बुरा लगा। उन्होंने हरकारे से कहा—म्याँ हरकारे, मैं कर ही क्या सकता हूँ। जहाँ तक फिरंगियों का तम्बू घिर जाय, वहाँ तक की जगह उनकी हो गई, हमारे बुजुर्ग यह कह गये हैं।' बेचारा हरकारा अपना सा मुँह ले कर वापस गया।

'हरकारा लौटा, और इन फिरंगियों का तम्बू बढ़ा। अभी तक तो आते थे पीपों में आदमी, अब आने लगा तरह-तरह का सामान। हिन्दुस्तान का व्यापार फिरंगियों ने अपने हाथ में ले लिया। तम्बू बढ़ता ही रहा और पहुँच गया बक्सर। इधर तम्बू बढ़ा और लोगों की घबराहट बढ़ी। यह जो किताबों में लिखा है कि बक्सर की लड़ाई हुई, यह गलत है! भाई, जब तम्बू बक्सर पहुँचा, तो फिर हरकारा दौड़ा।

'अब जरा बादशाह सलामत की बात सुनिए। वह जनाब दीवान खास में तशरीफ रख रहे थे। उनके सामने सैकड़ों, बल्कि हजारों मुसाहब बैठे थे। बादशाह सलामत, हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे—सामने एक साहब जो शायद शायर थे, कुछ गा-गाकर पढ़ रहे थे और कुछ

मुसाहब गला फाड़-फाड़कर, वाह; वाह; चिल्ला रहे थे। कुछ लोग तीतर और बटेर लड़ा रहे थे। हरकारा जो पहुँचा, तो यह सब बन्द हो गया। बादशाह सलामत ने पूछा—"म्याँ हरकारे, क्या हुआ—इतने घबराये हुए क्यों हो? हाँफते हुए हरकारे ने कहा—'जहाँपनाह इन बदजात फिरंगियों ने अंधेर मचा रक्खा है। वह अपना तम्बू बक्सर खींच लाये।' बादशाह सलामत को बड़ा ताज्जुब हुआ। उन्होंने अपने मुसाहबों से पूछा 'मियाँ यह हरकारा कहता है कि फिरंगी अपना तम्बू कलकत्ते से बक्सर तक खींच लाये। यह कैसे मुमकिन है?' इस पर एक मुसाहब ने कहा—'जहाँपनाह, ये फिरंगी जादू जानते हैं, जादू।' दूसरे ने कहा—'जहाँपनाह, इन फिरंगियों ने जिन्नात पाल रक्खे हैं—जिन्नात सब कुछ कर सकते हैं।' बादशाह सलामत की समझ में कुछ आया नहीं। उन्होंने हरकारे से कहा—'म्याँ हरकारे' तुम बतलाओ यह तम्बू किस तरह बढ़ आया।' हरकारे ने समझाया कि तम्बू रबड़ का है। इस पर बादशाह सलामत बड़े खुश हुये। उन्होंने कहा—'फिरंगी भी बड़े चालाक हैं, पूरे अकल के पुतले हैं। इस पर सब मुसाहबों ने एक स्वर में कहा—'इसमें क्या शक है, जहाँपनाह बजा फ़रमाते हैं'। बादशाह सलामत मुसकराए—'अरे भाई किसी चोबदार को भेजो, जो इन फिरंगियों के सरदार को लावे। मैं उसे खिलअत दूँगा।' सब मुसाहब चिल्ला उठे—'वल्लाह! जहाँ-पनाह एक ही दरियादिल हैं—इस फिरंगी-सरदार को जरूर खिलअत देनी चाहिये।' हरकारा घबराया। वह आया था शिकायत करने, वहाँ बादशाह सलामत फिरंगी-सरदार को खिलअत देने पर आमदा थे। वह चिल्ला उठा—'जहाँपनाह! इन फिरंगियों ने जहाँपनाह की सल्तनत का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने तम्बू के नीचे करके उस पर कब्जा कर लिया है। जहाँपनाह, ये फिरङ्गी जहाँपनाह की सल्तनत छीनने पर आमदा दिखाई देते हैं।' मुसाहब चिल्ला

उठे—'एं' ऐसा गज़ब !' बादशाह सलामत की मुसकराहट गायब गयी। थोड़ी देर तक सोच कर उन्होंने कहा—'मैं क्या कर सकता हूँ ? हमारे बुजुर्ग इन फिरंगियों को उतनी जगह दे गये हैं, जितनी तम्बू के नीचे आ सके। भला मैं उसमें कर ही क्या सकता हूँ। हाँ, फिरंगी सरदार को खिलअत न दूँगा। इतना कहकर बादशाह सलामत फिरंगियों की चालाकी अपनी बेगमात से बतलाने के लिये हरम के अन्दर चले गये। हरकारा बेचारा चुपचाप लौट आया।

"जनाब, उस तम्बू ने बढ़ना जारी रक्खा। एक दिन क्या देखते हैं कि विश्वनाथपुरी काशी के ऊपर वह तम्बू तन गया। अब तो लोगों में भगदड़ मच गयी। उन दिनों राजा चेतसिंह बनारस की देख-भाल करते थे। उन्होंने उसी वक्त बादशाह सलामत के पास हरकारा दौड़ाया। वह दीवान खास में हाजिर किया गया। हरकारे ने बादशाह सलामत से अर्ज की कि वह तम्बू बनारस पहुँच गया है और तेजी के साथ दिल्ली की तरफ आ रहा है। बादशाह सलामत चौंक उठे। उन्होंने हरकारे से कहा—'तो म्याँ हरकारे, तुम्हीं बतलाओ, क्या किया जाय ?' वहाँ बैठे हुए दो एक उमराओं ने कहा—'जहाँपनाह एक बहुत बड़ी फौज भेज कर इन फिरंगियों का तम्बू छोटा करवा दिया जाय और कलकत्ते भेज दिया जाय। हम लोग जाकर लड़ने को तैयार हैं। जहाँपनाह का हुक्म भर हो जाय। इस तम्बू की क्या हकीकत है, एक मर्तबा आसमान को भी छोटा कर दें।' बादशाह सलामत ने कुछ सोचा, फिर उन्होंने कहा—क्या बतलाऊँ, हमारे बुजुर्ग बादशाह शाहजहाँ इन फिरंगियों को तम्बू के नीचे जितनी जगह आ जाय, वह बख्श गये हैं। बख्शीशनामा की रू से हम लोग कुछ नहीं कर सकते। आप जानते हैं, हम लोग अमीर तैमूर की औलाद हैं, एक दफा जो ज़बान दे दी, वह दे दी। तम्बू का छोटा करना तो गैर मुम-किन है। हाँ, कोई ऐसी हिकमत निकाली जाय, जिससे ये फिरंगी

अपना तम्बू आगे न बढ़ा सकें। इसके लिए दरबार-आम किया जाय और यह मसला वहाँ पेश हो।'

"इधर दिल्ली में तो यह बातचीत हो रही थी और उधर इन फिरंगियों का तम्बू इलाहाबाद, इटावा ढँकता हुआ आगरे पहुँचा। दूसरा हरकारा दौड़ा। उसने कहा—'जहाँपनाह, वह तम्बू आगरे तक बढ़ आया है। अगर अब भी कुछ नहीं किया जाता तो ये फिरंगी दिल्ली पर भी अपना तम्बू तानकर अपना कब्ज़ा कर लेंगे।' बादशाह सलामत घबराए—दरबार-आम किया गया। सब अमीर-उमराव इकट्ठा हुए। जब सब लोग इकट्ठा हो गए, तो बादशाह सलामत ने कहा—'आज हमारे सामने एक अहम मसला पेश है। आप लोग जानते हैं कि हमारे बुजुर्ग शाहंशाह शाहजहाँ ने फिरंगियों को इतनी ज़मीन बख्श दी थी; जितनी उनके तम्बू के नीचे आ सके। इन्होंने अपना तम्बू कलकत्ते में लगाया था। लेकिन वह तम्बू है रबड़ का, और धीरे-धीरे ये लोग तम्बू आगरे तक खींच लाए। हमारे बुजुर्गों से जब यह कहा गया, तब उन्होंने कुछ करना मुनासिब न समझा; क्योंकि शाहंशाह शाहजहाँ अपना क़ौल हार चुके हैं। हम लोग अमीर तैमूर की औलाद हैं और अपने क़ौल के पक्के हैं। अब आप लोग बतलाइए, क्या किया जाय।' अमीरों और मंसबदारों ने कहा—'हमें इन फिरंगियों से लड़ना चाहिए और इनको सज़ा देनी चाहिए। इनका तम्बू छोटा करवा कर कलकत्ते भिजवा देना चाहिए।' बादशाह सलामत ने कहा—'लेकिन, हम अमीर तैमूर की औलाद हैं। हमारा क़ौल टूटता है।' इसी समय तीसरा हरकारा हाँफता हुआ बिना इत्तला कराए हुए ही दरबार में घुस आया। उसने कहा—'जहाँपनाह, वह तम्बू दिल्ली पहुँच गया। वह देखिए क़िले तक आ पहुँचा। सब लोगों ने देखा वास्तव में हज़ारों गोरे ख़ाकी वर्दी पहने और हथियारों से लेस, बाजा बजाते हुए तम्बू को

क़िले की तरफ खींचते हुए आ रहे थे। उस वक्त बादशाह सलामत उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—'हमने तै कर लिया, हम अमीर तैमूर की औलाद हैं, हमारे बुजुर्गों ने जो कुछ कह दिया, वही होगा। उन्होंने तम्बू के नीचे की जगह फिरंगियों को बख्श दी थी। अब अगर दिल्ली भी उस तम्बू के नीचे आ रही है तो आवे। मुगल सल्तनत जाती है तो जाय, लेकिन दुनिया यह देख ले कि अमीर तैमूर की औलाद हमेशा क़ौल की पक्की रही।' इतना कहकर बादशाह सलामत मय अपने अमीर-उमरावों के दिल्ली के बाहर हो गए और दिल्ली पर अंगरेजों का क़ब्जा हो गया। अब आप लोग देख सकते हैं, इस कलियुग में भी मुग़लों ने अपनी सल्तनत बख्श दी।"

हम सब लोग थोड़ी देर तक चुप रहे। इसके बाद मैंने कहा—"हीरोजी एक प्याला चाय और पियो।"

हीरोजी बोल उठे—"इतनी अच्छी कहानी सुनने के बाद भी एक प्याला चाय ? अरे महुवे के ठर्रे का अद्धा तो हो जाता।"

कवि की स्त्री

[सुदर्शन]

(१)

सत्यवान

छात्रावस्था में मैं और मणिराम साथ ही साथ पढ़े थे। उस समय एक दूसरे पर प्राण देते थे। बचपन के दिन थे, जब तक एक दूसरे को देख न लेते, शान्ति न मिलती। उस समय हमें बुद्धि न थी। बाद में प्रेम का स्थान बैर ने ले लिया, दोनों एक दूसरे के लहू के प्यासे हो गये। तब हम शिक्षित हो चुके थे। एफ० ए० की परीक्षा पास करने के पश्चात् हमारे रास्ते अलग-अलग हो गये। मणिराम मेडिकल कालेज में भर्ती हो गया। मैंने साहित्य संसार में पाँव रक्खा। मुझे रुपये पैसे की परवाह न थी, पूर्वजों की सम्पत्ति ने इस ओर से निश्चिन्त कर दिया था। रात-दिन कविता के रस में लवलीन रहता और कई कई दिन घर से बाहर न निकलता। इन दिनों मेरे सिर पर यही धुन सवार रहती थी। एक-एक पद पर घंटों खर्च हो जाते थे। अपनी रचना को देखकर मैं गर्व से झूमने लग जाता था। कभी-कभी मुझे अपनी कविता में तुलसीदास की उपमा और सूरदास के रूपकों का स्वाद आता था। परन्तु जब मेरी कविताएँ पत्रों में निकलने लगीं तो मेरा कवित्व का मद उतरने लगा। मद उतर गया, परन्तु उसका प्रभाव न गया। यह प्रभाव प्रख्याति, कीर्ति और यश का प्रभाव था। थोड़े ही वर्षों में मेरा नाम हिन्दी संसार में प्रसिद्ध हो गया। मैं अब कुछ काम न करता था। केवल बड़े-बड़े लोगों को पार्टियाँ दिया

करता था। अब इसके बिना मुझे चैन न मिलता था। अब कविता में भी उतना मन न लगता था, पहले मेरा सारा समय इसी को भेंट होता था। अब वह जी बहलाने की चीज हो गई थी। परन्तु जब कभी कुछ लिखता तो रंग बाँध देता था। साधारण विषय को भी लेता, तो उसमें जान डाल देता था।

उधर मणिराम चिकित्सा के ग्रंथ के साथ सिर फोड़ता रहा। पाँच वर्ष बाद एसिस्टेंट सर्जरी की परीक्षा पास करके उसने अपनी दूकान खोल ली। परीक्षा के परिणाम निकलने के समय उसका नाम एक बार समाचार-पत्र में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् फिर कभी उसका नाम पत्रों में नहीं छपा। इधर मेरी प्रशंसा में प्रति दिन समाचार पत्रों के पृष्ठ भरे रहते थे। वह दूकान पर सारा दिन बैठा रोगियों की बाट देखता रहता था, पर उसका नाम कौन जानता था। लोग उधर जाते हुए झिझकते थे। मैं उसकी ओर देखता, तो घृणा से मुँह फेर लेता, जिस प्रकार मोटर में चढ़ा हुआ मनुष्य पैदल जाने वालों को घृणा से देखता है।

(२)

एक दिन एक पत्र आया। उसमें मेरी कवित्व-कला की बहुत ही प्रशंसा की गई थी और मुझे देश और जाति के लिए सम्मान और गौरव का हेतु बनाया गया था। मेरे पास ऐसे पत्र प्रायः आते रहते थे, यह कोई नयी बात न थी। मैं कभी-कभी ऐसे पत्रों को देख कर झुँझला उठता था। परन्तु यह पत्र एक स्त्री की ओर से था। हम पुरुषों की ओर से उपेक्षा कर सकते हैं, परन्तु किसी कोमलांगी के साथ यह व्यवहार करने को जी नहीं चाहता। और यह पत्र किसी साधारण स्त्री की ओर से नहीं था। इसकी लेखिका देहरादून के प्रसिद्ध रईस ठाकुर हृदयनारायण की शिक्षित लड़की सावित्री थी, जिसने इसी

वर्ष बी० ए० की परीक्षा पास की थी। उसके सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में कई लेख निकले थे, परन्तु मैंने उन्हें पढ़ने की आवश्यकता न समझी थी। इस पत्र ने सब कुछ याद करा दिया। मैंने उसी समय लेखनी पकड़ी और जवाब लिखने बैठ गया। परन्तु हाथ जवाब दे रहे थे। ऐसी लगन से कोई विद्यार्थी अपनी परीक्षा के पर्चे भी न लिखता होगा। एक एक शब्द पर रुकता और नए-नए शब्द ढूँढ़कर नए-नए विचार लेखनी को अर्पण करता जाता था। मैंने सावित्री और उसकी विद्वत्ता की प्रशंसा में कोश के सम्पूर्ण सुन्दर शब्द समाप्त कर दिये। अपनी अयोग्यता को भी स्वीकार किया—आप मेरी प्रशंसा करती हैं, यह आपका बड़प्पन है, अन्यथा मेरी कविता में धरा ही क्या है? न कल्पना में सौन्दर्य है, न शब्दों में मिठास। रस कविता का प्रधान अंग है, वह मेरी कविता से कोसों दूर है। हम कवि बन बैठते हैं, परन्तु कवि बनना आसान नहीं। इसके लिये देखने वाली आँख और सुनने वाले कान दोनों की आवश्यकता न होगी कि अपनी प्रशंसा करने का यह एक बढ़िया ढंग है।

कुछ दिन के पश्चात् इस पत्र का उत्तर आया—यह जो कुछ आपने लिखा है आप जैसे महापुरुषों के योग्य ही है, परन्तु मैं तो आपको टेनसिन और वर्ड्सवर्थ से बढ़कर समझती हूँ। आप कहते हैं कि आपकी कविता रसहीन है, होगी। परन्तु मुझ पर तो वह जादू कर देती है। घंटों प्रेम-सागर में डुबकियाँ लगाती हूँ। खाना-पीना भूल जाती हूँ। जी चाहता है, आपकी लेखनी चूम लूँ।

यह पत्र शराब की दूसरी बोतल थी। और अन्तिम वाक्य ने तो हृदय में आग लगा दी। मैंने फिर उत्तर दिया, और पत्र में हृदय खोल कर रख दिया। कवि अपने चाहने वालों को आकाश पर चढ़ा देता है। मैने भी सावित्री की प्रशंसा में आकाश-पताल एक कर दिया। लिखा—कारलाइल का कथन है कि कवि केवल वही नहीं जो

कविता लिख सकता है, प्रत्युत प्रत्येक व्यक्ति, जो कविता समझ सकता है और उसके मर्म तक पहुँच सकता है, कवि है। इस रूप में तुम भी कवि हो। मैंने अच्छों-अच्छों को देखा है, कविता के महत्व को नहीं समझ सकते। परन्तु तुम तो बाल की खाल निकालती हो। तुम्हारी योग्यता पर मुझे आश्चर्य होता है। धन्य है भारभूमि! जिसमें तुम जैसी देवियाँ खेलती हैं।

मैंने सैकड़ों उपन्यास पढ़े थे, अच्छी-से-अच्छी कविताएँ देखी थीं, परन्तु जो रस, स्वाद सावित्री के पत्रों में था, वह किसी में न था। यही जी चाहता था कि उन्हीं को पढ़ता रहूँ।

(३)

सावित्री

निस्संदेह वे मुझे चाहते हैं, अन्यथा इस प्रकार तुरन्त ही उत्तर-प्रत्युत्तर न देते। आज पत्र लिखती हूँ, तीसरे दिन उत्तर आ जाता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो मेरे पत्र की राह देख रहे थे। उनके पत्र उनकी कविता से अधिक सरस हैं, पढ़ कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। और कभी-कभी तो ऐसी चुटकी लेते हैं कि मन अधीर हो उठता है। मैंने चित्र माँग भेजा था। उत्तर देते हैं—तुमने लिखा है कि चित्र भेज रही हूँ परन्तु मुझे तो आज तक नहीं मिला। रजिस्ट्री की रसीद हो तो भेज दो, डाकखाने पर नालिश कर दूँ। हठात् मुझे अपना चित्र भेजना पड़ा। उत्तर में उनका चित्र आ गया। मेरा विचार सच्चा निकला। कैसे सुन्दर हैं! मुख पर राजकुमारों जैसा लावण्य झलकता है मेरे हृदय को पहले ही चैन न था, चित्र ने रहा सहा भी छीन ली।

रात को नींद नहीं आती। उनकी अन्तिम कविता ने उनका हृदय मुझ पर खोल दिया है। 'प्रीतम से' कैसा प्यारा शीर्षक है।

एक एक अक्षर से प्रेम टपकता है। इसे पहली कविता 'पाती निहार कर' भी मुझ पर ही लिखी गई थी। लिखती हूँ, तुम मुझे बदनाम करके छोड़ोगे। यह तो कहो, तुम मेरे पीछे पल्ले झाड़ कर क्यों पड़ गए हो? एक और कविता 'एकान्त में' प्रकाशित हुई है। इससे जान पड़ता है; अभी तक कुँवारे हैं। तो मेरी...परन्तु वे इतना परिश्रम क्यों करते हैं? बहुत पढ़ना-लिखना मनुष्य को बाँस की तरह खोखला कर देता है। लिखती हूँ, कविता लिखना बन्द कर दो और अपने शरीर की ओर ध्यान दो, मुझे बड़ी चिन्ता रहती है। इसके बाद मैंने उनके सम्बन्ध में सब कुछ मालूम कर लिया। वे हमारी ही बिरादरी के हैं और कुँवारे हैं।

मैंने पत्र लिखा। पहले के पत्रों और इस पत्र में बहुत भेद था। इससे कोई 'संकोच', कोई 'बनावट' न था—"तुम्हारे पत्रों से संतोष नहीं होता। जी चाहता है, तुम्हारे दर्शन हों, तो गिर कर तुम्हारे पैरों को चूम लूँ। अब अधिक न तरसाओ। प्रतिक्षण सामने देखना चाहती हूँ। प्रायः सोते-सोते चौंक पड़ती हूँ। सोचती हूँ, तुम्हारे खाने-पीने का क्या प्रबन्ध होगा? रात को अधिक समय तक जागते तो नहीं रहते, स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। इसका पूरा-पूरा ध्यान रक्खो। मुझे पत्र लिखना न भूलो। "जी डर जाता है। मुझे अपने चरणों की दासी समझो।"

चौथे दिन उत्तर आया तो मैं जमीन से उछल पड़ी। वे मेरे साथ विवाह करने को सहमत ही नहीं प्रत्युत अधीर हो रहे थे। मैंने आँखें बन्द कर लीं, और आने वाले काल्पनिक सहवास का चिन्तन करके आनन्द के झूले में झूलने लगी। इतने में किसी के पैरों की चाप सुनाई दी, मेरी आँखें खुल गईं देखा, छोटा प्रभाशंकर चित्रों का एक बंडल लिए खड़ा है। मैंने आश्चर्य से पूछा, 'प्रभा, क्या है!"

"बाबूजी कहते हैं, ये चित्र देखकर इनमें से एक छाँट दो। प्रत्येक चित्र के साथ-साथ एक पत्र है, उसे भी पढ़ते जाना।"

यह कहते-कहते प्रभा ने वह बंडल मेरे हाथ में दे दिया, और आप तेजी से बाहर निकल गया।

मैंने बंडल खोला। इसमें उन पुरुषों के फोटो थे, जो मुझसे विवाह करना चाहते थे। मैंने मुस्कराते-मुस्कराते सब पर एक उचटती हुई दृष्टि डाली। कोई बैरिस्टर था; कोई इञ्जीनियर, कोई डाक्टर था, कोई ठेकेदार। परन्तु मुझे कोई भी पसंद न आया। मेरे अन्तःकरण में एक ही मूर्ति के लिए स्थान था, और वहाँ पहले ही से एक मूर्ति विराजमान थी। मैंने फ़ुर्ती से उठकर अपना सन्दूक खोला, और उसमें से उनका फोटो निकालकर उस पर Passed शब्द लिखकर उसे बाबूजी के पास भेज दिया। वे दंग रह गये। उन्हें यह आशा न थी। वे समझते थे, मैं किसी लखपती का बेटा पसन्द करूँगी। परन्तु मैंने एक कवि को चुना। वे निर्धन न थे, पर इतने धनाढ्य भी न थे। मेरे चाहने वालों में कई पुरुष ऐसे थे, जो उनको खरीद सकने की सामर्थ्य रखते थे। परंतु प्रेम को अंधा कहा गया है। उसे देखना किसने सिखाया है? बाबूजी मेरी इच्छा के अनुसार सहमत हो गए। उन्होंने मुझे बड़े लाड़-प्यार से पाला था, मेरे शिक्षा पर सहस्रों रुपये खर्च किये थे। इस विषय में भी उन्होंने मुझे पूरी स्वतंत्रता दे रक्खी थी।

(४)

जिस बात का भय था, अंत में वही हुआ। उन्हें बुखार आने लगा है। कुछ दिन हुए, उनके एक मित्र मिलने आए थे। वे कहते हैं कि डाक्टरों को तपेदिक का सन्देह है। यह बात सुनकर बाबूजी बड़े व्याकुल हुए। सदा उदास रहते हैं, कोई रोग लग गया हो।

उनकी इच्छा है कि मैं अब इस विवाह का विचार छोड़ दूँ। जलती आग में कूदना बुद्धिमत्ता नहीं है। परन्तु मैं इसकी परवाह नहीं करती! संसार की आँखों में हम कुवारे हैं, पर जब मन मिल गये, प्रेम की डोरी बँध गयी, तो शेष क्या रहा गया? अब मैं उनकी हूँ, और कोई रोग, कोई नियम कोई विचार मुझे उनसे अलग नहीं रख सकता है। यहाँ तक कि मृत्यु को भी यह साहस नहीं। सावित्री ने सत्यवान को यमदूत के पंजे से छुड़ा लिया था, क्या मैं उन्हें व्याधि के मुख से न बचा सकूँगी? मैं भी सावित्री हूँ। उसी भारत की मिट्टी से मेरा जन्म हुआ है, मैं उसके कारनामे को आज फिर जिंदा कर दिखाऊँगी।

सायंकाल हो गया था बाबूजी अपने कमरे में बैठे थे। मुझे चिन्ता हुई। यह समय उनके क्लब जाने का था। सर्दी-गर्मी में बराबर जाते थे। यह उनका नियम था, जिसमें कभी नागा न होता था। मैं उनके पास जाकर बैठ गयी और धीरे से बोली—"क्यों आज आप क्लब नहीं गये?"

बाबूजी ने कोई उत्तर न दिया।

"आप उदास दिखाई देते हैं।"

बाबूजी ने कहा—"तुम्हें इससे क्या!"

"आपका स्वास्थ्य बिगड़ जायगा।"

"कोई परवा नहीं।"

"आपका खाना आधा भी नहीं रहा।"

"मैं यह सब कुछ जानता हूँ।"

"किसी डाक्टर को दिखाइये, रोग का बढ़ना अच्छा नहीं।"

"अब मेरा डाक्टर यमराज ही होगा।"

मेरी आँखों में आँसू आ गए, सिर नीचे झुक गया। बाबूजी दूसरी ओर देख रहे थे, परन्तु, मेरे आँसू उन्होंने देख लिये। बातचीत का रंग बदल गया; बोले—"सावित्री मैं तो अपने भाग्य को रो रहा हूँ, पर तुम्हें क्या हुआ?"

मैंने उनकी ओर इस प्रकार देखा, जैसे उन्होंने मुझ पर कोई बड़ा अत्याचार किया हो, और कहा—"आप मेरे पिता हैं, क्या आप भी मेरे इन आँसुओं का रहस्य नहीं समझते ? आपकी हर एक बात छिपी कटार है, हर एक वचन विष में बुझा हुआ बाण। आपके मित्र हैं, सुहृद हैं, काम-काज है, क्लब है। आप बाहर चले जाते हैं, मैं बैठी कर्मों को रोती हूँ। मैं लड़की हूँ, लड़कियों के मुँह से ऐसी बात अच्छी नहीं लगती। परन्तु क्या करूँ ? देखती हूँ, मेरे जीवन का सर्वस्व-लुट रहा है। चुप कैसे रहूँ। आप देर करके मेरे भविष्य को अन्धकारमय बना रहे हैं।"

बाबूजी ने आतुर होकर कहा—"परन्तु सावित्री। देखकर मक्खी निगलना आसान नहीं। क्या तुझे विश्वास है कि वह तेरी सेवा-शुश्रूषा से अच्छा हो जायगा ?"

"हाँ, मुझे विश्वास है कि मैं उन्हें बचा लूँगी। कवि बेपरवाह होते हैं, प्रायः पढ़ने-लिखने में लगे रहते हैं। मैं उन्हें जीवन के समस्त झंझटों से निश्चित कर दूँगी और घर का सारा प्रबन्ध स्वयं सँभाल लूँगी। दिन-रात कविता लिखने के कारण ही उनकी यह दशा हुई है। जिस पत्रिका को देखो उसी में उनकी कविता दिखाई देती है। मैं उनको इस काम से रोक दूँगी। कहूँगी, पहले अपने स्वास्थ्य की ओर तो देखो, पीछे कविता भी हो लेगी। नौकरों के हाथ की रोटियाँ खाते हैं, खाया पिया क्या तन लगेगा ? स्तुति करने को सभी हैं, सहानुभूति किसी के नाम को नहीं।"

बाबूजी पर मेरी इन बातों का बहुत ही प्रभाव हुआ। कुछ समय के लिये उनका मुँह बन्द हो गया। फिर बोले, "यह सब ठीक है, परन्तु कहने और करने में बड़ा भेद है। मुझे सन्देह है कि जो कुछ तुम कह रही हो उसे कर भी सकोगी या नहीं।"

मेरा मुख लाल हो गया, जैसे भरे बाजार में सिर से दुपट्टा उतर गया हो, फिर सँभल कर बोली—"मैं अपने वचनों के उत्तरदायित्व से अपरिचित नहीं। जो कुछ कहा है, करके दिखा दूँगी।"

"यह सब भावना की बातें हैं; समय पर धुएँ की नाई उड़ जाती हैं।"

"मेरे विचार में संसार भावनाओं पर ही जीता है।"

बाबूजी चुप हो गये, कोई उत्तर न सूझा। थोड़ी देर तक सिर झुका कर सोचते रहे। फिर एकाएक उठे और मुझसे बिना कुछ कहे सुने बाहर चले गये।

(५)

विवाह हो गया। वह बात झूठी निकली। उन्हें कोई रोग न था। यह सब किसी की शरारत थी। उनका स्वास्थ्य देखकर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। मुख पर लाली है, नेत्रों में ज्योति। मुझे देखते हैं तो कली की नाई खिल जाते हैं। मैंने कई कवियों के चरित्र पढ़े हैं, और एक दोष सब में देखा है। वह यह कि उनका आचरण कुछ इतना पवित्र नहीं होता। परन्तु उनके विषय में यह कल्पना करना भी पाप है। वह बहुत ही शर्मीले हैं, पराई स्त्री के सामने आँख नहीं उठाते। वह इसे भी सदाचार में गिरा हुआ समझते हैं। मेरी कोई सहेली आ जाती तो उठ कर अन्दर चले जाते हैं। मैं बहुतेरा समझाती हूँ, कहती हूँ, तुम मर्द हो यदि स्त्री पर्दा नहीं करती तो पुरुष क्यों करे। परन्तु वे हँस कर टाल देते हैं। मुझे उन पर पूरा-पूरा विश्वास है। मैं समझती हूँ, सब कुछ हो सकता है, परन्तु उनके मन में मैल नहीं आ सकता। ऐसा पुरुष मिल जाना मेरा सौभाग्य है। उन्होंने अपने आप को मुझ पर छोड़ दिया है। घर-बार का स्याह-सफेद सब मेरे ही हाथ में है। कपड़े तक स्वयं नहीं बदलते। यदि मैं न कहूँ तो पूरा अठवाड़ा निकल जाता है और उन्हें ध्यान

भी नहीं आता कि कपड़े मैले हो गए हैं। उनके दूध का, फलों का, कमरे की सफाई का मुझे ही प्रबन्ध करना पड़ता है। सोचती हूँ, यदि मेरे स्थान पर कोई दूसरी बेपरवाह मनमानी करने वाली स्त्री आ जाती तो क्या होता। घर में तो धूल उड़ने लगती। थोड़े ही दिनों में बीमार हो जाते। उन्हें अपने दफ़्तर की सफाई का भी ध्यान नहीं। उसका भी मुझे ही ध्यान रखना पड़ता है। नौकर सिर चढ़ा रक्खे थे, पर अब सँभल गये हैं। ये निगोड़े आप-से-आप तो कोई काम करते ही नहीं। जब तक सिर पर न खड़े रहो तब तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। कभी-कभी मुझे उन पर क्रोध भी आ जाता है। वे क्यों दब-दबे से काम नहीं लेते। मैं चार दिन के लिए बाहर चली जाऊँ तो घर में कीड़े रेंगने लगें।

एक दिन मैंने कहा—"सारे भारतवर्ष में तुम्हारी कविता की धाक बँधी हुई है, परन्तु क्या यह भी किसी को पता है कि तुम इतने बेपरवाह, ऐसे आलसी हो ?"

"उन्होंने हँसकर उत्तर दिया"—"तुम एक लेख न लिख दो।"

"बदनाम हो जाओगे।"

"उसमें से कुछ भाग तुम्हें भी तो मिलेगा।"

"मैं क्यों लेने लगूँगी। तुम हँस कर टाल देते हो। जरा सोचो तो सही, ऐसे बेपरवाही भी किस काम की ?"

"मैंने तुम्हें घर की रानी बना दिया।"

मैंने धीरे से कहा—"घर की रानी तो मैं बनी, परन्तु तुम अपने दफ्तर की ओर तो ध्यान दिया करो।"

"मैं तुम्हें अपना सुपरिन्टेन्डेन्ट समझता हूँ।"

मैं रूठ कर चली गयी परन्तु हृदय आनन्द के हिलोरें ले रहा था, जिस प्रकार चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल पर नाचता है। दूसरे दिन प्रातःकाल मैं उनके दफ्तर की ओर गयी तो दरवाजे के साथ एक

छोटा-सा बोर्ड लटकता देखा। उस पर लिखा था—

सावित्री देवी, बी० ए०, सुपरिन्टेन्डेन्ट

मैंने उसे जल्दी से उतार कर उनके सामने जा फेंका और कहा—"ये शरारतें देखकर लोग क्या कहेंगे।"

उन्होंने मेरी ओर देखा और मुस्कराकर भुजाएँ फैला दीं।

(६)

सन्ध्या का समय था। मैंने अपनी सबसे बढ़िया पोशाक पहनी और उनके पास जाकर कहा—"बाहर चलोगे, थोड़ा घूम आएँ।"

वे उस समय कविता में मग्न थे, धीरे से बोले—"इस समय बात न करो। बड़ा विचित्र विचार सूझा है, उसको प्रकट करने के लिए शब्द ढूँढ़ रहा हूँ।

मुझे विष-सा चढ़ गया। कैसे पुरुष हैं, सदा अपनी ही धुन में मग्न रहते हैं। इतना भी नहीं होता कि मेरी किसी समय तो मान लिया करें। पहले मुझे देखकर प्रसन्न हो जाते थे, परन्तु अब तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे इनका हृदय प्रेम से शून्य हो गया है। हाँ, कविता में हृदय निकाल कर रख देते हैं। मेरी आँखों से आग बरसने लगी, मुँह से बोली—"सदा कविता ही सूझती रहती है या किसी समय संसार का भी ध्यान आता है?"

"इस कविता से साहित्य-संसार में शोर मच जायगा।"

"तुम्हें मेरा भी ध्यान है या नहीं।"

"यह अपने हृदय से पूछो।"

"मैं हृदय से नहीं पूछती, स्वयं तुमसे पूछती हूँ। जरा आँखें उठा कर उत्तर दो न।"

"यह कविता देख कर फड़क उठोगी। ऐसी कविता मैंने आज तक नहीं लिखी।"

मैंने हताश सी होकर कहा—"मेरी बड़ी इच्छा थी कि आज थोड़ा घूम आती, इस कविता ने काम बिगाड़ दिया। जी चाहता है, कागज छीन कर दवात तोड़ दूँ।"

"दवात कागज की हानि साधारण बात है, परन्तु ये विचार फिर न मिलेंगे। आज अकेली चली जाओ।"

"मेरा मन नहीं मानता।"

उन्होंने हाथ से इशारा किया और फिर कागज़ पर झुक गये। मेरे हृदय में बर्छी-सी लगी। उन्हें कविता का ध्यान है, मेरा नहीं। संसार में नाम चाहते हैं, परन्तु घर में प्रेम नहीं चाहते। यहाँ से चली तो हृदय पर बोझ-सा प्रतीत हुआ। अकेली सैर को निकल गयी, परन्तु चित्त उदास था, सैर में जी न लगा। हार कर एक पुल पर बैठ गयी, और अपनी दशा पर रोने लगी। इन आँसुओं को देख कर पहले बाबूजी व्याकुल हो जाते थे। विवाह हुआ तो मेरे सुख-दुख का भार एक कवि को सौंपा गया। परन्तु अब इन आँसुओं को देखने वाला, इन पर कलेजा मलने वाला कोई न था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मेरी नाव नदी की धार में वेग से बही जाती है और उस पर कोई मल्लाह नहीं है। मैं अपनी बेबसी पर कुढ़ती थी। कभी-कभी आँख उठा कर देख भी लेती थी कि कदाचित आ रहे हों। प्रेम जल्दी निराश नहीं होता।

मेरी आँखें जल की ओर थीं। सोचती थी, यदि कोई शक्ति मंत्र-बल से मुझे जल की लहर बना दे तो गंगा की लहरों में खेलती फिरूँ। एकाएक आँखें झपक गयीं, निद्रा देवी ने इच्छा पूरी कर दी। मैं गंगा में गिर गयी। बहुतेरे हाथ-पाँव मारे, पर निकल न सकी। प्रवाह में बहने लगी।

सुध आयी तो मैं घर पर थी। वे सामने खड़े थे, कुर्सी पर एक डाक्टर बैठा था।

उन्होंने कहा—"अच्छी बचीं, इनका धन्यवाद करो। ये मेरे मित्र डाक्टर मणिराम हैं। आजकल काशी में इनके नाम की पूजा होती है। नदी में कूद न पड़ते तो तुम्हारा बचना असम्भव था।"

मैं धीरे-से उठकर बैठ गयी। साड़ी को सिर पर कर लिया और डाक्टर साहब की ओर देखा, मगर आँखें मिल न सकीं। मैंने—"परमात्मा आपका भला करे" कहा और आँखें झुका लीं। परन्तु हृदय में हलचल मची हुई थी। चाहती थी, ये उठ कर चले जायँ। मेरा विचार था, इससे मेरा धीरज वापस आ जायगा। परन्तु जब वे चले गये तो जान पड़ा, मैं भूल पर थी। व्याकुलता बढ़ गयी। पानी की सैर को गई थी, आग खरीद लायी।

(७)

मणिराम

रात हुई, परन्तु मेरी आँखों में नींद न थी। उसे सावित्री की आँखों ने चुरा लिया था। उनमें कैसा अकर्षण था, कैसी बेबसी! जैसे कोई कैदी लोहे के जंगले के अन्दर से स्वतंत्र सृष्टि को देखता है और आह भर कर पृथ्वी पर बैठ जाता है। उसकी आँखें बार-बार मेरी ओर उठती थीं, परन्तु वह उठने न देती थी, जिस प्रकार माँ अपने अबोध बालक को पराये खिलौने पकड़ते देख कर गोद में उठा लेती है। उस समय बालक किस प्रकार मचलता है। कैसा अधीर होता है! चाहता है कि माँ छोड़ दे तो खिलौना लेकर भाग जाय। यही दशा सावित्री की थी। सत्यवान वहीं डटा रहा। यदि दो मिनट के लिए भी टल जाता तो जी भर कर देख लेता। कैसा सुन्दर है, जैसे चम्पा का फूल।

दूसरे दिन दूकान को जा रहा था तो उसे दरवाजे पर खड़ा

पाया। उसने मेरी ओर प्यासे नयनों से देखा और मुस्करा दिया। इस मुस्कराहट में बिजली थी, मेरा धैर्य छूट गया। दूकान पर जी न लगा, सारा दिन साँझ की प्रतीक्षा करता रहा। पल-पल गिनते दिन समाप्त हुआ और मैं घर को वापस लौटा। पैर भूमि पर न पड़ते थे। इस समय मैं ऐसा प्रसन्न था, जैसे किसी को कुछ मिलने वाला हो। सत्यवान के मकान के पास पहुँचा तो पैर आप से आप रुक गए, आँखें दरवाजे पर जम गयी। सहसा वह अन्दर से निकली और दरवाजे के साथ लगकर खड़ी हो गयी। उसने मुँह से कुछ न कहा, परन्तु आँखों ने हृदय के पर्दे खोल दिये। इन आँखों में कैसा प्रेम था, कैसा कटाक्ष और उनके साथ स्त्रियों की स्वाभाविक लज्जा। चटनी में खटाई के साथ शक्कर मिली हुई थी। मैं मतवाला-सा हो गया और झूमता झामता घर पहुँचा, जैसे किसी शत्रु का दुर्ग जीत लिया हो।

कई दिन बीत गये। नयनों का प्रेम दृढ़ होता गया। पर अब उसे देख कर जी न भरता था, ओस की बूँदों से किसी की प्यास कब बुझी है? तृष्णा अपने पैर आगे बढ़ा रही थी। अन्तःकरण सावधान करता था, जैसे भय के समय कोई लाल झंडी दिखा दे। परन्तु कामदेव उस ड्राइवर के समान परवाह न करता था जिसने शराब पी ली हो। यह शराब साधारण न थी। यह वह शराब थी जो धर्म-कर्म सब चूल्हे में झोंक देती है और मनुष्य को बलात् भय के मुँह में डाल देती है। यह कामवासना की शराब थी।

एक दिन बहुत रात गए घर लौटा। चित्त दुखी हो रहा था, जैसे कोई भारी हानि हो गई हो। परन्तु सावित्री दरवाजे पर ही खड़ी थी। मैं गद्गद् प्रसन्न हो गया, मेरा घाटा पूरा हो गया था। सारा क्रोध और दुख दूर हो गया। सावित्री ने कहा—"आज आपको बड़ी देर हो गयी।"

परन्तु आवाज थर थरा रही थी।

मेरा कलेजा धड़कने लगा। शरीर-पसीना-पसीना हो गया। छात्रावस्था में हमने सैकड़ों मुर्दे चीरे थे। उस समय भी यह अवस्था कभी न हुई थी। एक-एक अंग काँपने लगा। मैंने बड़ी कठिनाई से अपने आपको सँभाला और उत्तर दिया—"जी हाँ, कुछ मरीज़ देखने चला गया था। आप दरवाजे पर खड़ी हैं, क्या किसी की प्रतीक्षा है?"

"हाँ उनकी राह देख रही हूँ।"

"क्या आज कोई कवि-सम्मेलन है।"

"कवि सम्मेलन तो नहीं। एक जलसे में गए हैं, वहाँ उन्हें अपनी नवीन कविता पढ़नी है।"

"तो बारह बजे से पहले न लौटेंगे।"

सावित्री ने सतृष्ण नयनों से मेरी ओर देखा, और एक मधुर कटाक्ष से ठंडी साँस भरकर कहा—"घर में जी नहीं लगता है।"

"अभी तो आठ ही बजे हैं।"

"जी चाहता है, घड़ी की सुइयाँ घुमा दूँ।"

मेरे पैर न उठते थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानों कोई सुमधुर नाटक हो रहा है। परन्तु कोई देख न ले, इस विचार से पैर उठाने पड़े। हमें धर्म का विचार हो या न हो, परन्तु निन्दा का भय अवश्य होता है। सावित्री ने मेरी ओर ऐसी आँखों से देखा, मानों कह रही है, "क्या तुम भी नहीं समझे।"

मैं आगे बढ़ा, परन्तु हृदय पीछे छुटा जाता था। वह मेरे बस में न था। घर जाकर चित्त उदास हो गया। सावित्री की मूर्ति आखों में फिरने लगी। उसकी मधुर वाणी कानों में गूँजने लगी। मैं उसे भूल जाना चाहता था। मुझे डर था कि इस कूचे में पैर रख कर मैं बदनाम हो जाऊँगा। मुझ पर उँगलियाँ उठने लगेंगी। लोग मुझे भलामानस समझते हैं। यह करतूत मेरा सर्वनाश कर देगी। लोग चौंक उठेंगे।

कहेंगे; कैसा भलामानस प्रतीत होता था, परन्तु पूरा गुरु-घंटाल निकला। प्रैक्टिस भी कम हो जायगी। वह विवाहित स्त्री है। उसकी ओर मेरा हाथ बढ़ाना बहुत ही अनुचित है। परन्तु ये सब युक्तियाँ, सब विचार जल के बुदबुदे थीं। जितनी जल्दी बनते हैं उससे जल्दी टूट जाते हैं। वायु का हल्का-सा थपेड़ा उनका चिह्न तक मिटा देता है। मनुष्य कितना दुर्बल कितना बेबस है?

दूसरे दिन मैं सत्यवान के घर पहुँचा। परन्तु पैर लड़खड़ा रहे थे, जैसे नया-नया चोर चोरी करने जा रहा हो। उस समय उसका हृदय किस प्रकार धड़कता है? कहीं कोई देख न ले, मुँह का रंग भेद न खोल दे। कभी-कभी भलमंसी का विचार भी आ जाता है। पैर आगे रखता था, हृदय पीछे हट जाता था। एकाएक मैंने एक छलांग भरी और अन्दर चला गया। इस समय होंठ सूख रहे थे।

सत्यवान ने मुझे देखा तो कुर्सी से उछल पड़ा और बड़े प्रेम से मिला। देर तक बातें होती रहीं। सावित्री भी पास बैठी थी। मेरी आँखें बराबर उसके मुख पर लगी रहीं। पहले चोर था, अब डाकू बना! सावित्री की झलक भी दूर हो गयी। वह बात-बात पर हँसती थी। अब उसे मेरी ओर देखने में संकोच न था। लज्जा के स्थान पर चपलता आ गई थी। यहाँ से चला तो ऐसा प्रसन्न था, जैसे इन्द्र का सिंहासन मिल गया हो? तत्पश्चात् रास्ता खुल गया। दिन में कई बार सावित्री के दर्शन होने लगे। रात को दो-दो घन्टे उसके पास बैठा रहता। मेरी और सावित्री का आँखों-आँखों ही में मन मिल गया। पर सत्यवान को कुछ पता न था। कल्पना-सागर से विचारों के मोती निकालने वाला कवि, बहुत दूर तक दृष्टि दौड़ाने वाले क्रान्तदर्शी विद्वान अपने सामने की घटना को नहीं समझता था उसकी कविता दूसरों को जगाती थी, परन्तु वह स्वयं सोया हुआ था। उस अनजान यात्रा के समान जो नौका में बैठा दूर के हरे-हरे खेतों और ऊँची-ऊँची

पहाड़ियों को देख-देखकर झूमता है, परन्तु नहीं जानता कि उसकी अपनी नाव भयानक चट्टान के निकट पहुँच रही है; सत्यवान धीरे-धीरे विनाश की ओर बढ़ रहा था।

(८)

सावित्री

कितना अन्तर है। मणिराम की आँखें हृदय में आग लगा देती थी। निकट आते तो मैं इस प्रकार खिंची जाती, जैसे चुम्बक लोहे की सुई को खींच लेता है कैसा भोला भाला लगता था, जैसे मुख में जीभ न होगी। परन्तु मेरे पास आकर इस प्रकार चहचहाता है, जैसे बुल-बुल फूल की टहनी पर चहचहाता है। उनके बिना अब जी नहीं लगता था। मकान काटने को दौड़ता था। चाहती थी मेरे पास ही बैठे रहें। किसी ने मुँह से नहीं कहा, परन्तु आँखों से पता चला कि मुहल्ले की स्त्रियाँ सब कुछ समझ गई हैं। मेरी ओर देखती तो मुस्कराने लगतीं। इतना ही नहीं, अब वह भी अपने विचारों से चौंक उठे। कवि थे, कुछ मूर्ख नहीं। बेपरवाह थे, पर बेसमझ न थे। अब हाथ मल-मलकर पछताने लगे। संसार जीतते थे, घर गवाँ बैठे। अब सदा उदासीन रहते थे। रात को सो नहीं सकते थे। बात करती तो काटने को दौड़ते। आँखों में लहू उतर आता था। न खाने की ओर ध्यान था, न पीने की ओर। कई-कई दिन स्नान न करते थे। अब मुझे उनके कपड़े बदलवाने का शौक न था, न उनके खाने-पीने का प्रबन्ध करती थी। कभी इन बातों में आनन्द आता था, अब इनसे जी घबराने लगा। कुछ दिन पश्चात् प्रयाग के प्रसिद्ध मासिक पत्र 'सरस्वती' में उनकी एक कविता प्रकाशित हुई। जिसका पहला पद था—

भयो क्यों अनचाहत सों सङ्ग

कविता क्या थी, उनकी अपनी अवस्था का चित्र। मेरी आँखों

से आग बरसने लगी। शेरनी की नाईं बिफरी हुई उनके सामने चली गयी, और बोली—"यह क्या कविता लिखने लगे हो अब ?"

उन्होंने मेरी ओर ऐसी आँखों से देखा, जो पत्थर को मोम कर देती, शोक और निराशा का पूरा नमूना थी। धीरे से बोले—"क्या है ?"

"यह कविता पढ़ कर लोग क्या कहेंगे ?"

"कवि जो कुछ देखता है, लिख देता है। इसमें मेरा दोष क्या है ?"

मैंने जरा पीछे हट कर कहा—"तुमने क्या देखा है ?"

"सावित्री ! मेरा मुँह न खुलवाओ। अपने अञ्चल में मुँह डाल कर देख लो। मुझसे कुछ छिपा नहीं।"

मैंने क्रोध से कहा—"गालियाँ क्यों देते हो ?"

"गालियाँ इससे लाख गुना अच्छी होती।"

"—तो तुम्हें मुझपर सन्देह है।

"सन्देह होता तो रोना काहे का था ? अब विश्वास हो चुका। कान धोखा खा सकते हैं, परन्तु आँखें धोखा नहीं खातीं। मुझे यह पता न था कि मेरा घर इस प्रकार चौपट हो जायगा !"

मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया। पर प्रकृति, जहाँ दुराचार को जाना होता है वहाँ निर्लज्जता को पहले भेज देती है। ढिठाई से बोली—"तुम कविता लिखो; तुम्हें किसी से क्या ?"

"घावों पर नमक छिड़कने आई हो।"

"मेरी ओर देखते ही न थे। उस समय बुद्धि कहाँ चली गई थी।"

"मैंने तुम्हें पहचाना नहीं था। नहीं तो आज हाथ न मलता।"

"परन्तु लोग तो तुम्हें वाहवा कह रहे हैं। जिस पत्र में देखो, तुम्हारी ही चर्चा है, पढ़ कर प्रसन्न हो जाते होंगे।"

यह सुन कर वे खड़े हो गये। इस समय उनकी आँखों में पागल

की-सी लाली चमक रही थी। चिल्ला कर बोले—"अपनी मौत को न बुलाओ, मैं इस समय पागल हो रहा हूँ।"

"तो क्या मार डालोगे? बहुत अच्छा, यह भी कर डालो। अपने जी की इच्छा पूरी कर लो।"

उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा, जिस प्रकार सिंह अपने आखेट को मारने से पहले देखता है, और झपट कर आलमारी की ओर बढ़े। मेरा कलेजा धड़कने लगा, दौड़ कर बाहर निकल गयी। मेरा विचार था, वे मेरे पीछे दौड़ेंगे, इसलिये घर के सामने मैदान में जा खड़ी हुई। इस समय मेरी साँस फूली हुई थी, मृत्यु को सामने देख चुकी थी। परन्तु वे बाहर न आये। थोड़ी देर पीछे 'दन' का शब्द सुनाई दिया। मैं दौड़ती हुई अन्दर चली गयी। देखा, कि वे फर्श पर पड़े तड़प रहे थे। मृत्यु का दृश्य देख कर मैं डर गयी। परन्तु मुझे दुख नहीं हुआ। कहा मुकदमे की लपेट में न आ जाऊँ, यह चिन्ता अवश्य हुई।

दो मास बीत गये मैं अपने आँगन में बैठी मणिराम के लिए नेकटाई बुन रही थी। मैंने लोकाचार की परवाह न करके उनसे विवाह करने का निश्चय कर लिया था। लोग इस समाचार से चौंक उठे थे। परन्तु मैं उनके मरने से प्रसन्न हो रही थी। समझती थी, जीवन का आनन्द अब आयेगा। अचानक नौकर ने आकर डाक मेरे सामने रख दी। इसमें एक पैकेट भी था। मैंने पहले उसे खोला। यह मेरे मृतक पति की कविताओं का संग्रह था। मैंने एक दो कविताएँ पढ़ीं। हृदय में हलचल मच गयी। कैसे ऊँचे विचार थे, कैसे पवित्र भाव, संसार की मलिनता से रहित। इनमें छल न था, न कपट था। इनमें आध्यात्मिक सुख था, शान्ति थी, माधुरी थी। मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। एकाएक तीसरे पृष्ट पर दृष्टि गयी। यह समर्पण का पृष्ठ था। मेरा लहू जम गया। पुस्तक मेरे नाम समर्पित की गई थी। एक एक शब्द से प्रेम की लपटें आ रही थीं। परन्तु इस प्रेम और मणिराम

के प्रेम में कितना अन्तर था। एक चन्द्रमा की चाँदनी के समान शीतल था, दूसरा अग्नि के समान दग्ध करने वाला। एक समुद्र की नाईं गहन गम्भीर, दूसरा पहाड़ी नाले के समान वेगवान ! एक सचाई था परन्तु निःशब्द, दूसरा झूठा था पर बड़बोला। मेरी आँखों के सामने से पर्दा उठ गया। सतीत्व के उच्च शिखर से कहाँ गिरने को थी, यह मैंने आज अनुभव किया। उठते हुए पैर रुक गये। मैंने पुस्तक को आँखों से लगा लिया और रोने लगी।

इतने में मणिराम अन्दर आये। मुख आने वाले अन्दर की कल्पना से लाल हो रहा था। उनके हाँथ में एक बहुमूल्य माला थी, जो उन्होंने मेरे लिए बम्बई से मँगवाई थी। वह दिखाने आये थे। मुझे रोते देखकर ठिठक गये और बोले—क्यों रो रही हो ?"

"मुझे आँखे खुल गई हैं।"

"यह अपनी माला देख लो। कल विवाह है।"

"अब विवाह न होगा।"

"सावित्री पागल हो गई—होगा ?"

परमात्मा मुझे इसी प्रकार पागल बनाये रखे।"

मणिराम आगे बढ़ा। परन्तु मैं उठ कर पीछे हट गयी, और दरवाजे की ओर इशारा करके बोली—"उधर।"

उस रात मुझे नींद आयी, जैसी इससे पहले कभी न आयी थी। मैंने पति को ठुकरा दिया था, परन्तु उसके प्रेम को न ठुकारा सकी। मनुष्य मर जाता है, उसका प्रेम जीता रहता है ?

उसने कहा था

[चंद्रधर शर्मा गुलेरी]

(१)

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की जबान के कोड़ों से जिसकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुये इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चीथ कर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराश और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले, तंग चक्करदार गलियों में हर एक लड्ढी वाले के लिये ठहर कर सब का समुद्र उमड़ा कर, 'बचो खालसाजी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना भाई', आने दो लालाजी', 'हटो बाछा', कहते हुये सफेद फेटों, खच्चरों और बतखों, गन्ने और खोमचे और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं; चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी बचनावली के ये नमूने हैं—हट जा जीणे जोगिये; हट जा करमा वालिए; हट जा, पुतां प्यारिए; बच जा,

लम्बी बालिए। समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है ?—बच जा।

ऐसे बम्बूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिये बड़ियाँ ? दूकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

"तेरे घर कहाँ हैं ?"

"मगरे में,—और तेरे ?"

"माँझे में—यहाँ कहाँ रहती है ?"

"अतरसिंह की बैठक में, मेरे मामा होते हैं।

"मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाजार में है।"

इतने में दूकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा—'तेरी कुड़माई[1] हो गयी ?" इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ा कर 'धत्' कहकर दौड़ गयी और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ, या दूधवाले के यहाँ अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा—'तेरी कुड़माई हो गयी ?" और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़के की लड़की सम्भावना के विरुद्ध, बोली—"हाँ,

"कब ?"

"कल;—देखते नहीं यह रेशम से काढ़ा हुआ सालू।"[1] लड़की भाग गयी। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़की को मोरी में ढकेल दिया, एक छबड़ीवाले[2] की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उड़ेल दिया सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अंधे की उपाधि पायी। तब कहीं घर पहुँचा।

(२)

"राम राम, यह भी कोई लड़ाई है! दिन रात खन्दकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गयीं। लुधियाने से दस गुना जाड़ा और मेंह और बरफ़ ऊपर से। पिंडलियों तक कीच में धँसे हुये हैं। गनीमत कहीं दिखता नहीं;—घंटे दो घंटे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था, यहाँ दिन में पचीस जलजले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गयी तो चटाक् से गोली लगती है न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुये हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहनासिंह और तीन दिन हैं। चार खन्दक में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ' आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उस फिरंगी मेम के बाग में—मखमल की सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।

"चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है

[1]ओढ़नी [2]खोमचेवाला।

और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मार्च का हुक्म मिल जाय! फिर सात जरमनों को अकेला मार कर न लौटूँ, तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन का फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—"

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों?" सूबेदार हजारासिंह ने मुस्कराकर कहा—"लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा?"

"सूबेदार जी, सच है।" लहनासिंह बोला—"पर करें क्या? हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गरमी आ जाय।"

"उदमी उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बालटियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदला दे।" यह कहते हुये सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—"मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!" इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भर कर उसके हाथ में देकर कहा—"अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।"

"हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है ! मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस गुना जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।"

"लाड़ी होराँ[1] को भी यहाँ बुला लोगे ? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम—"

"चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।"

"देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुलक के लिये लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा अब बोधासिंह कैसा है ?"

"अच्छा है।"

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रातभर तुम अपने दोनों कम्बल उसे ओढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है मौत है और 'निमोनियाँ' से मरनेवालों को मुरब्बे[2] नहीं मिला करते।"

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरा हाथ के लगाए हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वजीरासिंह ने त्यौरी चढ़ा कर कहा—"क्या मरने-मराने की बात लगाई है ! मरे जर्मनी और तुरक !"

"हाँ भाइयो, कुछ गाओ।"

---

[1] स्त्री का आदरवाचक शब्द। [2] नई नहरों के पास वर्ग-भूमि।

* * *

कौन जानता था कि दाढ़ियों वाले घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गाएँगे, पर सारी खन्दक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये, मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

(३)

दो पहर रात गई है। अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

"क्यों बोधा भाई, क्या है?"

"पानी पिला दो।"

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगा कर पूछा—"कहो, कैसे हो?" पानी पीकर बोधा बोला—"कँपनी छूट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।"

"अच्छा मेरी जरसी पहन लो!"

"और तुम?"

"मेरे पास सिगड़ी है मुझे गर्मी लगती है, पसीना आ रहा है।"

"ना, मैं नहीं पहनता; चार दिन से तुम मेरे लिए—"

"हाँ, याद आयी। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से मेम बुन-बुनकर भेज रही है। गुरु उनका भला करें।" यों कह कर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो?"

"और नहीं झूठ?" यों कह कर नाहीं करते बोधा को उसने जबर-दस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहन कर पहरे पर खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज आयी—"सूबेदार हजारासिंह !"

"कौन ! लपटन साहब ? हुकुम हुजूर !" कह कर सूबेदार तन कर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

"देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मनी खाई है। उसमें पचास से जियादह जर्मन नहीं है। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कम्बल उतार कर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बापू सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहे, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेर कर खड़े हो गये और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ा कर कहा—

"लो तुम भी पियो।"

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपा कर बोला—"लाओ, साहब !" हाथ आगे करते ही सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह कैदियों के-से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये ?

शायद साहब शराब पिए हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का

मौका मिल गया है। लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायँगे ?"

"लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं ?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधारी जिले में शिकार करने गए थे—हाँ, हाँ—वही जब आप खोते[1] पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था ?" बेशक पाजी कहीं का"—सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफ़सर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मेस में लगाएँगे।" "हाँ, पर मैंने वह विलायत भेज दिया"—ऐसे बड़े-बड़े सींग! दो-दो फुट के होंगे!"

"हाँ लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया ?"

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ"—कह कर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था और उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

"कौन ? वजीरासिंह ?"

"हाँ, क्यों लहना ? क्या क़यामत आ गयी ? ज़रा तो आँख लगने दी होती ?"

---

[1] गधे।

(४)

"होश में आओ। क़यामत आई है और लपटन की वर्दी पहन कर आई है।"

"क्या ?"

"लपटन साहब या तो मारे गये हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा है और बातें की हैं। सौहारा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है ?"

"तो अब ?"

"अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पलटन के बैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे। सूबेदार से कहो कि एक-दम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।"

"हुकुम तो यह है कि यही..."

"ऐसी तैसी हुकुम की ! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।"

"पर यहाँ तो-तुम आठ ही हो।"

"आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकलिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौट कर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया

और तीनों में एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रक्खा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जला कर गुत्थी पर रखने...

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक को उठा कर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब के गर्दन पर मारा और साहब "आह! माई गॉड" कहते हुए चित्त हो गये। लहनासिंह ने तीनों गोले बीन कर खन्दक के बाहर फेंक और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी लहनासिंह हँस कर बोला—"क्यों लपटन साहब? मिजाज़ कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखी। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधारी के जिले में नील गायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आए? हमारे लपटन साहब तो बिना "डैम" के पाँच लफ्ज़ भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानों जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया—"चालाक तो बड़े हो पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आखें चाहिए। तीन महीने हुए, एक तुरकी मौलवी मेरे

---

[1] हाय मेरे राम?

गाँव में आया था ! औरतों को बच्चे होने के तावीज़ बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनी वाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़-पढ़ कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायँगे तो गो-हत्या बन्द कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाया था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो; सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक-बाबू पौल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूँड़ दी थी और गाँव के बाहर निकाल कर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो...।"

साहब की जेब से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना के हैनरीमार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल क्रिया कर दी। धड़ाका सुन कर सब दौड़ आये।

"बोधा चिल्लाया—क्या है ?"

लहनासिंह ने उसे तो यह कह कर सुला दिया "कि एक लड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया" और औरों से सब हाल कह दिया। बन्दूकें लेकर सब तैयार हो गये। लहना से साफा फाड़ कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कस कर बाँधी। घाव मांस में ही थी। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने से सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिखों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तक कर मार रहा था—वह खड़ा था, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़ कर जर्मन आगे घुस आते थे। थोड़े से मिनटों में वे......

अचानक आवाज़ आयी "वाह गुरुजी की फ़तह ! वाह गुरुजी का खालसा !" और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मन की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गये।

पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—"अकाल सिक्खाँ दी फ़ौज आयी। वाह गुरुजी दी फ़तह! वाह गुरुजी दी खालसा!! सत्त सिरी अकाल पुरुष!!!" और लड़ाई खतम हो गयी। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिखों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आर-पार निकल गयी। लहनासिंह के पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी साफ़ा कस कर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना के दूसरा घाव—भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'छयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि वाणभट्ट की भाषा में दन्तवीणोप देशाचार्य कहलाती। वज़ीरसिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्राँस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह ने सारा हाल सुन, और काग-ज़ात पाकर, उसकी तुरन्त-बुद्धि को सराह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफ़ोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुँची। फ़ील्ड अस्पताल नज़दीक था सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जायँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँध कर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रखी गयीं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कह कर

टाल दिया कि थोड़ा घाव है; सबेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वही गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़ कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—

"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदार नीजो की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम?"

"मेरे लिये वहाँ पहुँच कर गाड़ी भेज देना और जर्मन मुर्दों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ। वज़ीरासिंह मेरे पास नहीं है ही।"

"अच्छा, पर—"

"बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़ कर कहा—"तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा है साथ ही चलेंगे। अपनी सुबेदारनी से तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?"

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा वह लिख देना और कह भी देना।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया। "वज़ीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।"

(५)

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ़ हो जाती है। जन्म-भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों

के रंग साफ़ होते हैं, समय की धुन्ध बिलकुल उन पर से हट जाती है।

❀ ✱ ❀

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दही वाले के यहाँ, सब्ज़ीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुड़माई हो गयी? तब 'धत्' कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा—हाँ कल हो गयी, देखते नहीं यह रेशम के बूटोंवाला सालू?' सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

"वज़ीरासिंह, पानी पिला दे।"

❀ ❀ ❀

पच्चीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं० ७७ राइफ़ल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन छुट्टी लेकर ज़मीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजीमेंट के अफ़सर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह कि चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाभ पर जाते हैं, लौटते हुये हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदार को गाँव के रास्ते में पकड़ा था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे तब सूबेदार बेड़े[1] में से निकल कर आया। बोला—लहना, सूबेदारनी तुझको जानती हैं? बुलाती हैं। जा मिल आ।' लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं? कब से

---

[1] ज़नाने

रेजीमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना?'

'नहीं।'

'तेरी कुड़माई हो गयी?—धत्—कल हो गयी—देखते नहीं रेशमी बूटोंवाला सालू—अमृतसर में—'

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

"वजीरा, पानी पिला"—उसने कहा था।

* * *

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम करती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुर का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमक-हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों को घघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भरती हुये उसे एक ही वर्ष हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया। 'सूबेदारनी रोने लगी—'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना यह मेरी भिक्षा है? तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गयी। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

"वजीरासिंह, पानी पिला"—उसने कहा था।

* * *

लहना का सिर अपनी गोद पर रखे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घंटे तक लहना चुप रहा फिर बोला—

"कौन ? कीरतसिंह ?"

वजीरा ने समझ कर कहा, "हाँ।"

"भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्टे पर मेरा सिर रख ले।"

वजीरा ने वैसा ही किया।

"हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस अब के जाड़े में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।"

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

* * *

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—

फ्रांस और बेलजियम—६८ वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

बूढ़ी काकी

[प्रेमचन्द]

बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है। बूढ़ी काकी में जिह्वा-स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही। समस्त इंद्रियाँ, नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे। पृथ्वी पर पड़ी रहतीं और जब घर वाले कोई बात उनकी इच्छा के प्रतिकूल करते, या भोजन का समय टल जाता, उसका परिमाण पूर्ण न होता अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और उन्हें न मिलती तो रोने लगती थीं। उनका रोना सिसकना साधारण रोना न था, वह गला फाड़-फाड़ कर रोती थीं।

उनके पतिदेव को स्वर्ग सिधारे कालांतर हो चुका था बेटे तरुण हो-होकर चल बसे थे। अब एक भतीजे के सिवाय और कोई न था। उसी भतीजे के नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी थी। भतीजे ने सम्पत्ति लिखाते समय तो खूब लम्बे-चौड़े वादे किये, परन्तु वे सब वादे केवल कुली डिपो के दलालों के दिखाए हुये सब्ज बाग थे। यद्यपि उस सम्पत्ति की वार्षिक आय डेढ़-दो सौ रुपये से कम न थी तथापि बूढ़ी काकी का पेट भर भोजन भी कठिनाई से मिलता था। इसमें उनके भतीजे पण्डित बुद्धिराम का अपराध था अथवा उनकी अर्द्धाङ्गिनी श्रीमती रूपा का, इसका निर्णय करना सहज नहीं। बुद्धिराम स्वभाव के सज्जन थे, किन्तु उसी समय तक जब तक कि उनके कोष पर कोई आँच न आये। रूपा स्वभाव से तीव्र थी सही, पर ईश्वर से डरती थी अतएव बूढ़ी काकी को उसकी तीव्रता उतनी न खलती थी जितनी बुद्धिराम की भलमनसाहत।

बुद्धिराम को कभी-कभी अपने अत्याचार का खेद होता था। विचारते कि इसी सम्पत्ति के कारण मैं इस समय भलामानुस बना बैठा हूँ। यदि मौखिक आश्वासन और सूखी सहानुभूति के स्थिति में सुधार हो सकता तो उन्हें कदाचित् कोई आपत्ति न होती; परन्तु विशेष व्यय का भय उनकी सच्चेष्टा को दबाये रखता था। यहाँ तक कि यदि द्वार पर कोई भला आदमी बैठा होता और बूढ़ी काकी उस समय अपना राग अलापने लगतीं तो वह आग हो जाते और घर में आकर उन्हें जोर से डाँटते। लड़कों को बुड्ढों से स्वाभाविक विद्वेष होता ही है और फिर जब माता-पिता का यह रंग देखते तो बूढ़ी काकी को और भी सताया करते। कोई चुटकी काट कर भागता, कोई उन पर पानी कुल्ली कर देता। काकी चीख मार कर रोतीं; परन्तु यह बात प्रसिद्ध थी कि वह केवल खाने के लिए रोती हैं; अतएव उनके सन्ताप और आर्तनाद पर कोई ध्यान नहीं देता था। हाँ, काकी कभी क्रोधातुर होकर बच्चों को गालियाँ देने लगतीं तो रूपा घटनास्थल पर अवश्य पहुँचती। इस भय से काकी अपनी जिह्व-कृपाण का कदाचित् ही प्रयोग करती थीं, यद्यपि उद्भव-शान्ति का यह उपाय रोने से कहीं अधिक उपयुक्त था।

सम्पूर्ण परिवार में यदि काकी से किसी को अनुराग था, तो वह बुद्धिराम की छोटी लड़की लाड़ली थी। लाड़ली अपने दोनों भाइयों के भय से अपने हिस्से की मिठाई चबेना बूढ़ी काकी के पास बैठ कर खाया करती थी। यह उनका रक्षागार था और यद्यपि काकी की शरण उनकी लोलुपता के कारण बहुत मँहगी पड़ती थी, तथापि भाइयों के अन्याय से कहीं सुलभ थी। इसी स्वार्थानुकूलता ने उन दोनों के प्रेम और सहानुभूति का आरोपण कर दिया था।

रात का समय था। बुद्धिराम के द्वार पर शहनाई बज रही थी

और गाँव के बच्चों का झुण्ड विस्मयपूर्ण नेत्रों से गाने का रसास्वाद कर रहा था। चारपाइयों पर मेहमान विश्राम करते हुये नाइयों से मुक्कियाँ लगवा रहे थे। समीप ही खड़ा हुआ भाट बिरदावली सुना रहा था और कुछ भावज्ञ मेहमानों से "वाह, वाह" पर ऐसा खुश हो रहा था मानों इस वाह-वाह के यथार्थ में वही अधिकारी है। दो-एक अंगरेजी पढ़े हुए नवयुवक इन व्यवहारों से उदासीन थे। वे इस गँवार-मण्डली में बोलना अथवा सम्मिलित होना अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते थे।

आज बुद्धिराम के बड़े लड़के सुखराम का तिलक आया है। यह उसी का उत्सव है। घर के भीतर स्त्रियाँ गा रही थीं और रूपा मेहमानों के लिए भोजन (के प्रबन्ध में व्यस्त थी। भट्ठियों पर कड़ाह चढ़े थे। एक में पूड़ियाँ-कचौड़ियाँ निकल रही थीं। दूसरे में अन्य पकवान बन रहे थे। एक बड़े हंडे में मसालेदार तरकारी पक रही थी। घी और मसाले की क्षुधावर्द्धक सुगन्धि चारों ओर फैली हुई थी।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में शोकमय विचार की भाँति बैठी हुई थी। वह स्वाद-मिश्रित सुगंधि उन्हें बेचैन कर रही थी। वे मन ही मन विचार कर रही थीं, संभवतः मुझे पूड़ियाँ न मिलेंगी। इतनी देर हो गयी, कोई भोजन लेकर नहीं आया, मालूम होता है, सब लोग भोजन कर चुके। मेरे लिए कुछ न बचा। यह सोचकर उन्हें रोना आया; परन्तु अशकुन के भय से वह रो न सकीं।

"आह! कैसी सुगंधि है! अब मुझे कौन पूछता है? जब रोटियों ही के लाले पड़े हैं तब ऐसे भाग्य कहाँ कि भरपेट पूड़ियाँ मिलें?" यह विचार कर उन्हें रोना आया, कलेजे में हूक-सी उठने लगी। परन्तु रूपा के भय से उन्होंने फिर भी मौन धारण कर लिया।

बूढ़ी काकी देर तक इन्हीं दुःखदायक विचारों में डूबी रही। घी और मसाला की सुगंधि रह-रह कर मन को आपे से बाहर किये देती

थी। मुँह में पानी भर-भर आता था। पूड़ियों का स्वाद स्मरण करके हृदय में गुदगुदी होने लगती थी। किसे पुकारूँ; आज लाड़ली बेटी भी नहीं आयी। दोनों छोकड़े सदा दिक किया करते हैं। आज उनका भी कहीं पता नहीं। कुछ मालूम तो होता कि क्या बन रहा है।

बूढ़ी काकी की कल्पना में पूड़ियों की तस्वीर नाचने लगी। खूब लाल-लाल, फूली-फूली, नरम-नरम होंगी, रूपा ने भली भाँति मोयन दिया होगा। कचौरियाँ में अजवाइन और इलायची की महक आ रही होगी। एक पूरी मिलती तो जरा हाथ में लेकर देखती। क्यों न चल कर कड़ाह के सामने बैठूं। पूड़ियाँ छन-छन कर तैरती होंगी। फूल हम घर में भी सूँघ सकते हैं, परन्तु वाटिका में कुछ और बात होती है। इस प्रकार निर्णय करके बूढ़ी काकी उकड़ूँ बैठ कर हाथों के बल सरकती हुई बड़ी कठिनाई से चौखट से उतरी और धीरे-धीरे रेंगती हुई कड़ाह के पास जा बैठी। यहाँ आने पर उन्हें उतना ही धैर्य हुआ जितना भूखे कुत्ते को खाने वाले के सम्मुख बैठने में होता है।

रूपा उस समय कार्य भार से उद्विग्न हो रही थी। कभी उस कोठे में जाती, कभी उस कोठे में, कभी कड़ाह के पास आती, कभी भंडार में जाती। किसी ने बाहर से आकर कहा—महाराज ठंडई माँग रहे हैं। ठंडई देने लगी। इतने में फिर किसी ने आकर कहा—भाट आया है, उसे कुछ दे दो। भाट के लिए सीधा निकाल रही थी कि एक तीसरे आदमी ने आकर पूछा—"अभी भोजन तैयार होने में कितना विलम्ब है? जरा ढोल-मजीरा उतार दो।" बेचारी अकेली स्त्री दौड़ती दौड़ती व्याकुल हो रही थी, झुँझलाती थी, कुढ़ती थी, परन्तु क्रोध प्रकट होने के अवसर न पाती थी। भय होता कहीं पड़ोसिनें यह न कहने लगें कि इतने में ही उबल पड़ी। प्यास से स्वयं उसका कंठ सूख रहा था गर्मी के मारे फूँकी जाती थी, परन्तु इतना अवकाश भी नहीं था कि जरा पानी पी ले अथवा पंखा लेकर झले। यह भी

खटका था कि जरा आँख हटी और चीज़ों की लट्टू मची। इस अवस्था में उसने बूढ़ी काकी को कड़ाही के पास बैठा देखा तो ज़ल गयी। क्रोध न रुक सका। इसका भी ध्यान न रहा कि पड़ोसिनें बैठी हुई हैं मन में क्या कहेंगी, पुरुषों में लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। जिस प्रकार मेढक केंचुए पर झपटता है, उसी प्रकार वह बूढ़ी काकी पर झपटी और उन्हें दोनों हाथों से झिंझोड़ कर बोली—ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरी में बैठते क्या दम घुटता था? अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान् को भोग नहीं लगा, तब तक धैर्य न हो सका? आकर छाती पर सवार हो गई। जल जाय ऐसी जीभ। दिन-भर खाती न होती तो न जाने किसकी हाँड़ी में मुँह डालती? गाँव देखेगा तो कहेगा बुढ़िया भरपेट खाने को नहीं पाती, तब तो इस तरह मुँह बाये फिरती है। डाइन न मरे न माँचा छोड़े। नाम बेचने पर लगी है। नाक कटवा कर दम लेगी। इतनी ठूँसती है, न जाने कहाँ भस्म हो जाता है। लो! भला चाहती हो तो जाकर कोठरी में बैठो, जब घर के लोग खाने लगेंगे तब तुम्हें भी मिलेगा। तुम कोई देवी नहीं हो कि चाहे किसी के मुँह में पानी न जाय, परन्तु तुम्हारी पूजा पहले हो जाय। बूढ़ी काकी ने सिर न उठाया, न रोई, न बोलीं। चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरी में चली गयीं। आघात ऐसा कठोर था कि हृदय और मस्तिष्क की सम्पूर्ण शक्तियाँ, सम्पूर्ण विचार और सम्पूर्ण भार उसी ओर आकर्षित हो गए थे। नदी में जब करार का कोई वृहद् खंड कट कर गिरता है तो आस पास का जल समूह चारों ओर से उसी स्थान को पूरा करने के लिए दौड़ता है।

भोजन तैयार हो गया। आँगन में पत्तल पड़ गये। मेहमान खाने लगे। स्त्रियों ने जेवनार-गीत गाना आरम्भ कर दिया। मेहमानों की नाई और सेवकगण भी उसी मंडली के साथ, किन्तु कुछ हट कर भोजन

करने बैठे थे, सभ्यतानुसार जब तक सबके सब खा न चुके कोई उठ नहीं सकता था। दो-एक मेहमान जो कुछ पढ़े लिखे थे सेवकों के दीर्घाहार पर झुँझला रहे थे। वे इस बन्धन को व्यर्थ और बे-सिर पैर की बात समझते थे।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में जाकर पश्चात्ताप कर रही थीं कि मैं कहाँ से कहाँ गयी। उन्हें रूपा पर क्रोध नहीं था। अपनी जल्द-बाजी पर दुःख था। सच ही तो है जब तक मेहमान लोग भोजन न कर चुकेंगे घर वाले कैसे खाएँगे। मुझसे इतनी देर भी नहीं रहा गया। सब के सामने पानी उतर गया। अब जब तक कोई बुलाने न आएगा न जाऊँगी।

मन-ही-मन इसी प्रकार विचार कर वह बुलाने की प्रतीक्षा करने लगीं। परन्तु घी का रुचिकर सुवास बड़ा ही धैर्य-परीक्षक प्रतीत हो रहा था। उन्हें एक-एक पल एक-एक युग के समान मालूम होता था। अब पत्तल बिछ गए होंगे। अब मेहमान आ गये होंगे। लोग हाथ-पैर धो रहे हैं, नाई पानी दे रहा है। मालूम होता है लोग खाने बैठ गये। जेवनार गाया जा रहा है, यह विचार कर वह मन को बहलाने के लिये लेट गयीं। धीरे-धीरे एक गीत गुनगुनाने लगीं। उन्हें मालूम हुआ कि मुझे गाते देर हो गयी। क्या इतनी देर तक लोग भोजन कर ही रहे होंगे? किसी की आवाज नहीं सुनाई देती। अवश्य ही लोग खा-पीकर चले गये। मुझे कोई बुलाने नहीं आया। रूपा चिढ़ गई है। क्या जाने न बुलाए, सोचती हो कि आप ही आवेंगी, वह कोई मेहमान तो हैं नहीं जो बुलाऊँ। बूढ़ी काकी चलने के लिए तैयार हुईं। यह विश्वास कि एक मिनट में पूड़ियाँ और मसालेदार तरकारियाँ सामने आयँगी उनकी स्वादेंद्रियों को गुदगुदाने लगा। उन्होंने मन में तरह-तरह के मंसूबे बाँधे—पहले तरकारी से पूड़ियाँ खाऊँगी, फिर दही और शक्कर से; कचौरियाँ रायते के साथ मजेदार

मालूम होंगी। चाहे कोई बुरा माने चाहे भला, मैं तो माँग-माँग कर खाऊँगी। यही न लोग कहेंगे कि इन्हें विचार नहीं? कहा करें, इतने दिनों के बाद पूड़ियाँ मिल रही हैं तो मुँह जूठा करके थोड़े ही उठ आऊँगी।

वह उकड़ूँ बैठ कर हाथों के बल खसकती आँगन में आयीं। परन्तु हाय दुर्भाग्य! अभिलाषा ने अपने पुराने स्वभाव के अनुसार समय की मिथ्या कल्पना की थी। मेहमान-मंडली अभी बैठी हुई थी। कोई खाकर उंगलियाँ चाटता था, कोई तिर्छे नेत्रों से देखता था कि और लोग अभी खा रहे हैं या नहीं? कोई इस चिन्ता में था कि पत्तल पर पूड़ियाँ छूटी जाती हैं किसी तरह इन्हें भीतर रख लेता। कोई दही खाकर जीभ चटकारता था, परन्तु दूसरा दोना माँगते संकोच करता था। इतने में बूढ़ी काकी रेंगती हुई उनके बीच में जा पहुँची। कई आदमी चौंक कर उठ खड़े हुए पुकारने लगे—अरे यह बुढ़िया कौन है? यह कहाँ से आ गयी? देखो किसी को छू न दे।

पंडित बुद्धिराम काकी को देखते ही क्रोध से तिलमिला गये, पूड़ियों का थाल लिए खड़े थे। थाल को जमीन पर पटक दिया और जिस प्रकार निर्दयी महाजन अपने किसी बेईमान और भगोड़े असामी को देखते ही झपट कर उसका टेटुआ पकड़ लेता है उसी तरह लपट कर उन्होंने बूढ़ी काकी के दोनों हाथ पकड़े और घसीटते हुए लाकर उन्हें अँधेरी कोठरी में धम से पटक दिया। आशा-रूपी वाटिका लू के एक ही झोंके से नष्ट-विनष्ट हो गयी।

मेहमानों ने भोजन किया। घरवालों ने भोजन किया। बाजेवाले, धोबी, चमार भी भोजन कर चुके, परन्तु बूढ़ी काकी को किसी ने न पूछा। बुद्धिराम और रूपा दोनों ही बूढ़ी काकी को उसकी निर्लज्जता के लिए दंड देने का निश्चय कर चुके थे। उनके बुढ़ापे पर, दीनता पर, हत-ज्ञान पर किसी को करुणा न आती थी। अकेली लाडली उनके लिए कुढ़ रही थी!

लाड़ली को काकी से अत्यन्त प्रेम था। बेचारी भोली लड़की थी। बाल-विनोद और चंचलता की उसमें गंध तक न थी। दोनों बार जब उससे माता-पिता ने काकी को निर्दयता से घसीटा तो लाड़ली का हृदय ऐंठ कर रह गया। वह झुँझला रही थी कि यह लोग काकी को क्यों बहुत सी पूड़ियाँ नहीं दे देते? क्या मेहमान सब-की सब खा जायँगे। और यदि काकी ने मेहमानों के पहले खा लिया तो क्या बिगड़ जाएगा? वह काकी के पास जाकर उन्हें धैर्य देना चाहती थी; परन्तु माता के भय से न जाती थी। उसने अपने हिस्से की पूड़ियाँ बिलकुल न खाई थीं। अपनी गुड़ियों की पिटारी में बन्द कर रखी थीं। वह उन पूड़ियों को काकी के पास ले जाना चाहती थी। उसका हृदय अधीर हो रहा था। बूढ़ी काकी मेरी बात सुनते ही उठ बैठेंगी। पूड़ियाँ देख कर कैसी प्रसन्न होंगी। मुझे खूब प्यार करेंगी!

रात के ग्यारह बज गये। रूपा आँगन में पड़ी सो रही थी। लाड़ली की आँखों में नींद न आती थी। काकी को पूड़ियाँ खिलाने की खुशी उसे सोने न देती थी। उसने गुड़ियों की पिटारी सामने ही रखी थी। जब विश्वास हो गया कि अम्मा सो रही हैं; तो वह चुपके से उठी और विचारने लगी, कैसे चलूँ। चारों ओर अँधेरा था। केवल चूल्हों में आग चमक रही थी, और चूल्हों के पास एक कुत्ता लेटा हुआ था। लाड़ली की दृष्टि द्वार के सामने वाली नीम की ओर गयी। उसे मालूम हुआ कि उस पर हनुमान जी बैठे हुए हैं। उनकी पूँछ, उनकी गदा, सब स्पष्ट दिखलाई दे रही थी। मारे भय के उसने आँखें बन्द कर लीं, इतने में कुत्ता उठ बैठा, लाड़ली को ढाढ़स हुआ। कई सोये हुये मनुष्यों के बदले एक जागता हुआ कुत्ता उसके लिए अधिकतर धैर्य का कारण हुआ। उसने पिटारी उठाई और बूढ़ी काकी की कोठरी की ओर चली।

बूढ़ी काकी को केवल इतना स्मरण था कि किसी ने मेरे हाथ पकड़ कर घसीटे, फिर ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई पहाड़ पर उड़ाये लिए जाता है। उनके पैर बार-बार पत्थरों से टकराये तब किसी ने उन्हें पहाड़ पर से पटका; वे मूर्छित हो गयीं।

जब वे सचेत हुईं तो किसी की जरा भी आहट न मिलती थी। समझा कि सब लोग खा पी कर सो गये और उनके साथ मेरी तकदीर भी सो गयी। रात कैसे कटेगी? राम! क्या खाऊँ, पेट में अग्नि धधक रही है? हा! किसी ने मेरी सुधि न ली! क्या मेरा ही पेट काटने से धन जुट जायगा? इन लोगों को इतनी भी दया नहीं आती कि न जाने बुढ़िया कब मर जाय? उसका जी क्यों दुखावें? मैं पेट की रोटियाँ ही खाती हूँ कि और कुछ? इस पर यह हाल! मैं अंधी अपाहिज ठहरी, न कुछ सुनूँ न बूझूँ, यदि आँगन में चली गई तो क्या बुद्धिराम से इतना कहते न बनता कि काकी अभी लोग खा रहे हैं, फिर आना। मुझे घसीटा, पटका। उन्ही पूड़ियों के लिए रूपा ने सबके सामने गालियाँ दीं। उन्हीं पूड़ियों के लिए इतनी दुर्गत करने पर भी उनका पत्थर का कलेजा न पसीजा। सबको खिलाया, मेरी बात तक न पूछी। जब तब ही न दीं, तब अब क्या देंगी?

यह विचार कर काकी निराशमय संतोष के साथ लेट गयीं। ग्लानि से गला भर-भर आता था, परन्तु मेहमानों के भय से रोती न थीं।

सहसा उनके कानों में आवाज़ आयी—"काकी उठो, मैं पूड़ियाँ लाई हूँ।"

काकी ने लाड़ली की बोली पहिचानी। चटपट उठ बैठीं। दोनों हाथों के लाड़ली को टटोला और उसे गोद में बैठा लिया।

लाड़ली ने पूड़ियाँ निकाल कर दीं। काकी ने पूछा—"क्या तुम्हारी अम्मा ने दी हैं?" लाड़ली ने कहा—"नहीं यह मेरे हिस्से की है।" काकी पूड़ियों पर टूट पड़ीं। पाँच मिनट में पिटारी खाली हो गयी।

लाड़ली ने पूछा—"काकी, पेट भर गया ?" जैसे थोड़ी सी वर्षा ठंडक के स्थान पर और भी गर्मी पैदा कर देती है उसी भाँति इन थोड़ी-सी पूड़ियों ने काकी की क्षुधा और इच्छा को उत्तेजित कर दिया था। बोलीं—"नहीं बेटी, जाकर अम्मा से और माँग लाओ।" लाड़ली ने कहा—"अम्मा सोती हैं, जगाऊँगी तो मारेंगी।"

काकी ने पिटारी को फिर टटोला। उसमें कुछ खुर्चन गिरे थे। उन्हें निकाल कर वे खा गयीं। बार-बार होंठ चाटती थीं। चटखारें भरती थीं।

हृदय मसोस रहा था कि और पूड़ियाँ कैसे पाऊँ। संतोष-हेतु जब टूट जाता है तब इच्छा का बहाव अपरिमित हो जाता है। मतवालों को मद स्मरण करना उन्हें मदांध बनाना है। काकी का अधार मन इच्छा के प्रबल प्रवाह में बह गया। उचित और अनुचित का विचार जाता रहा। वे कुछ देर तक उस इच्छा को रोकती रहीं। सहसा लाड़ली से बोलीं—"मेरा हाथ पकड़ कर वहाँ ले चलो जहाँ मेहमानों ने बैठ कर भोजन किया है।

लाड़ली उनका अभिप्राय समझ न सकी। उसने काकी का हाथ पकड़ा और ले जाकर जूठे पत्तलों के पास बिठला दिया। दीन, क्षुधातुर हत ज्ञान बुढ़िया पत्तलों से पूड़ियों के टुकड़े चुन-चुन कर भक्षण करने लगी। ओह! दही कितना स्वादिष्ट था, कचौरियाँ कितनी सलोनी, खस्ता कितने सुकोमल। काकी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थी कि मैं वह काम कर रही हूँ जो मुझे कदापि न करना चाहिए। मैं दूसरों के जूठे पत्तल चाट रही हूँ। परन्तु बुढ़ापा तृष्णारोग का अन्तिम समय है, जब संपूर्ण इच्छाएँ एक ही केन्द्र पर आ लगती हैं। बूढ़ी काकी में यह केन्द्र उनकी स्वादेन्द्रिय थी।

ठीक उसी समय रूपा की आँखें खुलीं। उसे मालूम हुआ कि लाड़ली मेरे पास नहीं है। वह चौंकी, चारपाई के इधर-उधर ताकने

लगी कि कहीं नीचे तो नहीं गिर पड़ी। उसे वहाँ न पाकर वह उठ बैठी तो क्या देखती है कि लाड़ली जूठे पत्तलों के पास चुपचाप खड़ी है और बूढ़ी काकी पत्तलों पर से पूड़ियों के टुकड़े उठा-उठाकर खा रही हैं। रूपा का हृदय सन्न हो गया। किसी गाय के गर्दन पर छुरी चलते देख कर जो अवस्था उसकी होती, वही उस समय हुई। एक ब्राह्मणी दूसरों का जूठा पत्तल टटोले, इससे अधिक शोकमय दृश्य असंभव था। पूड़ियों के कुछ ग्रासों के लिये उसकी चचेरी सास ऐसा पतित और निकृष्ट कर्म कर रही है! यह वह दृश्य था जिसे देख कर देखने वालों के हृदय काँप उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो जमीन रुक गयी, आसमान चक्कर खा रहा है, संसार पर कोई नयी विपत्ति आने वाली है। रूपा को क्रोध न आया। शोक के सम्मुख क्रोध कहाँ? करुणा और भय से उसकी आँखें भर आयी। इस अधर्म के पार का भागी कौन है? उसने सच्चे हृदय से गगन-मंडल की ओर हाथ उठा कर कहा—"परमात्मा, मेरे बच्चों पर दया करो, इस अधर्म का दण्ड मुझे मत दो नहीं तो हमारा सत्यानाश हो जायगा।"

रूपा को अपनी स्वार्थपरता और अन्याय इस प्रकार प्रत्यक्ष-रूप में कभी न दीख पड़ा था। वह सोचने लगी हाय! कितनी निर्दय हूँ। जिसकी सम्पत्ति से मुझे दो सौ रुपया वार्षिक आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति! और मेरे कारण! हे दयामय भगवान्! मुझसे बड़ी भारी चूक हुई है, मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटे का तिलक था। सैकड़ों मनुष्यों ने भोजन पाया। मैं उनके इशारों की दासी बनी रही। अपने नाम के लिए सैकड़ों रुपये व्यय कर दिये; परन्तु जिसकी बदौलत हज़ारों रुपये खाए उसे इस उत्सव में भर पेट भोजन न दे सकी। केवल इसी कारण तो कि वह बृद्धा है, असहाय है।

रूपा ने दिया जलाया, अपने भंडार का द्वार खोला और एक थाली में सम्पूर्ण सामग्रियाँ सजा कर लिये हुए काकी की ओर चली।

आधी रात जा चुकी थी, आकाश पर तारों के थाल सजे हुए थे और उन पर बैठे हुए देवगण स्वर्गीय पदार्थ सजा रहे थे, परन्तु उनमें किसी को वह परमानन्द प्राप्त न हो सकता था जो बूढ़ी काकी को अपने सम्मुख थाल देखकर प्राप्त हुआ। रूपा ने कंठावरुद्ध स्वर में कहा—"काकी उठो, भोजन कर लो। मुझसे आज बड़ी भूल हुई, उसका बुरा न मानना। परमात्मा से प्रार्थना कर दो कि वह मेरा अपराध क्षमा कर दें।"

भोले-भोले बच्चों की भाँति, जो मिठाइयाँ पाकर मार और तिरस्कार सब भूल जाता है, बूढ़ी काकी बैठी हुई खाना खा रही थीं। उनके एक-एक रोएँ से सच्ची सदिच्छाएँ निकल रही थीं और रूपा बैठी इस स्वर्गीय दृश्य का आनन्द लूटने में निमग्न थी।

पुरस्कार

[जयशंकर 'प्रसाद']

आर्द्रा नक्षत्र; आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव-दुंदुभी का गम्भीर घोष। प्राचीर के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण-पुरुष झाँकने लगा था—देखने लगा महाराज की सवारी। शैलमाला के अंचल में समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर-तोरण से जय-घोष हुआ, भीड़ में गजराज का चपरासी शुण्ड उन्नत दिखाई पड़ा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोरें भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

प्रभात की हेम किरणों से अनुरञ्जित नन्हीं-नन्हीं बूँदों का एक झोंका स्वर्ण मल्लिका के समान बरस पड़ा। मंगल-सूचना से जनता ने हर्ष ध्वनि की।

रथों हाथियों और अश्वारोहियों की पंक्ति जम गयी। दर्शकों की भीड़ भी कम न थी। गजराज बैठ गया, सीढ़ियों से महाराज उतरे। सौभाग्यवती और कुमारी सुन्दरियों के दो दल आम्र पल्लवों से सुशोभित मंगलकलश और फुल, कुंकुम तथा खीलों से भरे थाल लिए, मधुर गान करते हुये आगे बढ़े।

महाराज के मुख पर मधुर मुस्कान थी। पुरोहित-वर्ग ने स्वस्त्ययन किया। स्वर्ण रंजित हल की मूठ पकड़ कर महाराज ने जुते हुए सुन्दर पुष्ट बैलों को चलने का संकेत किया। बाजे बजने लगे। किशोरी कुमारियों ने खीलों और फूलों की वर्षा की।

कोशल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिए महाराज को कृषक बनना पड़ा—उस दिन इन्द्र-पूजन की धूमधाम होती; गोठ

होती। नगर-निवासी उस पहाड़ी भूमि में आनन्द मनाते। प्रतिवर्ष कृषि का यह महोत्सव उत्साह से सम्पन्न होता, दूसरे राज्यों से भी युवक राजकुमार इस उत्सव में बड़े चाव से आकर योग देते।

मगध का एक राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठा बड़े कुतूहल से वह दृश्य देख रहा था।

बीजों का एक थाल लिए कुमारी मधूलिका महाराज के साथ थी। बीज बोते हुए महाराज जब हाथ बढ़ाते तब मधूलिका उनके सामने थाल रख देती। यह खेत मधूलिका का था, जो इस साल महाराज की खेती के लिए चुना गया था। इसलिए बीज देने का सम्मान मधूलिका ही को मिलता। वह कुमारी थी। सुन्दरी थी। कौशेय वसन उसके शरीर पर इधर-उधर लहराता हुआ स्वयं शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सम्हालती और कभी अपने रूखे अलकों को। कृषक-बालिका के शुभ्र भाल पर श्रमकणों की भी कमी न थी। वे सब बरोनियों में गुँथे जा रहे थे, सम्मान और लज्जा उसके अधरों पर मन्द मुस्कराहट के साथ सिहर उठते, किन्तु महाराज को बीज देने में उसने शिथिलता न दिखाई। सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे—विस्मय से, कुतूहल से। और अरुण देख रहा था कृषक-कुमारी मधूलिका को। आह कितना भोला सौन्दर्य! कितनी सरल चितवन।

उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त हो गया। महाराज ने मधूलिका के खेत का पुरस्कार दिया थाल में कुछ स्वर्ण मुद्राएँ। वह राजकीय अनुग्रह था। मधूलिका ने थाली सिर से लगा ली, किन्तु साथ ही उसमें की स्वर्ण मुद्राओं को महाराज पर न्योछावर करके बिखेर दिया। मधूलिका की उस समय की ऊर्जस्वित मूर्ति लोग आश्चर्य से देखने लगे। महाराज की भृकुटि भी जरा चढ़ी ही थी कि मधूलिका ने सविनय कहा—'देव! यह मेरे पितृ-पितामहों की भूमि है। इसे बेचना अपराध है, इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। महाराज

के बोलने के पहले ही वृद्ध मंत्री ने तीखे स्वर से कहा—"अबोध! क्या बक रही है? राजकीय अनुग्रह का तिरस्कार! तेरी भूमि से चौगुना मूल्य है; फिर कोशल का यह सुनिश्चय राष्ट्रीय नियम है। तू आज से राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी हुई; इस धन से अपने को सुखी बना।"

महाराज के संकेत करने पर मंत्री ने कहा—"देव! वाराणसी युद्ध के अन्यतम वीर सिंहमित्र की यह एकमात्र कन्या है।" महाराज चौंक उठे—"सिंहमित्र की कन्या! जिसने मगध के सामने कोशल की लाज रख ली थी, उसी वीर की मधूलिका कन्या है?"

'हाँ देव!" सविनय मंत्री ने कहा।

"इस उत्सव के परम्परागत नियम क्या हैं, मंत्रिवर?" महाराज ने पूछा।

"देव, नियम तो बहुत साधारण हैं। किसी भी अच्छी भूमि को इस उत्सव के लिए चुन कर नियमानुसार पुरस्कार-स्वरूप उसका मूल्य दे दिया जाता है। वह भी अत्यन्त अनुग्रह पूर्वक अर्थात् भूसंपत्ति का चौगुना मूल्य उसे मिलता है। उस खेती को वही व्यक्ति वर्ष भर देखता है। वह राजा का खेत कहा जाता है।"

महाराज को विचार-संघर्ष से विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता थी। महाराज चुप रहे। जय घोष के साथ सभा विसर्जित हुई। सब अपने-अपने शिविरों में चले गये। किन्तु मधूलिका को उत्सव में फिर किसी ने देखा। वह अपने खेत की सीमा पर विशाल मधूक-वृक्ष के चिकने हरे पत्तों की छाया में अनमनी चुपचाप बैठी रही।

* * *

रात्रि का उत्सव अब विश्राम ले रहा था। राजकुमर अरुण उसमें सम्मिलित नहीं हुआ—वह विश्राम-भवन में जागरण कर रहा था। आँखों में नींद न थी। प्राची में जैसे गुलाली खिल रही

थी, वही रंग उसकी आँखों में था। सामने देखा तो मुँडेर पर कपोती एक पैर पर खड़ी पंख फैलाए अँगड़ाई ले रही थी। अरुण उठ खड़ा हुआ! द्वार पर सुसज्जित अश्व था, वह देखते-देखते नगर-तोरण पर जा पहुँचा। रक्षकगण ऊँघ रहे थे; अश्व के पैरों के शब्द से चौंक उठे।

युयक कुमार तीर-सा निकल गया। सिन्धु देश का तुरंग प्रभात के पवन से पुलकित हो रहा था। घूमता अरुण उसी मधूक-वृक्ष के नीचे पहुँचा, जहाँ मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए खिन्न निद्रा का सुख ले रही थी।

अरुण न देखा, एक छिन्न माधवी-लता वृक्ष की शाखा से च्युत होकर पड़ी है। सुमन मुकुलित थे, भ्रमर निस्पंद। अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का संकेत किया, उस सुषमा को देखने के लिए। परन्तु कोकिल बोल उठा। उसने अरुण से प्रश्न किया—"छिः कुमारी के सोए हुये सौंदर्य पर दृष्टिपात करने वाले धृष्ट, तुम कौन?" मधूलिका की आँख खुल पड़ीं। उसने देखा एक अपरिचित युवक। वह संकोच से उठ बैठी। "भद्रे! तुम्हीं न कल के उत्सव की संचालिका रही हो?"

"उत्सव! हाँ, उत्सव ही तो था।"

"कल उस सम्मान......"

"क्या आपको कल का स्वप्न सता रहा है? भद्रे! आप क्या मुझे इस अवस्था में सन्तुष्ट न रहने देंगे?"

"मेरा हृदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया है देवि!'

"मेरे उस अभिनय का—मेरी विडम्बना का। आह! मनुष्य कितना निर्दय है, अपरिचित! क्षमा करो, जाओ अपने मार्ग।"

"सरलता की देवि! मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूँ—मेरे हृदय की भावना अवगुंठन में रहना नहीं जानती। उसे अपनी...

'राजकुमार' मैं कृषक बालिका हूँ ! आप नन्दन-विहारी और मैं पृथ्वी पर परिश्रम करके जीनेवाली। आज मेरी स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया है। मैं दुःख से विकल हूँ, मेरा उपहास न करो।"

"मैं कौशल नरेश से तुम्हारी भूमि तुम्हें दिलवा दूँगा।"

"नहीं वह कोशल का राष्ट्रीय नियम है। मैं उसे बदलना नहीं चाहती—चाहे उससे मुझे कितना ही दुःख हो ?

"तब तुम्हारा रहस्य क्या है ?"

"यह रहस्य मानव-हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार, नियमों से यदि मानव-हृदय बाध्य होता तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न खिंच कर एक कृषक-बालिका का अपमान करने न आता" मधूलिका उठ खड़ी हुई।

चोट खाकर राजकुमार लौट पड़ा। किशोर किरणों में उसका रत्न किरीट चमक उठा। अश्व वेग से चला जा रहा था और मधूलिका निष्ठुर प्रहार करके क्या स्वयं आहत न हुई। उसके हृदय में टीस-सी होने लगी। वह सजल नेत्रों से उड़ती हुई धूल देखने लगी।

* * *

मधूलिका ने राजा का प्रतिपादन, अनुग्रह नहीं लिया। वह दूसरे खेतों में काम करती थी और चौथे पहर रूखी-सूखी खाकर पड़ रहती। मधूक-वृक्ष के नीचे छोटी-सी पर्ण-कुटीर थी। सूखे डंठलों से उसकी दीवार बनी थी। मधूलिका का वह आश्रय था। कठोर परिश्रम से जो रूखा अन्न मिलता वही उसकी साँसों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त था। दुबली होने पर भी उसके अंग तपस्या की क्रान्ति थी। आस-पास के कृषक उसका आदर करते थे। वह एक आदर्श बालिका थी। दिन सप्ताह, महीनें और वर्ष बीतने लगे।

शीतकाल की रजनी, मेघों से भरा आकाश, जिसमें बिजली की

दौड़-धूप। मधूलिका छाजन टपक रहा था; ओढ़ने की कमी थी। वह ठिठुर कर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ा कर सोच रही थी। जीवन के सामंजस्य बनाये रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं, परन्तु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ घटती-बढ़ती रहती है। आज बहुत दिनों पर उसे बीती बात स्मरण हुई—"दो, नहीं तीन वर्ष हुए होंगे, इसी मधूक के नीचे, प्रभात में—तरुण राजकुमार ने क्या कहा था ?"

वह अपने हृदय से पूछने लगी—उन चाटुकी के शब्दों को सुनने के लिए उत्सुक-सी वह पूछने लगी—"क्या कहा था ?" दुख-दग्ध हृदय उन स्वप्न-सी बातें का स्मरण रख सकता और स्मरण ही होता तो भी कष्टों की इस काली निशा में वह कहने का साहस करता। हाय री, विडम्बना !

आज मधूलिका उस बीते हुए क्षण को लौटा लेने के लिए विकल थी। असहाय दारिद्र की ठोकरों ने उसे व्यथित और अधीर कर दिया है। मगध की प्रासाद-माला के बैभव का काल्पनिक चित्र उन सूखे डंठलों की रंध्रों से नीचे नभ में बिजली के आलोक में नाचता हुआ दिखाई देने लगा। खिलवाड़ी शिशु जैसे श्रवण की सन्ध्या में जुगनू को पकड़ने के लिए हाथ लपकाता है वैसे ही मधूलिका 'अभी वह निकल गया, मन ही-मन कह रही थी। वर्षा ने भीषण रूप धारण किया। गड़गड़ाहट बढ़ने लगी; ओले पड़ने की संभावना थी। मधूलिका अपनी जर्जर झोपड़ी के लिये काँप उठी। सहसा बाहर कुछ शब्द हुआ—

"कौन है यहाँ ? पथिक को आश्रय चाहिए।"

मधूलिका ने डंठलों का कपाट खोल दिया। बिजली चमक उठी! उसने देखा, एक पुरुष घोड़े की डोर पकड़े खड़ा है। सहसा वह

चिल्ला उठी—"राजकुमार!"

"मधूलिका!" आश्चर्य से युवक ने कहा।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। मधूलिका अपनी कल्पना को सहसा प्रत्यक्ष देखकर चकित हो गई, "इतने दिनो के बाद आज फिर।"

अरुण ने कहा—"कितना समझाया मैंने—परन्तु......"

मधूलिका अपनी दयनीय अवस्था पर संकेत करने देना नहीं चाहती थी। उसने कहा—"और आज आपकी यह क्या दशा है?"

सिर झुका कर अरुण ने कहा—"मैं मगध का विद्रोही निर्वासित कोशल में जीविका खोजने आया हूँ।"

मधूलिका उस अन्धकार में हँस पड़ी—"मगध के विद्रोही राजकुमार का स्वागत करे एक अनाथिनी कृषक-बालिका, यह भी एक विडम्बना है; तो भी मैं स्वागत के लिए प्रस्तुत हूँ।"

* * *

शीतकाल निस्तब्ध रजनी, कुहरे के धुली हुई चाँदनी, हाड़ कँपा देने वाला समीर तो भी अरूण और मधूलिका दोनों पहाड़ी गह्वर के द्वार पर बटवृक्ष के नीचे बैठे हुये बातें कर रहे हैं। मधूलिका की वाणी में उत्साह था, किन्तु अरुण जैसे अत्यन्त सावधान होकर बोलता।

मधूलिका ने पूछा—"अब तुम इतनी विपन्न अवस्था में हो तो फिर इतने सैनिकों को साथ रखने की क्या आवश्यकता है?"

मधूलि! बाहुबल ही तो वीरों की आजीविका है। ये मेरे जीवन-मरण के साथी हैं भला मैं इन्हें कैसे छोड़ देता? और करता ही क्या?"

"क्यों? हम लोग परिश्रम से कमाते और खाते। अब तो तुम......।"

"भूल न करो, मैं अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूँ। नए राज्य की स्थापना कर सकता हूँ, निराश क्यों हो जाऊँ?" अरुण के शब्दों में कम्पन था; वह जैसे कुछ कहना चाहता था, पर कह न सकता था।

"नवीन राज्य! ओहो, तुम्हारा उत्साह तो कम नहीं। भला कैसे? कोई ढंग बताओ तो मैं भी कल्पना का आनन्द ले लूँ।"

'कल्पना का आनन्द नहीं मधूलिका, मैं तुम्हें राजरानी के सम्मान में सिंहासन पर बिठाऊँगा। तुम अपने छिने हुए खेत की चिन्ता करके भयभीत न हो।

एक क्षण में सरला मधूलिका के मन में प्रमाद का अंधड़ बहने लगा—द्वन्द्व मच गया। उसने सहसा कहा—"आह, मैं सचमुच आज तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती थी, राजकुमार!"

अरुण ढिठाई से उसके हाथों को दबाकर बोला—"तो मेरा भ्रम था, तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो?"

युवती का वक्षस्थल फूल उठा। वह हाँ भी नहीं कह सकी, ना भी नहीं। अरुण ने उसकी अवस्था का अनुभव कर लिया। कुशल मनुष्य के समान उसने अवसर को हाथ से न जाने दिया। तुरन्त बोल उठा—"तुम्हारी इच्छा ही तो प्राणों से प्राण लगाकर मैं तुम्हें इसी कोशल-सिंहासन पर बिठा दूँ। मधूलिका! अरुण के खड्ग का आतंक देखोगी?" मधूलिका एक बार काँप उठी। वह कहना चाहती थी, नहीं—किन्तु उसके मुँह से निकला, "क्या?"

"सत्य मधूलिका, कोशल-नरेश तभी से तुम्हारे लिए चिन्तित हैं यह मैं जानता हूँ, तुम्हारी साधारण-सी प्रार्थना वह अस्वीकार न करेंगे। और मुझे यह भी विदित है कि कोशल के सेनापति अधिकांश सैनिकों के साथ पहाड़ी दस्युओं का दमन करने के लिये बहुत दूर चले गए हैं।"

मधूलिका की आँखों के आगे बिजलियाँ हँसने लगीं। दारुण भावना से उसका मस्तक विकृत हो उठा। अरुण ने कहा—"तुम बोलती नहीं हो ?"

"जो कहोगे वही करूँगी"—मंत्रमुग्ध-सी मधूलिका ने कहा।

* * *

स्वर्णमंच पर कोशल-नरेश अधलेटी अर्द्धनिद्रित अवस्था में आँखें मुकुलित किए हैं। एक चामग्राधारिणी युवती पीछे खड़ी अपनी कलाई बड़ी कुशलता से घुमा रही है। चामर के शुभ आंदोलन उस प्रकोष्ठ में धीरे-धीरे संचालित हो रहे हैं। ताम्बूल-वाहिनी प्रतिमा के समान दूर खड़ी है।

प्रतिहारी ने आकर कहा—'जय हो देव ! एक स्त्री कुछ प्रार्थना करने आई है।"

आँखे खोलते हुए महाराज ने कहा—"स्त्री ! प्रार्थना करने आई है ? आने दो।"

प्रतिहारी के साथ मधूलिका आयी। उसने प्रणाम किया। महराज ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा—"तुम्हें कहीं देखा है।"

"तीन बरस हुए देव ! मेरी भूमि खेती के लिए ली गई थी।"

"ओह, तो तुमने इतने दिन कष्ट में बिताए, आज उसका मूल्य माँगने आई हो, क्यों ? अच्छा-अच्छा तुम्हें मिलेगा। प्रतिहारी ?

"नहीं महाराज, मुझे मूल्य नहीं चाहिए।"

"मूर्खे ! फिर क्या चाहिए ?"

"उतनी ही भूमि दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की जंगली भूमि। वहीं मैं अपनी खेती करूँगी। मुझे एक सहायक मिल गया है। वह मनुष्यों से मेरी सहायता करेगा; भूमि को समतल भी बनाना होगा।"

महाराज ने कहा—"कृषक बालिके ! वह बड़ी ऊबड़-खाबड़ भूमि है। तिस पर वह दुर्ग के समीप एक सैनिक महत्त्व रखती है।"

"तो फिर निराश लौट जाऊँ?"

"सिंहमित्र की कन्या ! मैं क्या करूँ, तुम्हारी यह प्रार्थना......।"

"देव ! जैसी आज्ञा हो।"

"जाओ, तुम श्रमजीवियों को उसमें लगाओ। मैं अमात्य को आज्ञापत्र देने का आदेश करता हूँ।"

"जय हो देव !" कह कर प्रणाम करती हुई मधूलिका राजमन्दिर के बाहर आयी।

* * *

दुर्ग के दक्षिण, भयावने नाले के तट पर, घना जङ्गल है। आज वहाँ मनुष्यों से पद-संचार के शून्यता भंग हो रही थी। अरुण के छिपे हुए मनुष्य स्वतंत्रता से इधर-उधर घूमते थे। झाड़ियों को काट कर पथ बन रहा था। नगर दूर था, फिर उधर यों ही कोई नहीं आता था। फिर अब तो महाराज की आज्ञा से वहाँ मधूलिका का अच्छा खेत बन रहा था। किसी को इसकी चिन्ता थी !

एक घने कुञ्ज में अरुण और मधूलिका एक दूसरे को हर्षित नेत्रों से देख रहे थे। संध्या हो चली थी। उस निविड़ बन में उस नवागत मनुष्यों को देख कर पक्षीगण अपने नीड़ को लौटाते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे।

प्रसन्नता से अरुण की आँखें चमक उठीं। सूर्य की अंतिम किरणें झुरमुट से घुसकर मधूलिका के कपोलों से खेलने लगी। अरुण ने कहा—"चार पहर और विश्वास करो और प्रभात में ही इस जीर्ण-कलेवर कोशल-राष्ट्र की राजधानी श्रावस्ती में तुम्हारा अभिषेक होगा। और मगध में निर्वासित मैं, एक स्वतंत्र राष्ट्र का अधिपति बनूँगा, मधूलिके !"

"भयानक ! अरुण तुम्हारा साहस देख कर मैं चकित हो रही हूँ। केवल सौ सैनिकों से तुम......"

"रात के तीसरे पहर मेरी विजय-यात्रा होगी मधूलिके !"

"तो तुमको इस विजय पर विश्वास है ?"

"अवश्य । तुम अपनी झोपड़ी में यह रात बिताओ; प्रभात से तो राज-मंदिर ही तुम्हारा लीला-निकेतन होगा !"

मधूलिका प्रसन्न थी, किन्तु अरुण के लिए उसकी कल्याण कामना सशंक थी । वह कभी-कभी उद्विग्न सी होकर बालकों के समान प्रश्न कर बैठती । अरुण उसका समाधान कर देता ।

सहसा कोई संकेत पाकर उसने कहा—"अच्छा, अंधकार अधिक हो गया । अभी तुम्हें दूर जाना है और मुझे भी प्राणपण से इस अभियान के प्रारंभिक कार्यों को अर्धरात्रि तक पूरा कर लेना चाहिये । इसलिए रात्रि भर के लिए विदा !"

मधूलिका उठ खड़ी हुई । कटीली झाड़ियों से उलझती हुई, क्रम से बढ़ने वाले अंधकार में, वह अपनी झोपड़ी की ओर चली ।

* * *

पथ अंधकारमय था और मधूलिका का हृदय भी निविड़ तम से घिरा था । उसका मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गयी । जितनी सुख-कल्पना थी, वह जैसे अंधकार में विलीन होने लगी । वह भयभीत थी, पहला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ, यदि वह सफल न हुआ तो ! फिर सहसा सोचने लगी, वह क्यों सफल हो ? श्रावस्ती-दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाय ? मगध कौशल का चिर शत्रु ! ओह, उसकी विजय ! कोशल-नरेश ने क्या कहा था—'सिंहमित्र की कन्या ।' सिंहमित्र कोशल का रक्षक वीर, उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है ? नहीं, नहीं । 'मधूलिका ! 'मधूलिका !' जैसे उसके पिता उस अंधकार में पुकार रहे थे, वह पगली की तरह चिल्ला उठी । रास्ता भूल गयी ।

रात एक पहर बीत चली पर मधूलिका अपनी झोपड़ी तक न

पहुँची। वह उधेड़-बुन में विक्षिप्त-सी चली जा रही थी। उसकी आँखों के सामने कभी सिंहमित्र और कभी अरुण की मूर्ति अंधकार में चित्रित हो जाती है। उसे सामने आलोक दिखाई पड़ा। वह बीच पथ में खड़ी हो गयी। प्रायः एक सौ उल्काधारी अश्वारोही चले आ रहे थे और आगे-आगे एक वीर अधेड़ सैनिक था। उसके बाएँ हाथ में अश्व की वल्गा और दाहिने हाथ में नग्न खड्ग। अत्यंत धीरता से वह टुकड़ी अपने पथ पर चल रही थी। परन्तु मधूलिका बीच पथ से हिली नहीं। प्रमुख सैनिक पास आ गया, पर मधूलिका अब भी नहीं हटी। सैनिक ने अश्व रोक कर कहा—"कौन" कोई उत्तर नहीं मिला। तब तक दूसरे अश्वारोही ने कड़क कर कहा—"तू कौन है स्त्री ? कौशल का सेनापति को उत्तर शीघ्र दे।"

रमणी जैसे विकारग्रस्त स्वर में चिल्ला उठी—"बाँसे लो मुझे, बाँध लो ! मेरी हत्या करो। मैंने अपराध ही ऐसा किया है।"

सेनापति हँस पड़े और बोले—"पगली है।"

"पगली ! नहीं यदि वही होती तो इतनी विचार-वेदना क्यों होती सेनापति ! मुझे बाँध लो। राजा के पास ले चलो।"

"क्या है ! स्पष्ट कह !"

"श्रावस्ती का दुर्ग एक प्रहर में दस्युओं के हस्तगत हो जायगा। दक्षिण नाले के पास उनका आक्रमण होगा।"

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—"तू क्या कह रही है ?"

"मैं सत्य कह रही हूँ, शीघ्रता करो।

सेनापति ने अस्सी सैनिकों को नाले की ओर धीरे-धीरे बढ़ने की आज्ञा दी और स्वयं अश्वारोहियों के साथ दुर्ग की ओर बढ़े। मधूलिका एक अश्वारोही के साथ बाँध दी गयी।

* * *

श्रावस्ती का दुर्ग कोशल राष्ट्र का केन्द्र, इस रात्रि में अपने विगत वैभव का स्वप्न देख रहा था। विभिन्न राजवंशों ने उसके प्रांतों पर अधिकार जमा लिया है और अब वह कई गाँवों का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोशल के अतीत की स्वर्ण गाथाएँ लिपटी हैं। वहीं लोगों की ईर्ष्या का कारण है। दुर्ग के प्रहरी चौंक उठे, जब थोड़े से अश्वारोही बड़े वेग से आते हुये दुर्ग द्वार पर रुके। जब उल्का के आलोक में उन्होंने सेनापति को पहिचाना, तब द्वार खुला। सेनापति घोड़े के पीठ पर से उतरे। उन्होंने कहा—"अग्निसेन ! दुर्ग में कितने सैनिक होंगे ?"

"सेनापति की जय हो ! दो सौ।"

"उन्हें शीघ्र एकत्र करो परन्तु बिना किसी शब्द के १०० को ले कर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की ओर चलो। आलोक और शब्द न हो।"

सेनापति मधूलिका की ओर देखा। वह वह खोल दी गयी। उसे अपने पीछे आने का संकेत कर सेनापति राजमंदिर की ओर बढ़े। प्रतिहारी ने सेनापति को देखते ही महाराज को सावधान किया। वह अपनी-सुख निद्रा के लिए प्रस्तुत हो रहे थे। किन्तु सेनापति और साथ में मधूलिका को देखते ही चंचल हो उठे सेनापति में कहा—"जय हो देव ! इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पड़ा है।"

महाराज ने स्थिर नेत्रों से देख कर कहा—"सिंहमित्र की कन्या, फिर यहाँ क्यों ?—क्या तुम्हारा क्षेत्र नहीं बन रहा है ? कोई बाधा ? सेनापति ! मैं दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की भूमि इसे दे दी है। क्या उसी सम्बन्ध में तुम कहना चाहते हो ?"

"देव ! किसी गुप्त शत्रु ने उसी ओर से आज की रात में दुर्ग पर अधिकार कर लेने का प्रबन्ध किया। इसी स्त्री ने मुझे पथ में यह संदेशा दिया है।"

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह काँप उठी। घृणा और लज्जा से वह गड़ी जा रही थी। राजा ने पूछा—'मधूलिका' यह सत्य है ?"

राजा ने सेनापति से कहा—"सैनिकों को एकत्र करके तुम चलो, मैं अभी आता हूँ।" सेनापति के चले जाने पर राजा ने कहा — "सिंहमित्र की कन्या ! तुमने एक बार फिर कोशल का उपकार किया। यह सूचना देकर तुमने पुरस्कार का काम किया है। अच्छा, तुम यहीं ठहरो। पहले उन आततायियों का प्रबन्ध करलूँ।"

* * *

अपने साहसिक अभियान में अरुण बंदी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक में अतिरंजित हो गया। भीड़ ने जय-घोष किया। सबके मन में उल्लास था। श्रावस्ती दुर्ग आज एक दुस्यु के हाथ में जाने से बचा। आबाल वृद्ध-नारी आनन्द से उन्मत्त हो उठे।

उषा के आलोक में सभा मंडप दर्शकों से भर गया। बंदी अरुण को देखते ही जनता ने रोष से हुँकार की—"वध करो !" राजा ने सहमत हो कर कहा—"प्राणदंड।" मधूलिका बुलाई गयी। वह पगली सी आकर खड़ी हो गयी। कोशल नरेश ने पूछा—मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माँग।" वह चुप रही।

राजा ने कहा—"मेरे निज की जितनी खेती है, मैं सब तुझे देता हूँ। मधूलिका ने एक बार बन्दी अरुण की ओर देखा। उसने कहा—"मुझे कुछ न चाहिए।" अरुण हँस पड़ा। राजा ने कहा — "नहीं, मैं तुझे अवश्य दूँगा। माँग ले।"

"तो मुझे भी प्राण दंड मिले।" कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।

ताई

[विश्वम्भर शर्मा "कौशिक"]

(१)

"ताऊजी, हमें लेलगाड़ी (रेलगाड़ी) ला दोगे ?" कहता हुआ एक पञ्चवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाहें फैलाकर कहा—"हाँ बेटा, ला देंगे।" उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया, और उसका मुख चूम कर बोले—"क्या करेगा रेलगाड़ी ?"

बालक बोला—"उसमें बैठ कर बली दूल जायँगे। हम बी जायँगे चुन्नी को बी ले जायँगे। बाबूजी को नहीं ले जायँगे। हमें लेलगाड़ी नहीं ला देते। ताऊजी तुम ला दोगे, तो तुम्हें ले जायँगे।"

बाबू—"और किसे ले जायगा ?"

बालक दम-भर सोचकर बोला—"बछ, औल किछी को नहीं ले जायँगे।"

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धाङ्गिनी बैठी थीं। बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा—"और अपनी ताई को नहीं ले जायगा ?"

बालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताईजी उस समय कुछ चिढ़ी हुई सी बैठी थीं। बालक को उनके मुख का वह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला—"ताई को नहीं ले जायेंगे"

ताईजी सुपारी काटती हुई बोलीं—"अपने ताऊजी ही को ले जा ! मेरे ऊपर दया रख !"

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही। बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया। बाबू साहब ने फिर पूछा—"ताई को क्यों नहीं ले जायगा ?"

बालक—"ताई हमें प्याल (प्यार) नहीं करतीं।"

बाबू—जो प्यार करें तो ले जायगा।"

बालक को इसमें कुछ संदेह था। ताई के भाव देखकर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेंगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा—क्यों रे बोलता नहीं ? ताई प्यार करें तो रेल पर बिठा कर ले जायगा ?"

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिये केवल सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया, परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धाङ्गिनी के पास ले जाकर उनसे बोले—'लो, इसे प्यार कर लो तो यह तुम्हें भी ले जायगा।" परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति का यह चुहलबाजी अच्छी न लगी। वह तुनक कर बोली—"तुम्हीं रेल पर बैठ कर जाओ, मुझे नहीं जाना है।

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं दिया। बच्चे को उनकी गोद में बिठाने की चेष्टा करते हुये बोले—"प्यार नहीं करोगी तो फिर रेल में नहीं बिठावेगा।—क्यों रे मनोहर ?"

मनोहर ने ताऊ की बात का उत्तर नहीं दिया। उधर ताई ने मनोहर को अपनी गोद से ढकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। शरीर में तो चोट नहीं लगी; पर हृदय में चोट लगी। बालक रो पड़ा।

बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया। चुमकार-पुचकार कर चुप किया और तत्पश्चात उसे कुछ पैसा तथा रेलगाड़ी ला देने का बचन देकर छोड़ दिया! बालक मनोहर भयपूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले—"तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है ? बच्चे को ढकेल दिया ! जो उसके चोट लग जाती तो ?"

रामेश्वरी मुँह मटका कर बोली—"लग जाती तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे ? आप ही तो मेरे ऊपर डालते थे और आप ही अब ऐसी बातें करते हैं।"

बाबू साहब कुढ़ कर बोले—"इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं ?"

रामेश्वरी—"और नहीं किसे कहते हैं ? तुम्हें तो अपने आगे और किसी का दुख-सुख सुझता ही नहीं। न जाने कब किसका जी कैसा होता है। तुम्हें इन बातों की कोई परवा ही नहीं, अपनी चुहल से काम है।"

बाबू—"बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें सुन कर जो चाहे जैसा जी हो प्रसन्न हो जाता है। मगर तुम्हारा हृदय न-जाने किस धातु का बना हुआ है !"

रामेश्वरी—"तुम्हारा हो जाता होगा। और, होने को होता भी है, मगर वैसा बच्चा भी तो हो ! पराए धन से भी कहीं घर भरता है।"

बाबू साहब कुछ देर चुप रह कर बोले—"यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है, तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेंगे।"

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोली—"बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो; पर मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं। नहीं तो ये, दिन काहे को देखने पड़ते ! तुम्हारा चलन तो दुनियाँ से निराला है। आदमी सन्तान के लिए न-जाने क्या-क्या करते हैं—पूजा-पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं, पर तुम्हें इन बातों से क्या काम ? रात-दिन भाई-भतीजों में मगन रहते हो।"

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया। उन्होंने कहा—"पूजा पाठ, व्रत, सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग्य में नहीं, वह पूजा-पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा तो यह अटल विश्वास है।"

श्रीमतीजी कुछ-कुछ रुआसे स्वर में बोलीं—"इसी विश्वास ने तो सब चौपट कर रखा है। ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जायँ, तो काम कैसे चले। सब विश्वास पर ही बैठे रहें, आदमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे!"

बाबू साहब ने सोचा कि मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं। अतएव वह स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गये।

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का काम करते हैं। लेने-देन भी है। इनके एक छोटा भाई है। उनका नाम है कृष्णदास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही में है। बाबू रामजीदास की वय ३५ वर्ष के लगभग है और छोटे भाई कृष्णदास की २१ के लगभग। रामजीदास निस्सन्तान हैं। कृष्णदास के दो सन्तानें हैं। एक पुत्र—वही पुत्र, जिससे पाठक परचित हो चुके हैं—और एक कन्या है। कन्या की वय दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उनकी सन्तान पर बड़ा स्नेह रखते हैं—ऐसा स्नेह कि उसके प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तान-हीनता कभी खटकती ही नहीं। छोटे भाई की सन्तान को अपनी ही सन्तान समझते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदास से इतने हिले हैं कि उन्हें अपने पिता से भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी को अपनी सन्तान-हीनता का बड़ा दुःख है। वह दिन-रात सन्तान ही के सोच में घुला करती है। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उनकी आँखों में काँटे की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रामजीदास शय्या पर लेटे हुए शीतल और मन्द वायु का आनन्द ले रहे थे। पास ही दूसरी शय्या पर रामेश्वरी, हथेली पर सिर रखे, किसी चिन्ता में डूबी हुई थीं। दोनों बच्चे अभी बाबू साहब के पास से उठकर अपनी माँ के पास गये थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करवट लेकर कहा—"आज तुमने मनोहर को इस बुरी तरह से ढकेला था कि मुझे अब तक उसका दुःख है। कभी-कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिलकुल ही अमानुषिक हो उठता है।"

रामेश्वरी बोली—"तुम्हीं ने मुझे ऐसा बना रखा है। उस दिन उस पंडित ने कहा था कि हम दोनों के जन्म-पत्र में सन्तान का जोग है और उपाय करने से सन्तान हो भी सकती है। उसने उपाय भी बताए थे; पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनों में मगन हो! तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना न होना तो भगवान् के अधीन है।"

बाबू साहब हँस कर बोले—"तुम्हारी-जैसी सीधी स्त्री भी...क्या कहूँ, तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो, जो दुनिया भर के झूठे और धूर्त हैं! ये झूठ बोलने ही की रोटियाँ खाते हैं।

रामेश्वरी तुनक कर बोली—तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई पड़ता है। ये पोथी पुराण भी सब झूठे हैं? पंडित कुछ अपनी तरफ से तो बनाकर कहते ही नहीं हैं। शास्त्र में जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है, तो वे भी झूठे हैं। अँगरेजी क्या पढ़ी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादे के जमाने से चली आई है, उन्हें भी झूठा बताते हैं।"

बाबू साहब—"तुम बात तो समझती नहीं, अपनी ही ओटे जाती हो। मैं वह नहीं कहता कि ज्योतिष शास्त्र झूठा है। सम्भव है, वह सच्चा हो। परन्तु ज्योतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, दो-एक छोटी मोटी पुस्तकें पढ़कर ज्योतिषी बन बैठते और लोगों को ठगते फिरते हैं। ऐसी दशा में उनकी बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?"

रामेश्वरी—"हूँ, सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक बड़े सच्चे हो! अच्छा, एक बात पूछती हूँ। भला तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती?"

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी साँस लेकर बोले—भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसके हृदय में संतान का मुख देखने की इच्छा न हो? परन्तु क्या किया जाय? जब नहीं है, और न होने की कोई आशा ही है, तब उसके लिये व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ? इसके सिवा, जो बात अपनी संतान से होती वही भाई की संतान से भी हो रही है। जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना ही इन पर भी है। जो आनन्द उसकी बाल-क्रीड़ा से आता, वही इनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर नहीं समझता की चिन्ता क्यों की जाय।"

रामेश्वरी कुढ़ कर बोली—"तुम्हारी समझ को मैं क्या कहूँ। इसी से तो रात दिन जला करती हूँ। भला यह तो बताओ कि तुम्हारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा?"

बाबू साहब हँस कर बोले—"अरे तुम भी कहाँ की पोच बातें लायीं। नाम सन्तान से नहीं चलता। नाम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदास को देश का बच्चा-बच्चा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके? इसी प्रकार जितने महात्मा हो गये हैं, उन सबका

नाम क्या उनकी सन्तान की बदौलत चल रहा है ? सच पूछो, तो सन्तान से जि नी नाम चलने की आशा रहती है उतनी ही नाम डूब जाने की भी सम्भावना रहती है। परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है; जिससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशंका रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरधारीलाल कितने नामी आदमी थे ? उनके सन्तान कहाँ हैं। पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला जा रहा है, और अभी न जाने कितने दिनों तक चला जायगा।"

रामेश्वरी—"शास्त्र में लिखा है जिसके पुत्र नहीं होता, उसकी मुक्ति नहीं ! होती !"

बाबू—"मुक्ति पर मुझे विश्वास ही नहीं। मुक्ति है किस चिड़िया का नाम ? यदि मुक्ति होना भी मान लिया जाय, तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवालों की मुक्ति हो ही जाती है ? मुक्ति का भी क्या सहज उपाय है। ये जितने पुत्रवाले हैं, सभी की तो मुक्ति हो जाती होगी ?"

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोली—"अब तुमसे कौन बकवाद करे। तुम तो अपने सामने किसी की मानते ही नहीं।"

(२)

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्व-प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो, जब तक मनुष्य उसको पराई समझता है, तब तक उससे प्रेम नहीं करता। किन्तु भद्दी-से-भद्दी और बिलकुल काम में न आनेवाली वस्तु को भी यदि मनुष्य अपनी समझता है, तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी मूल्यवान क्यों न हो, कितनी ही उपयोगी क्यों न हो, कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुख का अनुभव नहीं करता;

इसलिये कि वह वस्तु, उसकी नहीं, पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो काम में न आनेवाली हो, नष्ट होने पर मनुष्य को दुःख होता है, इसलिये कि वह अपनी चीज़ है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य पराई चीज़ से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशा में भी जब तक मनुष्य उस वस्तु को अपनी बना कर नहीं छोड़ता, अथवा अपने हृदय में यह विचार नहीं कर लेता कि यह वस्तु मेरी है, तब तक उसे सन्तोष नहीं होता। ममत्त्व से प्रेम उत्पन्न होता है; और प्रेम से ममत्त्व। इन दोनों का साथ चोली दामन का-सा है। ये कभी पृथक् नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उनका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उनके हृदय में वे गुण विद्यमान तथा अंतर्निहित थे, जो एक माता के हृदय में होते हैं परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उनका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है, पर उसको सींच कर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के ऊपर लाने वाला कोई नहीं। इसीलिए उनका हृदय उन बच्चों की ओर खिंचता तो था, परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं, दूसरे के हैं, तब उनके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होता थी। विशेषकर उस समय उनके द्वेष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी, जब वह यह देखती थीं कि उनके पति-देव उन बच्चों पर प्राण देते हैं, जो उनके (रामेश्वरी के) नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठी हवा खा रही थी। पास उनकी देवरानी भी बैठी थीं! दोनों बच्चे छत पर दौड़-दौड़कर खेल रहे थे। रामेश्वरी उनके खेल को देख रही थीं। इस समय रामेश्वरी को उन बच्चों का खेलना-कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उनके बाल, कमल की तरह खिले

हुये; उनके नन्हें-नन्हें मुख, उनकी प्यारी-प्यारी तोतली बातें उनका चिल्लाना, भागना, लोट जाना इत्यादि क्रीड़ाएँ उनके हृदय को शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौड़ा। वह खिल-खिलाती हुई दौड़कर रामेश्वरी की गोद में जा गिरी। उनके पीछे-पीछे मनोहर भी दौड़ता हुआ आया और वह भी उन्हीं की गोद में जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेष भूल गयी। उन्होंने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगा लिया, जिस प्रकार वह मनुष्य लगता है, जो कि बच्चों के लिए तरस रहा हो। उन्होंने बड़ी सतृष्णता से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरचित मनुष्य उन्हें देखता, तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी उन बच्चों की माता है।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उनकी गोद में खलते रहे। सहसा उसी समय किसी के आने की आहट पाकर बच्चों की माता यहाँ से उठ कर चली गयी।

"मनोहर, ले लेलगाड़ी।"—कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आये। उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी की गोद से तड़प कर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया फिर बैठ कर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी की नींद सी टूटी। पति को बच्चों में मगन होते देखकर उनकी भौंहें तन गयीं। बच्चों के प्रति हृदय में फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जाग उठा।

बच्चों को रेलगाड़ो देकर बाबू साहब रामेश्वरी के पास आए, और मुसकिरा कर बोले—"आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर रही थीं। इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में भी उनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।"

रामेश्वरी को पति की यह बात बहुत बुरी लगी। उन्हें अपनी

कमजोरी पर बड़ी दुःख हुआ। केवल दुःख ही नहीं, अपने ऊपर क्रोध भी आया। वह दुःख और क्रोध पति के उक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उनकी कमजोरी पति पर प्रकट हो गयी, वह बात उनके लिए असह्य हो उठी।

रामजी दास बोले—"इसीलिए मैं कहता हूँ कि अपनी सन्तान के लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो, तो तुम्हें ये ही अपनी सन्तान प्रतीत होने लगेंगे। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।"

यह बात बाबू साहब ने नितान्त शुद्ध हृदय से कही थी; परन्तु रामेश्वरी को इसमें व्यंग की तीक्ष्ण गंध मालूम हुई! उन्होंने कुढ़ कर मन में कहा—"इन्हें मौत भी नहीं आती मर जायँ, पाप कटे! आठों पहर आँखों के सामने रहने से प्यार करने को जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।"

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देख कर कहा—"अब झेंपने से क्या लाभ? अपने प्रेम को छिपाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। छिपाने की आवश्यकता भी नहीं।"

रामेश्वरी जल-भुनकर बोलीं—"मुझे क्या पड़ी है जो मैं प्रेम करूँगी? तुम्हीं को मुबारक रहे! निगोड़े आप ही आ-आ के घुसते हैं। एक घर में रहने से कभी-कभी हँसना-बोलना ही पड़ता है। अभी परसों जरा यों ही ढकेल दिया, उस पर तुमने सैकड़ों बातें सुनाईं। संकट में प्राण है, न यों चैन न वो चैन।"

बाबू साहब को पत्नी के वाक्य सुन कर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—"न जाने कैसे हृदय की स्त्री है। अभी अच्छी खासी बैठी बच्चों को प्यार कर रही थी। मेरे आते ही गिरगिट की तरह रंग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाहे जो करे, पर मेरे कहने से बल्लियों उछलती है। न जाने मेरी बातों में कौन-सा विष घुला

रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है तो न कहा करूँगा। पर इतना याद रखो कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े-सिगोड़े इत्यादि अपशब्द निकाले, तो अच्छा न होगा। तुमसे मुझे ये बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं।"

रामेश्वरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वह आँखों द्वारा निकालने लगीं।

जैसे-ही-जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह दोनों बच्चों पर बढ़ता जाता था, वैसे-ही-वैसे रामेश्वरी के द्वेष और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्रायः बच्चों के पीछे पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाती थी, और रामेश्वरी को पति के कटु वचन सुनने पड़ते थे। जब रामेश्वरी ने यह देखा कि बच्चों के कारण ही वह पति की नजर से गिरती जा रही है, तब उनके हृदय में बड़ा तूफान उठा। उन्होंने सोचा—पराए बच्चों के पीछे यह मुझसे प्रेम कम करते जाते हैं, मुझे हर समय बुरा-भला कहा करते हैं। इनके लिये ये बच्चे ही सब कुछ हैं, मैं कुछ भी नहीं! दुनिया मरती जाती है, पर इन दोनों को मौत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गये। न ये होते, न मुझे ये दिन दिखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे उस दिन घी के दिए जलाऊँगी। इन्होंने मेरा घर सत्यानाश कर रखा है।

३

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुये। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत पर अकेली बैठी हुई थीं। उनके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं वह अपनी निज की संतान का अभाव, पति का भाई की संतान के प्रति अनुराग इत्यादि। कुछ देर बाद जब उनके विचार स्वयं उन्हीं को कष्टदायक प्रतीत होने लगे, तब वह अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने लिए उठ कर टहलने लगीं।

वह टहल ही रही थीं कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहर को देख कर उनकी भृकुटी चढ़ गयी, और वह छत की चहारदीवारी पर हाथ रख खड़ी हो गयी।

संध्या का समय था। आकाश में रंग-बिरंगी पतंगे उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतंगों को देखता और सोचता रहा कि कोई पतंग कट कर उसकी छत पर गिरे, तो क्या ही आनन्द आवे। देर तक गिरने की आशा करने के बाद वह दौड़ कर रामेश्वरी के पास आया, और उनकी टाँगों में लिपट कर बोला—"ताई, हमें पतंग मँगा दो।" रामेश्वरी ने झिड़क कर कहा—"चल हट, अपने ताऊ से माँग जाकर।"

मनोहर कुछ अप्रतिभ होकर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ में आकर अत्यन्त करुण-स्वर में कहा—"ताई पतंग मँगा दो; हम भी उड़ायेंगे।"

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं। फिर उन्होंने एक लम्बी साँस लेकर मन-ही-मन कहा—यदि यह मेरा पुत्र होता तो, आज मुझसे बढ़कर भाग्यवान स्त्री-संसार में दूसरी न होती। निगोड़-मारा कितना सुन्दर है, और कैसी प्यारी-प्यारी बातें करता है। यही जी चाहता है कि उठा कर छाती से लगा लें।

यह सोच कर वह उसके सिर पर हाथ फेरने वाली ही थीं कि इतने में मनोहर उन्हें मौन देख कर बोला—"तुम हमें पतंग नहीं मँगवा दोगी, तो ताऊजी से कह कर तुम्हें पिटवावेंगे।"

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी बड़ी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुख क्रोध के मारे लाल हो गया। वह उसे झिड़क कर बोलीं—"जा, कह दे अपने ताऊजी से। देखें वह मेरा क्या कर लेंगे।"

मनोहर भयभीत होकर उनके पास से हट आया, और फिर सतृष्ण नेत्रों से आकाश में उड़ती हुई पतंगों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा—यह सब ताऊजी के दुलार का फल है कि बालिश्त-भर का लड़का मुझे धमकाता है। ईश्वर करे इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाश से एक पतंग कट कर उसी छत की ओर आयी और रामेश्वरी के ऊपर से होती हुई छज्जे की ओर गयी। छत के चारों ओर चहारदिवारी थी। जहाँ रामेश्वरी खड़ी हुई थीं, केवल वहीं पर एक द्वार था, जिससे छज्जे पर आ-जा सकते थे। रामेश्वरी उस द्वार से सटी हुई खड़ी थी। मनोहर ने पतंग को छज्जे पर जाते देखा। पतंग पकड़ने के लिए वह दौड़कर छज्जे की ओर चला। रामेश्वरी खड़ी देखती रही। मनोहर उनके पास से होकर छज्जे पर चला गया, और उनसे दो फ़ीट की दूरी पर खड़ा हो कर पतंग को देखने लगा। पतंग छज्जे पर से होती हुई नीचे, घर आँगन में, जा गिरी। एक पैर छज्जे की मुंडेर पर रख कर मनोहर ने नीचे आँगन में झाँका और पतंग को आँगन में गिरते देख वह प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिए शीघ्रता से घूमा; परन्तु घूमते समय मुँडेर पर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ओर चला। नीचे जाते-जाते उसके दोनों हाथों में मुँडेर आ गयी। वह उसे पकड़ कर लटक गया, और रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया "ताई!" रामेश्वरी ने धड़कते हुए हृदय से इस घटना को देखा। उसके मन में आया कि अच्छा है, मरने दो, सदा का पाप कट जायगा। यही सोच कर वह एक क्षण के लिए रुकी। इधर मनोहर के हाथ मुँडेर पर से फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय तथा करुण नेत्रों से रामेश्वरी की ओर देख कर चिल्लाया—"अरी ताई!" रामेश्वरी की आँखें मनोहर की आँखों से जा मिलीं। मनोहर की वह करुण दृष्टि देख कर रामेश्वरी का कलेजा

मुँह को आ गया। उन्होंने व्याकुल हो कर मनोहर को पकड़ने के लिये अपना हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुँचा ही था कि मनोहर के हाथ से मुँडेर छूट गयी। वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी चीख मार कर छज्जे पर से गिर पड़ी।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में बेहोश पड़ी रही। कभी-कभी वह जोर से चिल्ला उठती, और कहती—"देखो-देखो वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ दौड़ो—मेरे मनोहर को बचा लो।" कभी वह कहतीं—"बेटा मनोहर, मैंने तुझे नहीं बचाया। हाँ, हाँ, मैं चाहती, तो बचा सकती थी—मैंने देर कर दी।" इसी प्रकार के प्रलाप वह किया करती।

मनोहर की टाँग उखड़ गई थी टाँग बिठा दी गयी। वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा—"मनोहर कैसा है?"

रामजीदास ने उत्तर दिया—"अच्छा है।"

रामेश्वरी—"उसे पास लाओ।"

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे बड़े प्यार से हृदय से लगाया। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी, हिचकियों से गला रूँध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गयीं। अब वह मनोहर की बहन चुन्नी से द्वेष और घृणा नहीं करती। और मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया। उनके बिना उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

आकाश दीप

[जयशंकर प्रसाद]

"बन्दी !"

"क्या है ? सोने दो ।"

"मुक्त होना चाहते हो ?"

"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो ।"

"फिर अवसर न मिलेगा ।"

"बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता ।"

"आँधी की संभावना है । यही अवसर है । आज मेरे बन्धन शिथिल हैं ।"

"तो क्या तुम भी बन्दी हो ?

"हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं ।"

"शस्त्र मिलेगा ?"

"मिल जायगा । पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?"

"हाँ ।"

समुद्र में हिलोरें उठने लगीं । दोनों बन्दी आपस में टकराने लगे । पहले बन्दी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया । दूसरे का बन्धन खोलने का प्रयत्न करने लगा । लहरों के धक्के एक दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे । मुक्ति की आशा—स्नेह का असम्भावित आलिंगन । दोनों ही अन्धकार में मुक्त हो गये । दूसरे बन्दी ने हर्षातिरेक से, उसको गले से लगा लिया । सहसा उस बन्दी ने कहा—
"यह क्या ? तुम स्त्री हो ?"

क्या स्त्री होना कोई पाप है ?" अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।

"शस्त्र कहाँ है ? तुम्हारा नाम ?

"चम्पा"

तारक-खचित नील अम्बर और नील समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अंधकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आंदोलन था। नौका लहरों में विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी ! एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई साव-धानी से उसका कृपाण निकाल कर फिर लुढ़कते हुए, बन्दी के समीप पहुँच गयी। सहसा पोत से पथ-प्रदर्शक ने चिल्लाकर कहा—"आँधी।"

आपत्ति-सूचक तूर्य बजने लगा। सब सावधान होने लगे। बंदी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसी ने रस्सी पकड़ी, कोई पाल खोल रहा था। पर युवक बन्दी लुढ़क कर उस रज्जु के पास पहुँचा जो पोत से संलग्न थी। तारे ढँक गये। तरंगे उद्वेलित हुईं। समुद्र गरजने लगा। भीषण आँधी, पिशाचनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कंदुक-क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।

एक झटके के साथ ही नाव स्वतंत्र थी उस संकट में भी दोनों बन्दी खिलखिला कर हँस पड़े। आँधी के हाहाकार में उसे कोई न सुन सका !

(२)

अनन्त जलनिधि में ऊषा का मधुर आलोक फूट उठा। सुनहली किरणों और लहरों की कोमल सृष्टि मुस्काने लगीं। सागर शान्त था। नाविकों ने देखा, पोत का पता नहीं। बंदी मुक्त हैं।

नायक ने कहा—"बुद्धगुप्त ! तुमको मुक्त किसने किया !"

कृपाण दिखा कर बुद्धगुप्त ने कहा—"इसने।"

"नायक ने कहा—तो तुम्हें फिर बंदी बनाऊँगा।"

"किसके लिए? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जल में होगा—नायक! अब इस नौका का स्वामी मैं हूँ।"

"तुम? जलदस्यु बुद्धगुप्त? कदापि नहीं।" चौंक कर नायक ने कहा और अपना कृपाण टटोलने लगा। चम्पा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था। वह क्रोध से उछल पड़ा।

"तो तुम द्वन्द्वयुद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ; जो विजयी होगा, वही स्वामी होगा।"—इतना कह बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण देने का संकेत किया। चम्पा ने कृपाण नायक के हाथ में दे दिया।

भीषण घात-प्रतिघात आरंभ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गतिवाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दाँतों से पकड़ कर अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिये। चम्पा भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गये, परन्तु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाणवाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुँकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कातर आँखें प्राण-भिक्षा माँगने लगीं।

"बुद्धगुप्त ने कहा—"बोलो, अब स्वीकार है कि नहीं??"

"मैं अनुचर हूँ, वरुणदेव की शपथ। मैं विश्वासघात न करूँगा।'

बुद्धगुप्त ने छोड़ दिया।

चम्पा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना-विहीन कर दिया। बुद्धगुप्त के सुगठित शरीर पर रक्त-बिन्दु विजय तिलक कर रहे थे।

विश्राम लेकर बुद्धगुप्त ने पूछा—"हम लोग कहाँ होंगे?"

"बालीद्वीप से बहुत दूर, संभवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का कम आना-जाना होता है। सिंहल के वणिकों

का वहाँ प्रधान्य है।"

"कितने दिनों में हम लोग वहाँ पहुँचेंगे ?"

"अनुकूल पवन मिलने पर दो दिन में। तब तक के लिए खाद्य का अभाव न होगा।"

सहसा नायक ने नाविकों को डाँड़ लगाने की आज्ञा दी, और स्वयं पतवार पकड़ कर बैठ गया। बुद्धगुप्त के पूछने पर उसने कहा — "यहाँ एक जलमग्न शैलखंड है। सावधान न रहने से नाव के टकराने का भय है।"

(३)

"तुम्हें इन लोगों ने बन्दी क्यों बनाया ?"

"वणिक मणिभद्र की पाप-वासना ने।"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"जाह्नवी के तट पर, चम्पा-नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावासन हो जाने पर मैं पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मार कर जल समाधि ली। एक मास हुआ मैं इस नील नभ के नीचे, नील जलनीधि के ऊपर, एक भयानक अनंतता में निस्सहाय हूँ। अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाईं। उसी दिन से बंदी बना दी गयी।"—

चम्पा रोष से जल रही थी।

"मैं भी ताम्रलिप्त का एक क्षत्रिय हूँ चम्पा ! परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बन कर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी ?"

"मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगा। वह जहाँ ले जाय।"—चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थीं। किसी

आकांक्षा के लाल डोर न थे। धवल अपांग में बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या-व्यवसायी दस्यु भी उसे देख कर काँप गया। उसके मन में एक सम्भ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समुद्र वक्ष पर विलम्बमयी राग-रञ्जित सन्ध्या थिरकने लगी। चम्पा के असंयत कुन्तल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक वरुण-बालिका! वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नयी वस्तु का पता चला। वह थी—कोमलता!

उसी समय नायक ने कहा—"हम लोग दीप के पास पहुँच गये!"

बेला से नाव टकराई। चम्पा निर्भीकता से कूद पड़ी। माँझी भी उतरे। बुद्धगुप्त ने कहा—"जब इसका कोई नाम नहीं है तो हम लोग इसे चम्पा द्वीप कहेंगे।"

चम्पा हँस पड़ी।

(४)

पाँच बरस बाद—

शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में झलमला रहे थे। चन्द्र के उज्ज्वल विजय पर अन्तरिक्ष में शरद लक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया।

चम्पा के एक उच्च सौध पर बैठी हुई तरुणी चम्पा दीपक जला रही थी। बड़े यत्न से अभ्रक की मंजूषा में दीप धर कर उसने अपनी सुकुमार उँगलियों से डोरी खींची। वह दीपाधार ऊपर चढ़ने लगा। भोली-भोली आँखें उसे ऊपर चढ़ते बड़े हर्ष से देख रही थीं। डोरी धीरे-धीरे खींची गयी। चम्पा के कामना थी कि उसका आकाश-दीप नक्षत्रों से हिलमिल जाय; किन्तु वैसा होना असम्भव था। उसने आशा भरी आँखें फिरा लीं।

सामने-जल राशि का रजत शृङ्गार था। वरुण बालिकाओं के लिये लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैलमालाएँ बना रहीं थीं। और वे मायाविनी छलनाएँ अपनी हँसी का कलनाद छोड़ कर छिप जाती थीं। दूर-दूर से धीवरों की वंशी की झनकार उनके संगीत-सा मुखरित होता था। चम्पा ने देखा कि तरल संकुल जल राशि में उसके कंडील का प्रतिबिम्ब अस्त-व्यस्त था। वह अपनी पूर्णता के लिए सैकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई। किसी को पास न देख कर पुकारा—"जया!"

एक श्यामा युवती सामने आ कर खड़ी हुई। जंगली थी। नील नभोमंडल से मुख में शुभ्र नक्षत्रों की पंक्ति के समान उसके दाँत हँसते ही रहते। वह चम्पा को रानी कहती, बुद्धगुप्त की आज्ञा थी।

"महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो!" चम्पा ने कहा। जया चली गयी!

दूरागत पवन चम्पा के अंचल में विश्राम लेना चाहता था। उसके हृदय में गुदगुदी हो रही थी। आज न जाने क्यों वह बेसुध था। एक दीर्घाकार दृढ़ पुरुष ने उसकी पीठ पर हाथ रख कर उसे चमत्कृत कर दिया। उसने फिर कहा—"बुद्धगुप्त!"

"बावली हो क्या। यहाँ बैठी हुई अभी तक दीप जल रही हो, तुम्हें यह काम करना है?"

"क्षीर निधिशायी। अनन्त की प्रसन्नता के लिये क्या दासियों से आकाश-दीप जलाऊँ?"

हँसी आती है। तुम किसको दीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो! उसको, तुमने भगवान मान लिया है?"

"हाँ, वह भी कभी भटकते हैं, भूलते हैं; नहीं तो बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते?"

"तो बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चम्पा रानी?"

"मुझे इस बन्दी-गृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल तुम्हारे अधिकार में है महानाविक! परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लाद कर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे। इस जल में अगणित बार हम लोग की तरी आलोकमय प्रभात में—तारकाओं की मधुर ज्योति में—थिरकती थी! बुद्धगुप्त! उस विजन अनन्त में जब माँझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे। हम तुम परिश्रम से थक कर पालों में शरीर लपेट कर एक दूसरे का मुँह क्यों देखते थे, वह नक्षत्रों की मधुर छाया—"

"तो चम्पा! अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।"

"नहीं नहीं, तुमने दस्युवृत्ति तो छोड़ दी परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान् के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाश-दीप पर व्यंग कर रहे हो! नाविक! उस प्रचंड आँधी प्रकाश की एक-एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे। मुझे स्मरण है, जब मैं छोटी थी मेरे पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे—मेरी माता, मिट्टी का दपीक बाँस की पिटारी में जलाकर भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती थी। इस समय वह प्रार्थना करती— "भगवान्! मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अन्धकार में ठीक पथ पर ले चलना।" और जब मेरे पिता बरसों पर लौटते तो कहते—"साध्वी! तेरी प्रार्थना से भगवान ने भयानक संकटों में मेरी रक्षा की है" वह गद्‌गद् हो जाती। मेरी मा। आह नाविक! यह उसकी स्मृति है। मेरे पिता, वीर पिता के मृत्यु के निष्ठुर कारण जलदस्यु! हट जाओ!" सहसा चम्पा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। ठठाकर हँस पड़ा।

"यह क्या चम्पा ! तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो ।" कहता हुआ चला गया । चम्पा मुट्ठी बाँधे उन्मादिनी- सी घूमती रही ।

(५)

निर्जन समुद्र के उपकूल में बेला से टकरा कर लहरें बिखर जाती हैं । पश्चिम का पथिक थक गया था । उसका मुख पीला पड़ गया । अपनी शान्त गम्भीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था । वह जैसे प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था ।

चम्पा और जया धीरे-धीरे उस तट पर आकर खड़ी हो गयी । तरंग से उठते पवन ने उसके वसन को अस्त-व्यस्त कर दिया । जया के संकेत से एक छोटी सी नौका आयी । दोनों के उस पर बैठते ही नाविक उतर गया । जया नाव खेने लगी । चम्पा मुग्ध-सी समुद्र के उदास वातावरण में अपने को मिश्रित कर देना चाहती थी ।

"इतना जल ! इतनी शीतलता ! हृदय की प्यास न बूझी । पी सकूँगी ? नहीं । तो जैसे वेला से चोट खाकर सिन्धु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ ? या जलते हुये स्वर्ण-गोलक सदृश अनन्त में डूब कर बुझ जाऊँ ?" चम्पा के देखते-देखते पीड़ा और ज्वलन से आरक्त बिम्ब धीरे-धीरे सिन्धु में, चौथाई—आधा फिर सम्पूर्ण विलीन हो गया । दीर्घ-निःश्वास लेकर चम्पा ने मुँह फिरा लिया । देखा तो महानाविक का बजरा उसके पास है । बुद्धगुप्त ने झुक कर हाथ बढ़ाया । चम्पा उसके सहारे बजरे पर चढ़ गयी । दोनों पास-पास बैठ गये ।

"इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं । पास ही वह जलमग्न शैलखंड है । कहीं नाव टकरा जाती या ऊपर चढ़ जाती चम्पा, तो ?"

"अच्छा होता बुद्धगुप्त ! जल में बन्दी होना कठोर प्रचीरों से तो अच्छा है !"

"आह चम्पा, तुम कितनी निर्दयी हो ! बुद्धगुप्त को आज्ञा देकर देखो तो; वह क्या नहीं कर सकता। जो तुम्हारे लिए नए दीप की सृष्टि कर सकता है, नयी प्रजा खोज सकता है, नए राज्य बना सकता है, उसकी परीक्षा लेकर देखो तो...। कहो चम्पा ! वह कृपाण से अपना हृदय-पिण्ड निकाल अपने हाथों अतल जल में विसर्जन कर दे !" महानाविक—जिसके नाम से बाली, जावा और चम्पा का आकाश गूँजता था पवन थर्राता था—घुटनों के बल चम्पा के सामने छलछलाई आँखों से बैठा था।

सामने शैलमाला की चोटी पर, हरियाली में, विस्तृत जल-प्रदेश में नील पिंगल संध्या, प्रकृति की एक सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्नलोक का सृजन करने लगी। उस मोहिनी के रहस्य-पूर्ण नील जाल का कुहक स्फुट हो उठा। जैसे मदिरा से सारा अंतरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों से भर उठी। उस सौरभ से पागल चम्पा ने बुद्धगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिए। वहाँ एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिन्धु का। किन्तु उस परिरंभ में सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने अपनी कंचुकी से एक कृपाण निकाल लिया।

"बुद्धगुप्त ! आज मैं अपना प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबा देती हूँ। हृदय ने छल किया, बार-बार धोखा दिया !"—चमक कर वह कृपाण समुद्र का हृदय बेधता हुआ विलीन हो गया।

"तो आज मैं विश्वास करूँ ? मैं क्षमाकर दिया गया ?"—आश्चर्य कम्पित कंठ से महानाविक ने पूछा।

"विश्वास ? कदापि नहीं बुद्धगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ। मैं

तुमसे घृणा करती हूँ फिर तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु ! तुम्हें प्यार करती हूँ।"—चम्पा रो पड़ी।

वह स्वप्नों की रंगीन संध्या, तम से अपनी आँखें बन्द करने लगी थी। दीर्घ निश्वास लेकर महानाविक ने कहा—"इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति में एक प्रकाश-गृह बनाऊँगा चम्पा ! यहीं उस पहाड़ी पर। सम्भव है कि मेरे जीवन की धुँधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाय !"

(६)

चम्पा के दूसरे भाग में एक मनोरम शैलमाला थी। बहुत दूर तक सिंधु-जल में निमग्न थी। सागर का चंचल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाये था। आज उसी शैलमाला पर चम्पा के आदि निवासियों का समारोह था। उन सबों ने चम्पा को वनदेवी-सा सजाया था। ताम्रलिप्ति के बहुत से सैनिक और नाविकों की श्रेणी में वनकुसुम विभूषिता चम्पा शिविकारूढ़ हो कर जा रही थी।

शैल के एक ऊँचे शिखर पर चम्पा नाविकों को सावधान करने के लिए सुदृढ़ दीप स्तंभ बनवाया गया था। आज उसी का महोत्सव है। बुद्धगुप्त स्तंभ के द्वार पर खड़ा था। शिविका से सहायता दे कर चम्पा को उसने उतारा। दोनों ने भीतर पदार्पण किया था कि बाँसुरी और ढोल बजने लगे। पंक्तियों में कुसुम-भूषण से सजीवन-बालाएँ फूल उछालती हुई नाचने लगीं।

दीप-स्तंभ की ऊपरी खिड़की से यह देखती हुई चम्पा ने जया से पूछा—"यह क्या है जया ?—इतनी बालिकाएँ कहाँ से बटोर लायी !"

"आज रानी का व्याह है न ?"—कह कर जया ने हँस दिया।

बुद्धगुप्त विस्तृत जलनिधि की ओर देख रहा था। उसे झकझोर

कर चम्पा ने पूछा—"क्या यह सच है ?"

"यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यह सच भी हो सकता है चम्पा ! कितने वर्षों से मैं ज्वालामुखी को अपनी छाती से दबाए हूँ ।"

"चुप रहो महानाविक ! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जानकर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा ।"

"मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ चम्पा ! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे ।"

"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती ? बुद्धगुप्त वह दिन कितना सुन्दर होता; वह क्षण कितना स्पृहणीय ! आह ! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते !"

जया नीचे चली गई थी ! स्तंभ के संकीर्ण प्रकोष्ठ में बुद्धगुप्त और चम्पा एकांत में एक दूसरे के सामने बैठे थे ।

बुद्धगुप्त ने चम्पा के पैर पकड़ लिये । उच्छ्वसित शब्दों में वह कहने लगा—"चम्पा ! हम लोग जन्मभूमि भारतवर्ष से इतनी दूर इस निरीह प्राणियों में इंद्र और शची के समान पूजित हैं । पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किए है । स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश ! वह महिमा की प्रतिमा । मुझे वह स्मृति-नित्य आकर्षित करती है; परन्तु मैं क्यों नहीं जाता ? जानती हो, इतना महत्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूँ । मेरा पत्थर-सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चंद्रकांत-मणि की तरह द्रवित हुआ ।

"चम्पा ! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता । पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है । तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गइ हो । आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़ तम में मुस्कराने

लगी। पशु बल और धन के उपासक के मन में किसी शांत और कांत कामना की फीकी हँसी खिलखिलाने लगी, पर मैं न हँस सका।

"चलोगी चम्पा! पोतवाहिनी पर असंख्य धन-राशि लाद कर राजरानी-सी जन्मभूमि के अंक में? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम लोग भारत के लिए प्रस्थान करें। महानाविक बुद्धगुप्त की आज्ञा सिंधु की लहरें मानती हैं। वे स्वयं उस पोत-पुंज को दक्षिण पवन के समान भारत में पहुँचा देंगी। आह चम्पा! चलो।"

चम्पा ने उसके हाथ पकड़ लिए। किसी आकस्मिक झटके ने एक पल भर के लिए दोनों अधरों को मिला दिया। सहसा चैतन्य हो कर चम्पा ने कहा—"बुद्धगुप्त! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल हैं, सब पवन शीतल हैं। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ विभवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे छोड़ दो। इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिये।"

"तब मैं अवश्य चला जाऊँगा, चम्पा! यहाँ रह कर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँगा—इसमें सन्देह है। आह! किन लहरों में मेरा विनाश हो जाय!"—महानाविका के उच्छ्वास में विकलता थी। फिर उसने पूछा—"तुम अकेली यहाँ क्या करोगी?"

"पहले विचार था कि कभी-कभी इस दीप स्तम्भ पर से आलोक जला कर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी। किन्तु देखती हूँ, मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाश-दीप।"

(७)

एक दिन स्वर्ण-रहस्य के प्रभात में चम्पा ने अपने दीप-स्तम्भ पर से देखा—सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी चम्पा का उपकूल छोड़ कर

पश्चिम-उत्तर की ओर महा जल-व्याल के समान संतरण कर रही है। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे!

यह कितनी शताब्दियों पहले की कथा है। चम्पा आजीवन उस दीप-स्तम्भ में आलोक जलाती ही रही। किन्तु उसके बाद भी बहुत दिन, द्वीप निवासी, उस माया-ममता और स्नेह-सेवा की देवी की समाधि सदृश उसकी पूजा करते थे।

एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चंचलता से गिरा दिया।

प्रसन्नता की प्राप्ति

[रायकृष्णदास]

भद्रक महाराज के सामने नत हुआ। राज-सभा एकत्र थी। महाराज सिंहासन पर आसीन थे। सुढार कलाइयों वाली रूपसी तरुणियाँ इठलाती हुईं, उन पर चँवर डुला रही थीं। बन्दी-समूह कीर्तिगान में निरत था।

भद्रक राज का प्रधान रूपकार (मूर्ति निर्माता) था। अभी नवीन वयस का था, किन्तु था प्रकृति कलावन्त।

महाराज ने उसका प्रणाम लेते हुए कहा—

"भद्रक, तूने हमारा प्रासाद तरह-तरह की प्रतिमाओं से अलंकृत किया है। तेरी कुशलता ने पत्थर-ऐसी कठोर वस्तु के द्वारा विविध कोमल और सूक्ष्म भावों का प्रदर्शन करके भावुकों को चकित कर दिया है। किन्तु तूने अभी तक किसी रचना में प्रसन्नता की अभिव्यक्ति नहीं की। प्रसन्नता की एक मूर्ति तो बना।"

"जो आज्ञा"—कहता हुआ, भद्रक, पुनः विनम्र हुआ और स्वामी की आँख का इंगित पाकर अपने स्थान पर बैठ गया—किसी तरंग में डूबने उतराने लगा।

यथा समय सभा विसर्जित हुई। अनमना कलावन्त भी अपने घर लौटा।

क्रमशः रात आयी और आकाश में तारों का मेला लग गया। उनकी झिलमिलाहट अन्धकार में तैरने लगी। भद्रक अपनी सूनी अटारी पर बैठा था—चिन्ता में निमग्न था। उनके दोनों हाथ उसकी गोद में झूल रहे थे और सिर गड़ा हुआ था। ऊपर से जो मन्द प्रकाश

की वर्षा हो रही थी, उस ओर उसका ध्यान तक न था।

घर में, उसकी पत्नी गृह-कार्य में लगी हुई थी और उसका पंच-वर्षीय शिशु रह-रहकर उसके कामों को बिगाड़ रहा था। इसके कारण कालिका—यही भद्रक की स्त्री का नाम था—रह-रह कर खीझ उठती थी, और बीच-बीच में भद्रक को पुकराने भी लगती थी। किन्तु, इस सब की उसे कोई खबर न थी। प्रसन्नता—प्रसन्नता—प्रसन्नता—इसी में उसका मन उलझा था।

डेढ़ पहर रात बीत गयी। पर, उसे खाने की सुधा न आयी। बच्चा माँ को दिक कर-कराके बिना खाये ही सो गया। माँ भी भूखी थी किन्तु इसे इसका कोई कष्ट न था। इसे कष्ट था सन्नाटे का—जिस ऊधम के मारे काम करना दूभर हो रहा था—उसके बंद होते ही उसका जी ऊबने लगा। संसार में उससे बढ़ कर भद्रक का स्वभाव जाननेवाला कोई अन्य न था; तो भी इस समय बेसब्री के कारण वह उसे छेड़े बिना न रह सकी।

कलिका अटारी पहुँची और उलाहना देती हुई उससे कहने लगी—"कैसे निर्मोही से पाला पड़ा। डेढ़ पहर रात बीत गई कुछ खाने-पीने की भी सुध है? अपने शरीर को तो देखो—सूख कर काँटा हुए जा रहे हो! उस पर तो दया करो।"

सच्ची नींद में जगाया हुआ व्यक्ति जैसे बिगड़ उठता है वैसे ही भद्रक भी झल्ला उठा—"जाव-जाव, मुझे नहीं खाना है। तुम्हें भूख लगी है तो खा क्यों नहीं लेती? बस इस समय यहाँ से हट जाओ।"

कलिका इससे घबराने वाली न थी—"अच्छा मैं तो खाये लेती हूँ और तुम—"

"मेरे लिए रख दो"—भद्रक ने अटकते-अटकते कहा, कलावन्त का जी पिघल रहा था।

अब, कलिका ने सरस दृष्टि से भद्रक को देखा कि वह अपनी

सारी ध्यान धारणा भूल कर लहलहा उठा।

कलिका ने कुछ रूखी पड़ कर कहा—"लो जाती हूँ। मुझे तो भूख लगी है, खाकर सोऊँगी? बच्चा अकेला है, बेचारा भूखा ही सो गया। तुम यहीं बैठे-बैठे मनगढ़न्त करो।" और जाने लगी।

भद्रक ने लपक कर उसे पकड़ लिया और कहने लगा—"बड़ी स्वार्थी हो! अकेले-अकेले; मुझे भूखा छोड़ कर खा लोगी? लाओ; यहाँ से अच्छा भोजन का कौन स्थान होगा। देखो कैसे तारे छिटके हैं।"

"भला! तुम्हें तारे देखने की छुट्टी तो मिली!"

'हाँ मेरे भाग्य में तारे गिनना थोड़े ही लिखा है!"—भद्रक ने आवेश से कहा।

"वह तो मेरे भाग्य हैं न!" कलिका ने उत्तर देते हुए कहा।

"हाँ, पत्थर की संग करते-करते, मेरा हृदय भी तो पत्थर का हो गया है!" व्यंग से भद्रक बोला।

"हो ही गया है, क्या तुम्हें संदेह है?"—विश्वास दिलाते हुए पत्नी ने कहा।

"तभी न। तभी न, तुम कहती हो कि तुम्हें तारा गिन कर रात बितानी पड़ती है।"

"क्या झूठ कहती हूँ?"—झूठ पर जोर देते हुए; कलिका ने सस्मित पूछा।

भद्रक गाने लगा—

"जौने दिनवा न मोरा छुवले लिलोरवा।
कि तौने दिनवा ना मोरा मैले सपनावा..."

गाने में गजब का मरोर था।

"जाव तुम तो...."—तल्लीन कलिका ने कहा।

"हाँ, यह तो तुम लोगों का स्वभाव ही है कि हारो तब 'जाव-

जाव'—कहने लगे।"

"अच्छा !" कुतूहल से कलिका ने आँखें फाड़-फाड़ कर कहा—"किस-किस के स्वभाव का परिचय पाया है, नटनागर !"

"देखना, कहीं वृन्दावन से मथुरा न चल दे; सम्हाले रहना !"

"अच्छा एक कुब्जा ही बाकी है ?"—ठहाका लगा कर कलिका ने कहा। फिर कुछ गंभीर हो कर कहने लगी—

"तुम्हें तो ठिठोली सूझी है, वहाँ बचा अकेला पड़ा है !"

"क्या कुछ मैंने बुलाया था ?" भद्रक ने भी रूखापन जताया। "हाँ तुम क्यों बुलाने लगे"—सहचरी ने उलाहना दिया।

"आ कर सब बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया। ऊपर से उलाहना।"

"लो, इसी से चली भी तो जाती हूँ"—मान दिखाती हुई कलिका लौट पड़ी।

"अच्छा ! यह न कहो कि आज भूखे रहना है। ले न आओ।"

"बड़े भाग ! आज तुम्हें भूख तो लगी। पहले क्षुल्लक को लेती आऊँ तब भोजन ले आऊँ।"

क्षुल्लक इस दम्पत्ति के बच्चे का नाम है ! सुनते ही भद्रक की छाती शीतल हो उठी—

"हाँ, हाँ, वही तो मुझे चाहिए।"

गृह-लक्ष्मी चूमती-चूमती सुषुप्त बालक को ले आयी और पति की गोद में लिटा दिया। भद्रक ने उसका एक गाल चूमा, उसी समय कलिका ने उसका दूसरा गाल चूमा। बालक गाढ़ निद्रा में निमग्न था—उसकी सुख निद्रा समुद्र की तरह गम्भीर थी। कलिका भोजन लाने चली गयी। भद्रक मनमानी लोरिया गुन-गुना कर आनन्द के हिंडोल पर पेंग मारने लगा।

भोजन आया।

पति-पत्नी ने भोजन किया। उपरान्त कलिका क्षुल्लक को सुलाने चली गयी। भद्रक फिर अपने विचारों में निमग्न हो गया। अब कलिका ने बर्तन हटाए, उसे पता भी नहीं। वह अपने पति के चिन्तन की गुरुता खूब समझती थी। चुपचाप अपने काम निबटा के शयनागार में चली गयी।

भद्रक उसी छत पर टहलने लगा। उसके मन में धुंधले बादल की तरह, कोई, भावना उठने लगी। उसने मस्तक उठा कर एक बार आकाश की ओर देखा—उस दीप्तिमान नीली यवनिका के आगे सहज सस्मित भगवान अभिताप के दर्शन उसे मिले। उसे आनंद का रोमांच हो उठा—उसे प्रसन्नता की मूर्ति मिल गयी। एक क्षण के लिए वह निश्चिन्त हो गया। किन्तु प्रसन्नता का द्वन्द्व विषण्णता नहीं?—सो भगवान में कहाँ?—वहाँ तो गुरुतर उद्वेग का भी कोई प्रभाव ही नहीं। वहाँ तो आनन्द है। लौकिक प्रसन्नता का वहाँ क्या काम। भद्रक को एक धक्का-सा लगा; और वह आकाश की ओर एकटक देखता रह गया।

मध्यरात्रि हो रही थी। कृष्णपक्ष की अष्टमी के चन्द्रमा का उदयोपक्रम हो चुका था। अपने वल्लभ के आगमन से प्राची प्रसन्न हो उठी थी। बस, भद्रक की समस्या हल हो गयी—आगतपतिका; प्रसन्नता की मूर्ति आगतपतिका है। उसने निश्चिन्तता की साँस ली और साथ ही जम्हाई ने उससे सोने का तगादा आरम्भ कर दिया।

वह अपने शयनागार में आया। कलिका अभी जागती थी उसने आश्चर्य से पूछा—"अभी आ गये? अभी तो आधी रात बाकी है!"

"हाँ मेरी आगतपतिका! तुम्हारी प्रतीक्षा जो खींच लाई।" भद्रक ने प्यार से कहा।

कलिका पूछने लगी—"कहो किस विदेश से आए हो?"

"अरे, कल्पना का लोक। जानती नहीं हो—वह ब्रह्मलोक से भी ऊपर है।"

"अच्छा क्या लाये!"

भद्रक ने राजाज्ञा से ले कर सारी कथा सुना दी।

❀ ❀ ❀

प्रातःकाल कलावन्त अपनी कल्पना को अंकित करने में लिपटा।

जो कुछ उसे पत्थर में तराशना था; उसकी मिट्टी की एक छोटी सी आकृति बनाने लगा—नायक विदेश से लौटने वाला है, अब चित्रसारी में प्रविष्ट होने ही वाला है, नायिका सुसज्जित हो कर आरती के लिए प्रसन्न बदन देहली पर खड़ी है—मानों दोनों का सामना हो चुका हो।

भद्रक बराबर काम करता रहा। एक बार दबी जबान से कलिका ने उससे खाने को भी कहा, किन्तु उसने 'ना' कर दिया। तीसरा पहर आया। उसके कारखाने की छोटी खिड़की को चूम-चूम कर सूर्य की तिरछी किरणें नीची होने लगीं और यहाँ अंधकार-सा हो उठा। किन्तु उसका हाथ न रुका। वह अपने काम की बार-बार मन-ही-मन वाह-वाह करता जाता था।

जब वहाँ काफी धुँधलापन फैल गया तो उसने वह नमूना अपने सामने रख दिया—क्योंकि अब वह तैयार हो चुका था—और ऊपर से नीचे तक देखता रहा। हद का रियाज था। किन्तु—एक बार वह सिहर-सा गया। उस प्रसन्नता की मुद्रा में उसे कृत्रिमता जान पड़ने लगी—"दुत्, पगले भद्रक! क्या तुझे कभी भी आत्मविश्वास होगा? कल देखना कि राज-समाज इस पर कैसा मुग्ध होता है। बड़े कच्चे जी का है।" उसने अपना हाथ जमीन पर दे मारा और बगल में पड़ा हुआ एकतारा उठा कर छेड़ने लगा।

रूपकार कुछ देर तक गुनगुनाता रहा, किन्तु उसमें जी भी न

लगा, और वह उठ कर अपने आँगन में टहलने लगा। एक दालान में कलिका बैठी हुई अपनी कुछ बहनेलियों से बात कर रही थी। उसने पति का मुँह देखा—मुरझाया हुआ था।

"वे अकृतकार्य्य हुये क्या"—उसका हिया धड़कने लगा, आलाप में कुछ उलटा-पुलटा उत्तर दे गयी। एक सखी ने धीरे से कहा—"बस, देखते ही बौरा गयी!"—कलिका को यह उक्ति कुछ अच्छी न लगी। उसने हँस कर बात टाल दी, और अपने को सम्हाल कर बात करने लगी।

छुल्लक जाने कहाँ था।

भद्रक का जी न लगा। उसने चाहा कि कहीं घूम आवे। नगर के कुछ दूर एक टूटी गढ़ी थी, उसी खँडहर उसकी सैरगाह थी।

उसने अपनी पत्नी से कुछ कहना चाहा, त्योंही उसके कारखाने में एक धमाका हुआ—गीली मिट्टी गिरने का। वह उस ओर लपका, उसकी कृति बिगड़ चुकी थी। महात्मा छुलक ने जाने कहाँ से आकर उस पर हाथ साफ किया था। उसे गिरा-पड़ा के आप हँसते हुये नाच रहे थे।

पिता उस मुद्रा पर मुग्ध हो गया, और शिल्पी प्रसन्नता से फड़क उठा—जिस प्रसन्नता की खोज में वह इतना अटक-भटक चुका था, वही उसके छुल्लक के मुख पर हिलोरें मार रही थी।

उसने कलिका को सुरीली आवाज में पुकारते हुए गाना आरम्भ कर दिया है—

महल में नैक चलो नंदरानी
देखो अपने सुत की करनी दूध मिलावत पानी ॥ महल में०

अपराध

[विनोदशंकर व्यास]

काशी
२-११-२७

भैया केशव !

तुमने इस बार दो सप्ताह बाद मेरे पत्र का उत्तर दिया है। तुम बीमार थे, अब अच्छे हो गये, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

तुम कब तक निराश प्रेमी की भाँति अपना जीवन व्यतीत करोगे ? पहले तुम कहा करते थे कि मैं सांसारिक विलासमय प्रेम नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ पवित्र गंगाजल की तरह निर्मल और शुद्ध प्रेम! अब देखता हूँ; तुम्हारी बातें सत्य हो रही हैं, और इसीलिए शायद तुम विवाह नहीं करते। क्यों, क्या अभी तक कोई मिला नहीं ?

मैं तो भाई, प्रेम को नमस्कार करता हूँ। मैंने अपने जीवन में कभी स्वच्छ और पवित्र प्रेम देखा ही नहीं। वास्तव में यह सब कवि की कल्पना है और अभाव के समय रोने का बहाना है। इतना समझते हुये भी मैं कभी-कभी रोता हूँ, इसलिये रोने का मर्म जानता हूँ। आह रोने में कभी-कभी बड़ा मजा मिलता है—और ऐसे समय रोने में, जब आँसू पोंछने वाला भी न हो। रहने दो, ऐसी बातें न लिखूँगा, उलटा तुम हँसी उड़ाओगे।

कलुषित वासनाओं से धुँधले आकाश में चाँदनी छिटकी है। मैं प्रेम-राज्य से निर्वासित हूँ। मैंने आँख भर प्रेम देखा नहीं है, जी भरकर उसके संगीत को सुना भी नहीं; किन्तु उसके स्वर मुझे परिचित हैं। मैं उस दर्द को जानता हूँ, अतएव उन दर्दवालों के प्रति मेरी

सहानुभूति अवश्य है।

मंगला के सम्बन्ध में कुछ लिख कर मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि यह मुझे एक नवीन अनुभव हुआ है।

उस दिन अमावस्या की काली रात थी। बड़ा सन्नाटा था। मैं नौ बजे ही सो गया था। आधी रात को शोर हुआ, मैं उठ कर बैठ गया। आश्चर्य और उत्सुकता से ध्यान लगा कर सुनने लगा, गंगा जोर से कह रहा था—इसको खूब मारो।

मैं कमरे में शय्या पर से उठा और बाहर आ कर देखने लगा कि मेरे तीनों नौकरों ने किसी आदमी को पकड़ा है और उसे मार रहे हैं। उनके सामने मंगला खड़ी रो रही है।

मैंने डाटते हुये कहा—मूर्खो! तुम लोग क्या कर रहे हो, इतना शोर क्यों मचाया है? क्या बात है? कौन है!

उन सबों ने उस आदमी को पकड़ कर मेरे सामने खड़ा कर दिया। मंगला को मेरे सामने आने का साहस न हुआ, वह दूर खड़ी थी।

नौकरों में से गंगा एक साँस में कहता गया—हुजूर, इसने चोरी की है, इसे थाने में भेजना चाहिए! साला बड़ा होशियार है। यही कई बार कोठी का सामान इसी तरह ले गया है।

मैंने कहा—इसने क्या चुराया है? कैसे चुराया है!

गंगा ने सामने एक कम्बल और कुछ कपड़े दिखलाते हुये कहा—इसे ऊपर की खिड़की से मंगला ने फेंका था। मुझे इसकी आहट लग गई थी। मैं उस समय जागता रहा, इसने सलाई बाली थी। ऊपर से धम से कोई चीज नीचे गिरी मैंने सचेत हो कर द्वार खोला, यह भाग रहा था, मैंने इसे पकड़ा है।

मैंने घूमते हुये देखा, वह थर-थर काँप रहा था। हाथ जोड़ कर दया याचना करने लगा।

मैंने आश्चर्य से कहा—क्या मंगला ने फेंका था ?

सब नौकरों ने एक स्वर में कहा—हाँ सरकार उसी ने फेंका था।

अपराधी की तरह मंगला मेरे सामने आ गयी और बड़े साहस से उसने कहा—अपराध मेरा है। मैंने ऊपर से फेंका था इन्होंने इसे लिया, यह निर्दोष है।

लम्प के प्रकाश में मैंने देखा—मंगला की आँखों में बिजली चमक रही थी। वह दरिद्र पुरुष मंगला की तरफ देख रहा था; वह अत्यन्त दुर्बल था, आँखें धँसी थीं। बड़ा डरावना मालूम पड़ता था।

मैंने पूछा—मंगला ने तुझे क्यों दिया ? वह तेरी कौन है ?

वह चुप था। मैंने फिर कहा—बोल बताता क्यों नहीं ?

उसने कहा—मैं इसी के लिये जीता हूँ, यह मुझे मरने नहीं देती।

रात्रि के दो बज रहे थे। मैं कुर्सी पर बैठ कर विचार करने लगा—इन दोनों का प्रेम है, तभी मंगला ने इसके लिए अपराध किया है। ये लोग दरिद्र हैं, किन्तु इनके पास हृदय है। प्रेम करने जानते हैं। एक के लिए दूसरा अपना सर्वनाश करने के लिए प्रस्तुत है। अभाव और दरिद्रता ने ही मंगला को चोरी करने के लिए बाध्य किया है।

मैंने कहा—मंगला, यदि तू सच-सच सब हाल बता दे तो मैं तुझे छोड़ दूँ, तूने इसके लिए क्यों चोरी की ?

उसने सलज्ज करुण स्वर में कहा—हम और यह भाग कर अपने देश से चले आए हैं, यह मेरे पति हैं। बहुत दिनों तक नौकरी करते रहे; किन्तु यह नौकरी भी न कर सके, मेरे पास दिन रात बैठे रहने में ही यह अपना सब कुछ खो बैठे। इनसे नौकरी होती नहीं। इस लिए मैं ही नौकरी करती हूँ। मेरा पेट तो यहाँ भर जाता है, पर इनके लिए चोरी करनी पड़ती है।

मैंने कहा—और कुछ ?

उसने कहा—इतना ही मेरा अपराध है।

उसकी बातों का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा। मैंने कहा—मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।

वह आदमी मेरी तरफ आश्चर्य से देखते हुए मेरे पैरों पर गिर पड़ा। मैंने फिर कहा—अब तुम लोग क्या करोगे ? कहाँ जाओगे ?

मेरे नौकर आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखने लगे। उसने कहा—संसार में कहीं स्थान नहीं है, कहाँ जाऊँगा ?

मंगला को विश्वास था कि अपराध क्षमा करते हुए भी अब मैं उसे अपने यहाँ स्थान नहीं दूँगा।

मैंने कहा—तुम घबड़ाओ नहीं, मंगला को मैं निकालूँगा नहीं। तुम यदि नौकरी करना चाहो तो मेरे यहाँ रह सकते हो।

वह कुछ बोल न सका, फूट-फूट कर रोने लगा।

उस दिन से दोनों मेरे यहाँ बड़े आनन्द से रहते हैं, और सब लोगों को इससे बड़ा असन्तोष है। उनको खटका लगा रहता है; पर मैं निश्चिन्त हूँ कि अब वे चोरी नहीं करेंगे।

तुम्हारी क्या सम्मति है ? क्या मैंने भूल की ?

तुम्हारा

—प्रभात

जाह्नवी

[जैनेन्द्र कुमार]

आज तीसरा रोज है। तीसरा नहीं, चौथा रोज है। वह इतवार की छुट्टी का दिन था। सबेरे उठा और कमरे से बाहर की ओर झाँका तो देखता हूँ, मुहल्ले के एक मकान की छत पर काँओं-काँओं करते हुए कौओं से घिरी हुई एक लड़की खड़ी है। खड़ी-खड़ी बुला रही है, "कौओ आओ, कौओ आओ।" कौए बहुत काफी आ चुके हैं, पर और भी आ जाते हैं। वे छत की मुंडेर पर बैठे अधीरता से पंख हिला कर बेहद शोर मचा रहे हैं। फिर भी उन कौओं की संख्या से लड़की का मन जैसे भरा नहीं है। बुला ही रही है, "कौओ आओ, कौओ आओ।"

देखते-देखते छत की मुँड़ेर कौओं से बिल्कुल काली पड़ गयी। उनमें से कुछ अब उड़ उड़ कर लड़की की धोती से जा टकराने लगे। कौओं के खूब आ घिरने पर लड़की मानो उन आमंत्रित अतिथियों के प्रति गाने लगी—

"कागा चुन चुन खाइयो...।"

गाने के साथ उसने अपने हाथ की रोटियों में से तोड़-तोड़ कर नन्हें-नन्हें टुकड़े भी चारों ओर फेंकने शुरू किये। गाती जाती थी। "कागा चुन-चुन खाइयो...।" वह मग्न मालूम होती थी और अनायास उसकी देह थिरक कर नाच सी आती थी। कौए चुन-चुन खा रहे थे और वह गा रही थी—"कागा चुन-चुन खाइयो...।"

आगे वह क्या गाती है कौओं की काँव-काँव और उनके पंखों

की फड़फड़ाहट के मारे साफ सुनाई न दिया। कौए लपक-लपक कर मानों टूटने से पहले उसके हाथों से टुकड़ा छीने ले रहे थे। वे लड़की के चारों ओर ऐसे छा रहे थे। मानों वे प्रेम से उसको ही खाने को उद्यत हों। और लड़की कभी इधर कभी उधर झुक कर घूमती हुई ऐसे लीन भाव से गा रही थी कि जाने क्या मिल रहा हो।

रोटी समाप्त होने लगी। कौए भी यह समझ गये। जब अंतिम टुकड़ा हाथ में रह गया तो यह गाती हुई उस टुकड़े को हाथ में फहराती हुई जोर से दो-तीन चक्कर लगा उठी। फिर उसने वह टुकड़ा ऊपर आसमान की ओर फेंका—"कौओ खाओ, कौओ खाओ।" और बहुत से कौए एक ही साथ उड़ कर उसे लपकने झपटे। उस समय उन्हें देखती हुई लड़की मानो आनन्द से चीखती हुई सी आवाज़ में गा उठी—

"दो नैना मत खाइयो, मत खाइयो...।
पीउ मिलन की आस।"

रोटियाँ खत्म हो गयीं। कौए उड़ चले। लड़की एक-एक कर उनको उड़ कर जाता हुआ देखने लगी। पल-भर में छत कोरी हो गयी। अब वह आसमान के नीचे अकेली अपनी छत पर खड़ी थी। बहुत से मकानों की बहुत से छतें थीं! उन पर कोई होगा, कोई न होगा। पर लड़की दूर अपने कौओं को उड़ते जाते हुए देखती रह गयी। गाना समाप्त हो गया था। धूप अभी फूटी ही थी। आसमान गहरा नीला था। लड़की के ओंठ खुले थे, दृष्टि थिर थी। जाने, भूली-सी वह क्या देखती रह गयी।

थोड़ी देर बाद उसने मानो जग कर अपने आसपास के जगत को भी देखा। इसी की राह में क्या मेरी ओर भी देखा? देखा भी हो; पर शायद मैं उसे नहीं दीखा था। उसके देखने में सचमुच कुछ दीखता ही था; मैं कह नहीं सकता। पर कुछ ही पल के अनन्तर,

वह मानों वर्तमान के प्रति, वास्तविकता के प्रति, चेतन हो आयी। तब फिर बिना देर लगाए चट-चट उतरती हुई वह नीचे अपने घर में चली गयी।

मैं अपनी खिड़की में खड़ा-खड़ा चाहने लगा कि मैं भी देखूँ, कौए कहाँ-कहाँ उड़ रहे हैं, और वे कितनी दूर चले गए हैं। क्या वे कहीं देखते भी हैं? पर मुश्किल से मुझे दो-एक ही कौए दीखे। वे निरर्थक भाव से यहाँ बैठे थे, या वहाँ उड़ रहे थे। वे मुझे मूर्ख और घिनौने मालूम हुए! उनकी काली देह और काली चोंच मन को बुरी लगीं। मैंने सोचा कि 'नहीं, अपनी देह मैं कौओं से नहीं चुनवाऊँगा। छिः चुन-चुन कर इन्हीं के खाने के लिए क्या मेरी देह है? मेरी देह और कौए?—छीः।"

जान पड़ता है खड़े-खड़े मुझे काफी समय खिड़की पर हो गया; क्योंकि इस बार देखा कि ढेर के ढेर कपड़े कंधे पर लादे वही लड़की फिर उसी छत पर आ गई इस बार वह गाती नहीं है; वहाँ पड़ी एक खाट पर उन कपड़ों को पटक देती है और फिर उन कपड़ों में से एक-एक को चुन कर, पटक कर, वहीं छत पर सुखा देती है। छोटे-बड़े उन कपड़ों की गिनती काफ़ी रही होगी। वे उठाए जाते रहे, पटके जाते रहे, फैलाए जाते रहे, पर उनका अंत शीघ्र आता न दीखा। आखिर सब खत्म हो गए तो लड़की ने सिर पर आए हुए धोती के पल्ले को पीछे किया। उसने एक अँगड़ाई ली, फिर सिर को ज़ोर से हिला कर अनबँधे अपने बालों को छिटका लिया और धीमे-धीमे वहीं डोल कर उन बालों पर हाथ फेरने लगी। कभी बालों की लट को सामने ला कर देखती फिर उसी को लापरवाही से पीछे फेंक देती। उसके बाल गहरे काले थे और लम्बे थे। मालूम नहीं उसे अपने इस वैभव पर सुख था या दुख था। कुछ देर वह उँगलियाँ फेर-फेर अपने बालों को अलग-अलग छिटकाती रही। फिर चलते-

चलते एकाएक उन सब बालों को इकट्ठा समेट कर झटपट जूड़ा-सा बाँध, पल्ला सिर पर खींच, वह नीचे उतर गयी।

इसके बाद मैं खिड़की पर नहीं ठहरा। घर में छोटी साली आई हुई है। इसी शहर के दूसरे भाग में रहती है और ब्याह न करके कालिज में पढ़ती है। मैंने कहा—सुनो, यहाँ आओ।

उसने हँस कर पूछा—यहाँ कहाँ?

खिड़की के पास आ कर मैंने पूछा—क्यों जी जाह्नवी का मकान जानती हो?

"जाह्नवी! क्यों, वह कहाँ है?"

"मैं क्या जानता हूँ कहाँ है। पर देखो, वह घर तो उसका नहीं है?"

उसने कहा—मैंने घर नहीं देखा। उधर उसने कालिज भी छोड़ दिया है!

"चलो अच्छा है।" मैंने कहा और उसे जैसे-तैसे टाला। क्योंकि वह पूछने-ताछने लगी थी कि क्या काम है, जाह्नवी को मैं क्या और कैसे और क्यों जानता हूँ। सच यह था कि मैं रत्ती भर इसे नहीं जानता था। एक बार अपने ही घर में इसी साली की कृपा और आग्रह पर एक निगाह एक को देखा था। बताया गया था कि वह जाह्नवी है, और मैंने अनायास स्वीकार कर लिया था कि अच्छा, वह जाह्नवी होगी। उसके बाद की सचाई यह है कि मुझे कुछ नहीं मालूम कि उस जाह्नवी का क्या बन गया और क्या नहीं बना। पर किसी सचाई को बहनोई के मुँह से सुन कर स्वीकार कर ले तो साली क्या? तिस पर सचाई ऐसी कि नीरस। पर ज्यों-ज्यों मैंने उसे टाला।

बात-बात में मैंने कहना भी चाहा कि ऐसी हो तुम जाह्नवी को जानती हो, ऐसी ही तुम साथ पढ़ती थी कि ज़रा बात पर कह दो 'मालूम नहीं।' लेकिन मैंने कुछ कहा नहीं।

इसके बाद सोमवार हो गया, मंगलवार हो गया और आज बुध भी हो कर चुका जा रहा है। चौथा रोज है। हर रोज सबेरे खिड़की पर दीखता है कि कौए काँव-काँव, छीन-झपट कर रहे हैं और वह लड़की उन्हें रोटी के टुकड़ों को मिस कह रही है, "कागा चुन चुन खाइयो...।"

मुझको नहीं मालूम कि कौए जो कुछ उसका खाएँगे उसे कुछ भी उसका सोच है। कौआ को बुला रही है—"कौओ कौओ, आओ आओ", साग्रह कह रही है—"कौओ खाओ, कौओ खाओ!" वह खुश है कि कौए आ गए हैं और वे खा रहे हैं। 'पर एक बात है कि ओ कौओ, जो तन चुन-चुन कर खा लिया जायगा उसको खा लेने में खुशी से मेरी अनुमति है। वह खा-खू कर तुम सब निबटा देना। लेकिन ऐ मेरे भाई कौओ, इन दो नैनों को छोड़ देना। इन्हें कहीं मत खा लेना। क्या तुम नहीं जानते कि उन नैनों में एक आस बसी है जो पराए के बस है। वह नैना पीउ की बाट में है। ऐ कौओ, वे मेरे नहीं है, मेरे तन के नहीं है। वे पीउ के आस को बसाए रखने के लिए हैं। सो, उन्हें छोड़ देना।

आज सबेरे भी मैंने यह सब कुछ देखा। कौओं को रोटी खिलाकर वह उसी तरह नीचे चली गयी। फिर छोटे-बड़े बहुत-से कपड़े धो कर लायी। उसी भाँति उन्हें झटक कर सुखा दिया। वैसे ही बाल छितरा कर थोड़ी देर डोली। फिर सहसा ही उन्हें जूड़े में सँभाल कर नीचे भाग गयी।

जाह्नवी को घर में एक बार देखा था। पत्नी ने इसे खास तौर पर देख लेने को कहा था और उसके चले जाने पर पूछा था—क्यों कैसी है?

मैंने कहा था—बहुत भली मालूम होती है सुन्दर भी है। पर क्या?

"अपने बिरजू के लिए कैसी रहेगी।

बिरजू दूर के रिश्ते में मेरा भतीजा होता है। इस साल एम० ए० में पहुँचा है।

मैंने कहा—अरे, ब्रजनंदन! वह उसके सामने बच्चा है।

पत्नी ने अचरज से कहा—बच्चा है! बाईस बरस का तो हुआ!

"बाईस छोड़ ब्यालीस का भी हो जाय। देखा कैसे ठाठ से रहता है? यह लड़की देखो, कैसी बस सफेद साड़ी पहनती है। बिरजू इसके लायक कहाँ है। यों भी कह सकते हो कि यह बिचारी लड़की बिरजू के ठाठ के लायक नहीं।"

बात मेरी कुछ सही, कुछ व्यंग्य थी। पत्नी ने उसे कान पकड़ भी न लिया। कुछ दिनों बाद मुझे मालूम हुआ कि पत्नीजी की कोशिशों से जाह्नवी के माँ बाप से (—माँ के द्वारा बाप से) काफी आगे तक बढ़ कर बातें कर ली गई हैं। शादी के मौके पर क्या देना होगा, क्या लेना होगा, एक-एक कर सभी बातें पेशगी तय होती जा रही हैं।

इतने में सब किए कराए पर पानी फिर गया। जब बात कुल किनारे पर आ गई थी, तभी हुआ क्या, कि हमारे ब्रजनन्दन के पास एक पत्र आ पहुँचा। उस पत्र के कारण एकदम सब चौपट हो गया। इस रंग में भंग हो जाने पर हमारी पत्नी का मन पहले तो गिर कर चूर-चूर सा होता जान पड़ा, पर फिर वह उसी पर बड़ी खुश मालूम होने लगीं!

मैं तो मानो इन मामलों में अनावश्यक प्राणी हूँ ही। कानों-कान खबर तक न हुई। जब हुई तो इस तरह—

पत्नी एक दिन सामने आ धमकीं। बोलीं—यह तुमने जाह्नवी के बारे में पहले-से-क्यों नहीं बतलाया?

मैंने कहा—जाह्नवी के बारे में मैंने पहले-से क्या नहीं बतलाया भाई?

"यही कि वह ऐसी है ?"

मैंने पूछा—ऐसी कैसी ?

उन्होंने कहा—अब बनो मत। जैसे तुम्हें कुछ नहीं मालूम।

मैंने कहा—अरे, यह तो कोई हाईकोर्ट का जज भी नहीं कह सकता कि मुझे कुछ भी नहीं मालूम। लेकिन, आखिर जाह्नवी के बारे में मुझे क्या मालूम है, यह तो मालूम हो।

श्रीमती जी अकृत्रिम आश्चर्य से कहा—बिरजू के पास खत आया है, सो तुमने कुछ नहीं सुना ? आजकल की लड़कियाँ—बस कुछ न पूछो। यह तो चलो भला हुआ कि मामला खुल गया। नहीं तो—

क्या मामला, कहाँ, कैसे खुला और भीतर से क्या कुछ रहस्य बाहर हो पड़ा सो सब बिना जाने मैं क्या निवेदित करता ? मैंने कहा—कुछ बात साफ़ भी कहो।

उन्होंने कहा—वह लड़की आशनाई में फँसी थी।—पढ़ी-लिखी सब एक जात की होती हैं।

मैंने कहा—सब की जात-बिरादरी एक हो जाय तो बखेड़ा टले। लेकिन असल बात तो भी बताओ।

"असल बात जानती है तो जाकर पूछो उसकी महतारी से। भली समधिन बनने चली थी ! वह मुझे पहले ही से दाल में काला मालूम होता था। पर देखो न, कैसी सीधी भोली बातें करती थी। वह तो, देर क्या थी, सब हो चुका था। बस लगन-मुहूर्त की बात थी। राम राम भीतर पेट में कैसी कालिख रखे है, मुझे पता न था। चलो, आखिर परमात्मा ने इज्जत बचा ली। वह लड़की घर में आ जाती तो मेरा मुँह अब दिखाने लायक रहता ?

मेरी पत्नी का मुख क्यों किस भाँति दिखाने लायक न रहता, उसमें क्या विकृति आ रहती, सो उनकी बातों से समझ में न आया।

उनकी बातों में रस कई भाँति का मिला, तथ्य न मिला। कुछ देर के बाद उन बातों से मैंने तथ्य पाने का यत्न ही छोड़ दिया और चुपचाप पाप-पुण्य, धर्म अधर्म का विवेचन सुनता रहा। पता लगाने पर मालूम हुआ कि ब्रजनन्दन के पास खुद यानी जाह्नवी का पत्र आया था। पत्र मैंने स्वयं देखा। उस पत्र को देख कर मेरे मन में कल्पना हुई कि अगर वह मेरी लड़की होती तो ?—मुझे यह अपना सौभाग्य मालूम नहीं हुआ कि जाह्नवी मेरी लड़की नहीं है। उस पत्र की बात कई बार मन में उठी है और घुमड़ती रह गयी। ऐसे समय चित्त का समाधान उड़ गया है और मैं शून्य भाव से, हमें जो शून्य चारों ओर से ढके हुए उसकी ओर, देखता रह गया हूँ।

पत्र बड़ा नहीं था। सीधे-सादे ढंग से उसमें यह लिखा था कि आप जब विवाह के लिये यहाँ पहुँचेंगे तो मुझे भी प्रस्तुत पायेंगे। लेकिन मेरे चित्त की हालत इस समय ठीक नहीं है और विवाह जैसे धार्मिक अनुष्ठान की पात्रता मुझमें नहीं है। एक अनुगता आपको विवाह द्वारा मिल जायगी। लेकिन विवाह द्वारा सेविका नहीं मिलनी चाहिए।—धर्मपत्नी मिलनी चाहिए।—वह जीवन संगिनी भी हो। वह मैं हूँ या हो सकती हूँ, इसमें मुझे बहुत संदेह है। फिर भी अगर आप चाहें, आपके माता-पिता चाहें तो मैं प्रस्तुत अवश्य हूँ। विवाह में आप मुझे लेंगे और स्वीकार करेंगे तो मैं अपने को दे ही दूँगी और आपके चरणों की धूलि माथे से लगाऊँगी। आपकी कृपा मानूँगी। कृतज्ञ होऊँगी। पर निवेदन है कि यदि आप मुझ पर से अपनी माँग उठा लेंगे, मुझे छोड़ देंगे, तो कृतज्ञ होऊँगी। निर्णय आपके हाथ में है। जो चाहें, करें।

मुझे ब्रजनंदन पर आश्चर्य आकर भी आश्चर्य नहीं होता। उसने दृढ़ता के साथ कह दिया कि मैं यह शादी नहीं करूँगा। लेकिन उसने मुझसे अकेले में यह भी कहा कि चाचा जी, मैं और विवाह करूँगा

ही नहीं, करूँगा तो उसी से करूँगा। उस पत्र को वह अपने से अलहिदा नहीं करता है। और मैं देखता हूँ कि उस ब्रजनन्दन का ठाठ-बाट आप ही कम होता जा रहा है। सादा रहने लगा है और अपने प्रति सगर्व बिलकुल भी नहीं दीखता है। पहले विजेता बनना चाहता था, अब विनयावनत दीखता है और आवश्यकता से अधिक बात नहीं करता। एक बार प्रदर्शिनी में मिल गया मैं देख कर हैरत में रह गया। ब्रजनन्दन एकाएक पहिचाना भी न जाता था। मैंने कहा—ब्रजनन्दन, कहो क्या हाल है?

उसने प्रणाम करके कहा—अच्छा है।

वह मेरे घर पर भी आया।

पत्नी ने उसे बहुत प्रेम किया और बहुत-बहुत बधाइयाँ दीं कि ऐसी लड़की से शादी होने से चलो भगवान ने समय पर रक्षा कर दी जाह्नवी नाम की लड़की की एक-एक छिपी बात बिरजू की चाची को मालूम हो गई है। वह बातें—ओः! कुछ न पूछो, बिरजू भैया मुँह से भगवान किसी की बुराई न करावे। लेकिन—

फिर कहा—भई, अब बहू के बिना काम कब तक चलावें, तू ही बता। क्यों रे, अपनी चाची को बुढ़ापे में भी तू आराम नहीं देगा? सुनता है कि नहीं?

ब्रजनन्दन चुपचाप सुनता रहा।

पत्नी ने कहा—और यह तुझे हो क्या गया है? अपने चाचा की बात तुझे भी लग गई है क्या? न ढंग के कपड़े, न रीत की बातें। उन्हें तो अच्छे कपड़े लत्ते सोभते नहीं है। तू क्यों ऐसा रहने लगा रे?

ब्रजनन्दन ने कहा—कुछ नहीं, चाची। और कपड़े घर रखे हैं।

अकेले पाकर मैंने भी उससे कहा—ब्रजनन्दन बात तो सही है। अब शादी करके काम में लगना चाहिए और घर बसाना चाहिए। है कि नहीं।

ब्रजनन्दन ने मुझे देखते हुए बड़े बूढ़े की तरह कहा—अभी तो बहुत उमर पड़ी है, चाचीजी।

मैंने इस बात को ज्यादा नहीं बढ़ाया।

अब खिड़की के पार इतवार को, सोमवार को, मंगलवार को और आज बुधवार को भी सबेरे ही सबेरे छत पर नित रोटी के मिस कौओं को पुकार—पुकार कर बुलाने खिलाने वाली यह जो लड़की देख रहा हूँ सो क्या जाह्नवी है? जाह्नवी को मैंने एक ही बार देखा है, इसलिए, मन को कुछ निश्चय नहीं होता है। क़द भी इतना ही था, लावण्य शायद उस जाह्नवी में अधिक था। पर यह वह नहीं है—जाह्नवी नहीं है, ऐसी दिलासा मैं मन को तनिक भी नहीं दे पाता हूँ। सबेरे ही सबेरे इतने कौए बुला लेती है कि खुद दीखती ही नहीं, काले-काले वे ही वे दीखते हैं। और वे भी उसके चारों ओर ऐसी छीन-झपट-सी करते हुए उड़ते रहते हैं मानो बड़े स्वाद से, बड़े प्रेम से, चोंथ-चोंथ कर उसे खाने के लिए आपस में बदाबदी मचा रहे हैं। पर उनसे घिरी वह कहती है, "आओ, कौओ, आओ।" जब वे आ जाते हैं तो गाती है—

"कागा चुन चुन खाइयो .....।"

और जब जाने कहाँ-कहाँ के कौए इकट्ठे के इकट्ठे काँऊँ काँऊँ करते हुए चुन-चुन कर खाने लगते हैं और फिर भी खाँऊँ-खाँऊँ करके उससे भी ज्यादा माँगने लगते हैं तब वह चीख मचा कर चिल्लाती है—कि ओ रे कागा, नहीं, ये—

"दो नैना मत खाइयो!
मत खाइयो—
पीउ मिलन की आस।"

मिठाईवाला

[भगवतीप्रसाद बाजपेयी]

बहुत ही मीठे स्वरों के साथ वह गलियों में घूमता हुआ कहता—
"बच्चों को बहलाने वाला, खिलौने वाला।"

इस अधूरा वाक्य को वह ऐसे विचित्र, किन्तु मादक-मधुर ढंग से गाकर कहता कि सुनने वाले एक बार अस्थिर हो उठते। उसके स्नेहाभिषिक्त कंठ से फूटा हुआ उपयुक्त गान सुनकर निकट के मकानों में हलचल मच जाती। छोटे-छोटे बच्चों को अपनी गोद में लिए हुए युवतियाँ चिकों को उठा कर छज्जों पर नीचे झाँकने लगतीं। गलियों और उनके अंतर्व्यापी छोटे-छोटे उद्यानों में खेलते और इठलाते हुए बच्चों का झुण्ड उसे घेर लेता और तब वह खिलौनेवाला वहीं कहीं बैठ कर खिलौने की पेटी खोल देता।

बच्चे खिलौने देखकर पुलकित हो उठते। वे पैसे लाकर खिलौनों का मोल भाव करने लगते। पूछते—"इछका दाम क्या है, औल इछका, औेर इछका? खिलौने वाला बच्चों को देखता, और उनकी नन्हीं-नन्हीं उँगलियों और हथेलियों से पैसे ले लेता, और बच्चों के इच्छानुसार उन्हें खिलौने दे देता। खिलौने लेकर फिर बच्चे उछलने कूदने लगते और तब फिर खिलौने वाला उसी प्रकार गा कर कहता—"बच्चों को बहलाने वाला, खिलौने वाला।" सागर की हिलोर की भाँति उसका यह मादक गान गली-भर के मकानों में, इस ओर से उस ओर तक, लहराता हुआ पहुँचता, और खिलौने वाला आगे बढ़ जाता।

राय विजय बहादुर के बच्चे भी एक दिन खिलौने लेकर घर

आये। वे दो बच्चे थे—चुन्नू और मुन्नू! चुन्नू जब खिलौना ले आया तो बोला—"मेला घोला कैछा छुन्दल ऐ।"

मुन्नू बोला—"औल देखो, मेला आती कैछा छुन्दल ऐ!"

दोनों अपने हाथी-घोड़े लेकर घर भर में उछलने लगे। इन बच्चों की माँ, रोहिणी कुछ देर तक खड़े-खड़े उनका खेल निरखती रही। अन्त में दोनों बच्चों को बुला कर उसने पूछा—"अरे ओ चुन्नू-मुन्नू, ये खिलौने तुमने कितने में लिए हैं?"

मुन्नू बोला—"दो पैछे में। खिलौने वाला दे गया ऐ।"

रोहिणी सोचने लगी—इतने सस्ते कैसे दे गया है? कैसे दे गया है, यह तो वही जाने। लेकिन दे तो गया ही है, इतना तो निश्चय है।

एक जरा-सी बात ठहरी। रोहिणी अपने काम में लग गयी। फिर कभी उसे इस पर विचार करने की आवश्यकता ही भला क्यों पड़ती।

(२)

छः महीने बाद।

नगर-भर में दो चार दिनों से एक मुरली वाले के आने का समाचार फैल गया। लोग कहने लगे—"भाई वाह! मुरली बजाने में वह एक ही उस्ताद है। मुरली बजा कर; गाना सुना कर वह मुरली बेचता भी है, सो भी दो-दो पैसे। भला इसमें उसे क्या मिलता होगा। मेहनत भी तो न आती होगी!"

एक व्यक्ति ने पूछ दिया—"कैसा है वह मुरली वाला, मैंने तो उसे नहीं देखा?"

उत्तर मिला—"उम्र तो उसकी अभी अधिक न होगी, यही तीस-बत्तीस का होगा। दुबला-पतला गोरा युवक है, बीकानेरी रंगीन साफा बाँधता है।"

"वही तो नहीं; जो पहले खिलौने बेचा करता था ?"

"क्या वह पहले खिलौने भी बेचा करता था ?"

"हाँ, जो आकार-प्रकार तुमने बतलाया, उसी प्रकार का वह भी था।"

" तो वही होगा। पर भई, है वह एक ही उस्ताद !"

प्रतिदिन इसी प्रकार उस मुरली वाले की चर्चा होती। प्रतिदिन नगर के प्रत्येक गली में उसका मादक, मृदुल स्वर सुनाई पड़ता— "बच्चों को बहलाने वाला, मुरलिया वाला !"

रोहिणी ने भी मुरली वाले का यह स्वर सुना। तुरन्त ही उसे खिलौने वाले का स्मरण हो आया। उसने मन ही मन कहा—खिलौने-वाला भी इसी तरह गा गाकर खिलौने बेचा करता था।

रोहिणी उठ कर अपने पति विजय बाबू के पास गयी—"जरा उस मुरली वाले को बुलाओ तो, चुन्नू-मुन्नू के लिये ले लूँ। क्या यह फिर इधर आये, न आये। वे भी, जान पड़ता है, पार्क में खेलने निकल गये हैं।"

विजय बाबू एक समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। उसी तरह उसे लिए हुए वे दरवाजे पर आकर मुरलीवाले से बोले—"क्यों भई, किस तरह देते हो मुरली ?"

किसी की टोपी गली में गिर पड़ी। किसी का जूता पार्क में ही छूट गया, और किसी की सोथनी (पाजामा) ही ढ़ीली होकर लटक आयी। सब तरह दौड़ते-हाँफते हुए बच्चों का झुंड आ पहुँचा। एक स्वर से सब बोल उठे—"अम बी लेंदे मुल्ली, औल अम बी लेंदे मुल्ली।

मुरली वाला हर्ष-गद्गद् हो उठा। बोला—"सबको देंगे भैया ! लेकिन जरा रुको, जरा ठहरो, एक-एक को लेने दो। अभी इतनी जल्दी हम कहीं लौट थोड़े ही जायँगे। बेचने तो आये ही हैं, और हैं भी इस समय मेरे पास एक दो नहीं, पूरी सत्तावन।......हाँ बाबूजी,

क्या पूछा था आपने, कितने में दीं !...दीं तो वैसे तीन तीन पैसे के हिसाब से है पर आपको दो-दो पैसे में ही दे दूँगा।"

विजय बाबू भीतर-बाहर दोनों रूपों में मुस्किरा दिये। मन-ही-मन कहने लगे—कैसा ठग है! देता तो सब को इसी भाव से है, पर मुझ पर उलटा एहसान लाद रहा है। फिर बोले—तुम लोगों को झूठ बोलने की आदत ही होती है। देते होंगे सभी को दो-दो पैसे में, पर एहसान का बोझा मेरे ही ऊपर लाद रहे हो!"

मुरली वाला एकदम अप्रतिभ हो उठा। बोला—"आपको क्या पता बाबूजी की इनकी असली लागत क्या है। यह तो ग्राहकों का दस्तूर होता है कि दूकानदार चाहे हानि ही उठा कर चीज़ क्यों न बेचे, पर ग्राहक यही समझते हैं—दुकानदार मुझे लूट रहा है। आप भला काहे को विश्वास करेंगे। लेकिन सच पूछिये तो बाबूजी, असली दाम दो ही पैसा है। आप कहीं से दो पैसे में ये मुरलियाँ नहीं पा सकते। मैंने तो पूरी एक हजार बनवाई थीं, तब मुझे इस भाव पड़ीं हैं!"

विजय बाबू बोले "अच्छा अच्छा, मुझे ज़्यादा वक्त नहीं, जल्दी से दो ठो निकाल दो।"

दो मुरलियाँ लेकर विजय बाबू फिर मकान के भीतर पहुँच गये।

मुरली वाला देर तक उन बच्चों के झुण्ड में मुरलियाँ बेचता रहा। उसके पास कई रंग की मुरलियाँ थीं। बच्चे जो रंग पसन्द करते, मुरली वाला उसी रंग की मुरली निकाल देता।

"यह बड़ी अच्छी मुरली है। तुम यही ले लो बाबू, राजा बाबू, तुम्हारे लायक तो बस यह है। हाँ भैये, तुमको वही देंगे। ये लो;... तुमको वैसी न चाहिए, ऐसी चाहिए, यह नारङ्गी रङ्ग की, अच्छा, वही लो।...पैसे नहीं हैं? अच्छा अम्मा से पैसे ले आओ। मैं अभी बैठा हूँ। तुम ले आए पैसे? अच्छा, ये लो, तुम्हारे लिए मैंने पहले ही से

यह निकाल रखी थी।...तुमको पैसे नहीं मिले! तुमने अम्मा से ठीक तरह माँगे न होंगे। धोती पकड़ कर पैरों में लिपट कर, अम्मा से पैसे माँगे जाते हैं बाबू! हाँ, फिर जाओ। अब की बार मिल जायँगे।...दुअन्नी है? तो क्या हुआ, ये दो पैसे वापस लो। ठीक हो गया न हिसाब?...मिल गये पैसे! देखो, मैंने कैसी तरकीब बताई! अच्छा, अब तो किसी को नहीं लेना है? सब ले चुके? तुम्हारी माँ के पास पैसे नहीं? अच्छा, तुम भी यह लो। अच्छा तो अब मैं चलता हूँ।"

इस तरह मुरलीवाला फिर आगे बढ़ गया।

(३)

आज अपने मकान में बैठी हुई रोहिणी मुरली वाले की सारी बातें सुनती रही। आज भी उसने अनुभव किया, बच्चों के साथ इतने प्यार से बातें करने वाला फेरीवाला पहले कभी नहीं आया। फिर वह सौदा भी कैसा सस्ता बेचता है। भला आदमी जान पड़ता है। समय की बात है, जो बेचारा इस तरह मारा-मारा फिरता है। पेट जो न कराये, सो थोड़ा?

इसी समय मुरली वाले का क्षीण स्वर दूसरी निकट की गली से सुनाई पड़ा—"बच्चों को बहलाने वाला, मुरलिया वाला!"

रोहिणी इसे सुन कर मन-ही-मन कहने लगी—और स्वर कैसा मीठा है इसका।

बहुत दिनों तक रोहिणी को मुरली वाले का वह मीठा स्वर और उसकी बच्चों के प्रति वे स्नेहसिक्त बातें याद आती रहीं। महीने-के-महीने आये और चले गये। फिर मुरली वाला न आया। धीरे-धीरे उसकी स्मृति भी क्षीण हो गयी।

(४)

आठ मास बाद—

सर्दी के दिन थे। रोहिणी स्नान करके अपने मकान की छत पर चढ़ कर आजानुविलंबित केश-राशि सुखा रही थी। इसी समय नीचे की गली में सुनाई पड़ा—"बच्चों को बहलाने वाला, मिठाई वाला!"

मिठाई वाले का स्वर उसके लिये परिचित था, झट से रोहिणी नीचे उतर आयी। उस समय उसके पति मकान में नहीं थे। हाँ, उनकी वृद्धा दादी थी। रोहिणी उनके निकट आ कर बोली—"दादी, चुन्नू-मुन्नू के लिये मिठाई लेनी है। जरा कमरे में चल कर ठहराओ तो। मैं उधर कैसे जाऊँ, कोई आता न हो। जरा हट कर मैं भी चिक की ओट में बैठी रहूँगी।"

दादी उठ कर कमरे में आ कर बोलीं—"ए मिठाई वाले, इधर आना।"

मिठाई वाला निकट आ गया। बोला—"कितनी मिठाई दूँ माँ? ये नये तरह की मिठाइयाँ हैं—रंग-बिरंगी, कुछ-कुछ खट्टी, कुछ-कुछ मीठी, जायकेदार बड़ी देर तक मुँह में टिकती हैं। जल्दी नहीं घुलतीं। बच्चे इन्हें बड़े चाव से चूसते हैं। इन गुणों के सिवा ये खाँसी भी दूर करती हैं। कितनी दूँ? चपटी, गोल पहलदार गोलियाँ हैं। पैसे की सोलह देता हूँ।"

दादी बोली—"सोलह तो बहुत कम होती हैं, भला पचीस तो देते।"

मिठाई वाला—"नहीं दादी, अधिक नहीं दे सकता। इतनी भी कैसे देता हूँ, यह अब मैं तुम्हें क्या...। खैर मैं अधिक न दे सकूँगा।"

रोहिणी दादी के पास ही थी। बोली—"दादी, फिर भी काफी सस्ता दे रहा है। चार पैसे का ले लो। यह पैसे रहे।

मिठाई वाला मिठाइयाँ गिनने लगा।

"तो चार की दे दो। अच्छा पचीस नहीं सही बीस ही दो। अरे हाँ, मैं बूढ़ी हुई मोल-भाव अब मुझे ज्यादा करना आता भी नहीं।" कहते हुए दादी के पोपले मुँह की ज़रा-सी मुस्किराहट भी फूट निकली।

रोहिणी ने दादी से कहा—"दादी, इससे पूछो, तुम इस शहर में और भी कभी आये थे, या पहली बार आए हो। यहाँ के निवासी तो तुम हो नहीं।"

दादी ने इस कथन को दोहराने की चेष्टा की ही थी कि मिठाई वाले ने उत्तर दिया—"पहली बार नहीं और भी कई बार आ चुका हूँ।"

रोहिणी चिक की आड़ ही से बोली—"पहले यही मिठाई बेचते हुए आये थे, या कोई चीज़ लेकर?"

मिठाई वाला हर्ष संशय और विस्मयादि भावों में डूब कर बोला—'इससे पहले मुरली लेकर आया था, और उससे भी पहले खिलौने लेकर।'

रोहिणी का अनुमान ठीक निकला। अब तो वह उससे और भी कुछ बातें पूछने के लिये अस्थिर हो उठी। वह बोली—"इन व्यवसायों में भला तुम्हें क्या मिलता होगा?"

वह बोला—"मिलता भला क्या है! यही खाने-भर को मिल ज़ाता है। कभी नहीं भी मिलता है। पर हाँ, संतोष; धीरज और कभी-कभी असीम सुख जरूर मिलता है। और यही मैं चाहता भी हूँ।"

"सो कैसे? वह भी बताओ।"

"अब व्यर्थ उन बातों का क्यों चर्चा करूँ? उन्हें आप जाने ही दें। उन बातों को सुनकर आपको दुःख ही होगा।"

"जब इतना बताया है, तब और भी बता दो। मैं बहुत उत्सुक हूँ। तुम्हारा हर्जा न होगा। मिठाई मैं और भी कुछ ले लूँगी।"

अतिशय गम्भीरता के साथ मिठाई वाले ने कहा—"मैं भी अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था। मकान, व्यवसाय गाड़ी-घोड़े

नौकर चाकर सभी कुछ था। स्त्री थी, छोटे-छोटे दो बच्चे भी थे। मेरा वह सोने का संसार था। बाहर संपत्ति का वैभव था, भीतर सांसारिक सुख का। स्त्री सुन्दरी थी, मेरी प्राण थी। बच्चे ऐसे सुन्दर थे, जैसे सोने के सजीव खिलौने। उनके अठखेलियों के मारे घर में कोलाहल मचा रहता था। समय की गति! विधाता की लीला! अब कोई नहीं है। दादी, प्राण निकाले नहीं निकले। इसलिये अपने उन बच्चों की खोज में निकला हूँ। वे सब अंत में होंगे तो यहीं कहीं। आखिर, कहीं-न-कहीं जन्मे ही होंगे। उस तरह रहता, तो घुल-घुल कर मरता। इस तरह सुख संतोष के साथ मरूँगा। इस तरह के जीवन में कभी-कभी अपने उन बच्चों की एक झलक सी मिल जाती है। ऐसा जान पड़ता है, जैसे वे इन्हीं में उछल-उछल कर हँस-खेल रहे हैं। पैसों की कमी थोड़े ही है, आपकी दया से पैसे तो काफ़ी हैं। जो नहीं है, इस तरह उसी को पा जाता हूँ।"

रोहिणी ने अब मिठाई वाले की ओर देखा—उसकी आँखें आँसुओं से तर हैं।

इसी समय चुन्नू-मुन्नू आ गये। रोहिणी से लिपट कर, उसकी आँचल पकड़ कर बोले—"अम्माँ, मिठाई!"

"मुझ से लो।"—कह कर, तत्काल कागज की दो पुड़ियाँ, मिठाइयों से भरी, मिठाई वाले ने चुन्नू-मुन्नू को दे दी।

रोहिणी ने भीतर से पैसे फेंक दिये।

मिठाई वाले ने पेटी उठाई, और कहा—"अब इस बार ये पैसे न लूँगा।"

दादी बोली—"अरे-अरे, न-न, अपने पैसे लिए जा भाई!"

तब तक आगे फिर सुनाई पड़ा उसी प्रकार मादक, मृदुल स्वर में—"बच्चों को बहलाने वाला, मिठाई वाला।"

देशभक्त

[बेचन शर्मा 'उग्र']

"स्वामिन्, आज कोई सुन्दर सृष्टि करो! किसी ऐसे प्राणी का निर्माण करो जिसकी रचना पर हमें गौरव हो सके। क्यों?

"सचमुच प्रिये, आज तुम्हें क्या सूझा, जो सारा धन्धा छोड़ कर यहाँ आई हो, और मेरी सृष्टि परीक्षा लेने को तैयार हो?

"तुम्हारी परीक्षा, और मैं लूँगी? हरे, हरे! मुझे व्यर्थ ही काँटों में क्यों घसीट रहे हो नाथ? यों ही बैठी-बैठी तुम्हारी अद्भुत रचना 'मृत्युलोक' का तमाशा देख रही थी। जब जी ऊब गया, तब तुम्हारे पास चली आई हूँ। अब संसार में मौलिकता नहीं दिखाई पड़ती। वही पुरानी गाथा चारों ओर दिखाई-सुनाई पड़ रही है कोई रोता है, कोई खिल-खिलाता है; एक प्यार करता है, दूसरा अत्याचार करता है; राजा धीरे धीरे भीख माँगने लगता है और भिक्षुक शासन करने! इन बातों में मौलिकता कहाँ? इसलिये प्रार्थना करती हूँ कोई मनोरंजन सृष्टि सँवारो। संसार के अधिकतर प्राणी तुमको शाप ही देते हैं, एक बार आशीर्वाद भी लो।"

"अच्छी बात है, इस समय चित्त भी प्रसन्न है। किसी से मानव सृष्टि की आवश्यक सामग्रियाँ यहीं मँगवाओ। आज मैं तुम्हारे सामने ही तुम्हारी सहायता से सृष्टि करूँगा।

"मैं, और तुमको सहायता दूँगी? तब रहने दो हो चुकी सृष्टि! सृष्टि करने की योग्यता यदि मुझमें होती तो मैं तुमको कष्ट देने के लिये यहाँ आती?"

नाराज़ क्यों होती हो भाई! तुमसे पुतला तैयार करने का कौन

कहता है ? तुम यहाँ चुपचाप बैठी रहो। हाँ कभी-कभी मेरी और मेरी कृत की ओर अपने मधुर कटाक्षको फेर दिया करना। तुम्हारी इतनी सहायता से मेरी सृष्टि में जान आ जायगी समझीं ?

"समझी। देखती हूँ, तुम्हारी आदत भी कलियुगी बूढ़ों सी हुई जा रही है। अभी तक आँखों में जवानी का नशा छाया हुआ है।"

"और तुम्हारी आदत तो बहुत ही अच्छी हुई जा रही है। बूढ़े मारवाड़ियों की युवती कामिनियों की तरह जब होता है तभी 'खाँव खाँव' किया करती हो। चलो, जल्दी करो, सब चीज़ें मँगवाओ।

(२)

क्षिति, जल, अग्नि, आकाश और पावन के सम्मिश्रण से विधाता ने एक पुतला तैयार किया। इसके बाद उन्होंने सब में पहले तेज को बुला कर उस पुतले में प्रवेश करने को कहा। तेज के बाद सौन्दर्य, दया करुणा, प्रेम, विद्या, बुद्धि, बल सन्तोष, साहस, उत्साह धैर्य गम्भीरता आदि समस्त सद्गुणों से उस पुतले को सजा दिया। अन्त में आयु और भाग्य की रेखायें बनाने के लिये ज्यों ही विधाता ने लेखनी उठाई, त्योंही ब्राह्मणी ने रोका—"सुनिये भी, इसके भाग्य में क्या लिखने जा रहे हैं, और आयु कितनी दीजियेगा ?"

"क्यों ? तुमको इन बातों से मतलब ? तुम्हें तो तमाशा-भर देखना है, वह देख लेना ? भौंहें तनने लगीं न ? अच्छा लो सुन लो। इसके भाग्य में लिखी जा रही है, भयंकर दरिद्रता, दुःख चिन्ता और इसकी आयु होगी बीस वर्षों की !"

"अरे ! यह क्या तमाशा कर रहे हैं ? बल, साहस, दया तेज, सौन्दर्य विद्या, बुद्धि आदि गुणों के देने के बाद दरिद्रता, दुःख और चिन्ता आदि के देने की क्या आवश्यकता है, फिर सृष्टि को देख कर लोग आपकी प्रशंसा करेंगे या गालियाँ देंगे। फिर केवल बीस वर्षों की

अवस्था ! इन्हीं कारणों से मर्त्य-लोक के कवि आपकी शिकायत करते हैं क्या फिर किसी से 'नाम चतुरातनन पै चूकते चले गये !' लिखवाने का विचार है !"

विधाता ने मुस्करा कर कहा—"अब तो रचना हो गयी। चुपचाप तमाशा भर देखो। इसकी आयु इस लिए कम रखी है जिसमें तमाशा जल्द दिखाई पड़े।"

ब्राह्मणी ने पूछा—"इसे मर्त्य-लोक वाले किस नाम से पुकारेंगे !"

प्रजापति ने गर्व-भरे स्वर में उत्तर दिया—"देशभक्त।"

(३)

अमरावती से इन्द्र ने, कैलाश से शिव ने, बैकुंठ से कमलापति ने—संसार रंगमंच पर देशभक्त का प्रवेश उस समय देखा, जब उनकी अवस्था उन्नीस वर्ष की हो गयी। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। देव मंडली का एक-एक दिन हमारी अनेक शताब्दियों से भी बड़ा होता है। हमारे उन्नीस वर्ष तो उनके कुछ मिनटों से भी कम थे।

देशभक्त के दर्शनों से भगवान् कामारि प्रसन्न हो कर नाचने लगे। उन्होंने अपनी प्राणेश्वरी पार्वती का ध्यान देशभक्त की ओर आकर्षित करते हुये कहा—"देखो, यह स्रष्टा की अभूतपूर्व रचना है। कोई भी देवता देशभक्त के रूप में नरलोक में जाकर अपने को धन्य समझ सकता है। प्रिये इसे आशीर्वाद दो।" प्रसन्नवदना उमा ने कहा—"देशभक्त की जय हो !"

एक दिन देशभक्त के तेजपूर्ण मुखमंडल पर अचानक कमला की दृष्टि पड़ गयी। उस समय यह (देशभक्त) हाथ में पिस्तौल लिए किसी देश द्रोही का पीछा कर रहा था। इन्दिरा ने घबरा कर विष्णु को उसकी ओर आकर्षित करते हुये कहा—"यह कौन है ? मुख पर इतना

तेज—ऐसी पवित्रता और करने जा रहे हैं, राक्षसी कर्म—हत्या ! यह कैसी लीला है, लीलाधर ! विष्णु ने कहा—"चुपचाप देखो। 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।' यदि वह—देशभक्त—राक्षसी का काम करने जा रहा है, तो राम, कृष्ण, प्रताप, शिवा, गोविन्द, नैपोलियन सब ने राक्षसी कर्म किया है। देवी, इन्हें प्रणाम करो ! यह कर्ता की पवित्र कृति है।"

* * *

हाथ की पिस्तौल देश-द्रोही के मस्तक के सामने कर, देशभक्त ने कहा—"मूर्ख ! पश्चात्ताप कर, देश-द्रोह से हाथ खींच कर मातृ सेवा की प्रतीक्षा कर। नहीं तो मरने के लिए तैयार हो जा।"

देश द्रोही के मुख पर घृणा और अभिमान भरी मुस्कराहट दौड़ गयी। उसने शासन के स्वर में उत्तर दिया—

"अज्ञान, सावधान ! हम शासकों के लाड़ले हैं। हमारे माँ बाप और ईश्वर, सर्वशक्तिमान सम्राट हैं। सम्राट के सम्मुख देश की बड़ाई !"

"अन्तिम बार पुनः कह रहा हूँ, "माता की जय !" बोल; अन्यथा इधर देख !" देशभक्त की पिस्तौल गरजने के लिए तैयार हो गयी।

सिर पर संकट देख कर देश-द्रोही ने अपनी जेब से सीटी निकाल निकाल कर जोर से बजाई। जान पड़ता है, देश-द्रोहियों का दल देश भक्त की ओर लपका ! फिर क्या था, देशभक्त की पिस्तौल गरज उठी क्षण भर में देश द्रोहियों का सरदार, कबूतर की तरह पृथ्वी पर लोटने लगा। गिरफ्तार होने के पूर्व सफल प्रयत्न देशभक्त आनन्द-विभोर होकर चिल्ला उठे—"माता की जय हो !"

काँपते हुए इन्द्रासन ने, पुष्पवृष्टि करते हुये नन्दन कानन ने तांडव नृत्य में लीन रुद्र ने, कलकल करती हुई सुरसरिता ने एक स्वर से कहा—"देशभक्त की जय हो।"

विधाता प्रेम गद्गद् होकर ब्राह्मणी से बोले—"देखती हो, देश-भक्त के चरणस्पर्श से अभागा कारागार अपने को स्वर्ग समझ रहा है, लोहे की लकड़ियों—हथकड़ी-बेड़ियों—मानो पारस पी लिया है, संसार के हृदय में प्रसन्नता का समुद्र उमड़ रहा है, वसुन्धरा फूली नहीं समाती ! यह है मेरी कृति, यह है मेरी कृति, यह है मेरी विभूति—प्रिये गाओ, मंगल मनाओ आज मेरी लेखनी धन्य हुई !!!

(४)

जिस दिन देशभक्त की जीवनी का अंतिम पृष्ठ लिख जाने वाला था, उस दिन स्वर्ग-लोक में आनन्द का अपार पारावार उमड़ रहा था। त्रिंस कोटि देवांगनाओं की थालियों को उदार कल्पवृक्ष ने अपने पुष्पों से भर दिया था, अमरावती ने अपना अपूर्व शृङ्गार किया था, चारों ओर मंगल गान गाए जा रहे थे।

समय से बहुत पहले ही देवतागण विमान पर आरूढ़ हो कर आकाश में विचरने और देशभक्त के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे!

* * *

सम्राट के समर्थक भीषण शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर एक बड़े मैदान में खड़े थे। देशभक्त पर 'सम्राट के प्रति विद्रोह' का अपराध लगा कर न्याय का नाटक खेला जा चुका था। न्यायाधीश की यह आज्ञा सुनाई जा चुकी थी कि "या तो देशभक्त अपने कर्मों के लिए पश्चात्ताप प्रकट कर "सम्राट् की जय" घोषणा करे या तोप से उसे उड़ा दिया जाय।' देशभक्त पश्चात्ताप क्यों करता? अतः उसे सम्राट् के सैनिकों ने जंजीर में कसकर तोप के सम्मुख खड़ा कर दिया।

सम्राट् के प्रतिनिधि ने कहा—

"अपराधी!' न्याय की रक्षा के लिए अंतिम बार फिर कहता हूँ—'सम्राट् की जय' घोषणा कर पश्चात्ताप कर ले!"

मुस्कराते हुए देशभक्त बन्दी ने कहा—

"तुम अपना काम करो, मुझ से पश्चात्ताप की आशा व्यर्थ है। तुम मुझसे 'सम्राट् की जय' कहलाने के लिए क्यों मरे जा रहे हो? सच्चा सम्राट् कहाँ है। तुम्हारे कहने से संसार के लुटेरों को मैं कैसे सम्राट् मान लूँ? सम्राट् मनुष्यता का द्रोही हो सकता है? सम्राट् न्याय का गला घोंट सकता है? सम्राट् रक्त का प्यासा हो सकता है? भाई तुम जिसे सम्राट् कहते हो, उसे मनुष्यता के उपासक 'राक्षस' कहते हैं। फिर सम्राट् की जय घोषणा कैसी? तुम मुझे तोप से उड़ा दो—इसी में सम्राट् का मंगल है, इसी से पापों का घड़ा फूटेगा और उसे मुक्ति मिलेगी!

* * *

देव-मंडल के बीच बैठी हुई माता मनुष्यता की गोद में बैठ कर देशभक्त ने और साथ ही त्रिंस कोटि देवताओं ने देखा, पंचतत्त्व के एक पुतले को अत्याचार के उपासकों ने तोप से उड़ा दिया!

उस पुतले के एक-एक कण को देवताओं ने मणि की तरह लूट लिया। बहुत देर तक देवलोक देशभक्त की जय!' से मुखरित रहा!

कवि

[मोहनलाल महतो 'वियोगी']

देव, बिहारी; केशव, तुलसी आदि कवियों ने स्वर्ग में पहुँच कर जो सब से अद्भुत कार्य किया, वह था, भारती के द्वार पर सत्याग्रह।

* * *

देवलोक में खलबली मच गयी। स्वयं विधाता पधारे। कवियों को समझाया, पर सब व्यर्थ हुआ। अन्त में—सन्ध्या समय—जिस समय सारा सुरलोक शंख-ध्वनि से मुखरित हो रहा था, भगवती वाग्देवी के स्वर्ण-मन्दिर का द्वार—अभागे की भाग्य की तरह—खुला।

कवि-समूह जयजयकार कर उठा। माता ने शारदीय चन्द्रिका के समान मन्द मुस्कुरा कर कहा—'वत्स, तुम लोगों की इच्छा पूरी होगी, पर, भारत का वायुमण्डल इस समय कविता के लिए उपयुक्त नहीं है! यदि तुम्हारी एकांत कामना है कि वह अभागा देश फिर कवियों की पावन कविता-गंगा से पवित्र हो जाय, तो एक बार मैं ऐसा अवसर दूँगी।'

भारती की वाणी रुक गयी। कवि समूह मनोवांछित वर प्राप्त कर अपने स्थान को लौट गया।

* * *

रामधन गुप्त कलकत्ता के एक गन्दे मुहल्ले में रहते हैं। परिवार में ४-५ बच्चे और एक स्त्री है। किसी आफिस में क्लर्की करके सौ रुपये महीने पा जाते हैं।

प्रातःकाल उठते ही उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—प्रियतमे! अयि मन-मानस-लौक निवासिनि प्रेम-प्रतिमे! कवि-शिरोमणि, कविता-

कामिनी-कान्त कवियों ने जिसके विराट् वैभव को अपने सुमधुर स्वरों में व्यक्त किया है, ऐसे इस जन-मन-रंजन प्रभात के समय का यह पीताभ शशि मानो, परकीया नायिका—शर्वरी—के साथ, इच्छापूर्वक विहार कर लेने के बाद—मन्द-मन्द गति से—कलंक रूप अंजन जावकादि धारण किए, स्वकीया—प्रतीची के यहाँ जा रहा है। ऊषा सखी व्यंग्य से दीप दिखला रही है। ये नक्षत्र-वृन्द......

पत्नी गुप्तजी की यह लम्बी स्पीच सुन कर अवाक् रह गयी। बोली—"तुम यह क्या अनाप-शनाप बक रहे हो ? तबीयत तो अच्छी है न ?"

गुप्तजी बोलते गये—"शशि के कंठ से टूट कर गिरे हुए मुक्ताहार के बिखरे हुए ये मोती हैं। मृदु-मन्द-समीर अधखिली कलियों का चुम्बन कर रहा है। नवोढा-पुष्प-वधू, प्रेमी भ्रमर के साथ अठखेलियाँ कर रही है। अहा। ये सुनहली किरणें—ये..."

पत्नी ने पति का हाथ पकड़ कर कहा—"तुम्हें मेरी कसम, इस तरह न बको। मैं घबरा गई हूँ। न-जाने तुम्हें आज क्या हो गया है।"

पतिदेव बोलते ही गये—"ये गगन-विचुम्बित सौध, एक दूसरे से होड़ करके ऊपर उठते हुए ऐसे जान पड़ते हैं, मानों वे सभी बालरवि के स्वर्ण-रश्मि-गुम्फित मुकुट धारण करने के लिए व्याकुल हों! अथवा शुभ्र-सौध-समूह क्षीरसागर की तरंग-माला से—"

पत्नी ने अधीर हो कर अपने लड़के माधव को पुकारा। वह धड़धड़ाता हुआ ऊपर आ पहुँचा। पिता की ऐसी अवस्था देख कर उसे भी चिन्ता हुई। उसने गुप्तजी का हाथ पकड़ कर कहा—"बाबूजी, क्या बोल रहे हैं ? माँ घबरा रही है।"

इस बार रामधन कवि का ध्यान भंग हुआ। पुत्र का माथा सूँघ कर, गद्गद् हो कर; अधखुली आँखों से उसे देखते हुए, उन्होंने

कहा—"वत्स, यद्यपि यह संसार सुख-दुःख का क्रीड़ास्थल है, किन्तु मेरे जीवन, आनन्द जनित विस्मृत तो मुझे तेरे उज्ज्वल रूप को देख कर होती है, उसके सामने वसन्त की अज्ञात पुलकावली का कुछ मूल्य नहीं है और न शारदीय रजनी के निर्मल मुस्कान का। आ मेरे प्राण; तुझे हृदय से चिपका लूँ—आ मेरी नैया के कर्णधार!"

पिता के इस सारगर्भित व्याख्यान का—माधव—कुछ अर्थ न समझ सका। उसने माता से कहा—"माँ, इन्हें सँभालो, मैं कविराज जी को बुला लाता हूँ।"

कविराज जी अपनी उम्र का सत्तरवाँ फाटक पार कर चुके थे। सन-सी सफेद दाढ़ी नाभि को चूम रही थी और ललाट पर का सुदीर्घ टीका मरुभूमि की तरह उदास और शीशे की तरह चमकदार था। आप एक चादर ओढ़ कर रामधन को देखने आये। कविराज जी को देखते ही रामधन उनके पैरों पर लम्बायमान हो गया और पुलक गद्गद् स्वर में बोला—"हे अनादि युग के ऋषि-कल्प भगवान्! हे याज्ञवल्क्य-वाल्मीकि आदि तपस्तेज-पुञ्ज मुनि-प्रवरों की याद दिलाने वाले महामुने!! इस अकिंचन को झोपड़ी में—जहाँ न पदार्घ्य है, न आसन—आप किस हेतु पधारे? क्या शारदीय मेघ खंडों के रथ पर चढ़ कर आप अलकापुरी से कोई नूतन सन्देश लेकर आ रहे हैं या पर्वतराज हिमालय की गम्भीर गुहा से, अपनी प्रचंड तपस्या की समाप्ति करके, सेवक को अपने पावन दर्शनों से पूत करने के लिए आप पधारे हैं! बोलिए नाथ, बोलिए प्रभो, यह दास आपके चरणों के निकट नतजानु, नतमस्तक हो कर प्रार्थना कर रहा है।"

लम्बी साँस लेकर कविराज जी ने माधव से कहा—"हा हरि! अच्छा चलो; मैं महानारायण तेल दूँगा। इन्हें ऐसी जगह में रखो, जहाँ हवा न आती हो। ब्राह्मी तथा चन्द्रोदय का सेवन कराना भी बहुत जरूरी है।"

कविराजजी चलते बने। दोनों आँखों में आँसू भर कर—आकाश की ओर देखते हुए रामधन बोला—"स्वप्न की तरह आये और चले गये! हृदय गंगा के तट पर क्षण भर खड़े हो कर अनन्त में विलीन हो गये! यही संसार का नियम है। अहा, कैसी ज्योति थी! कैसी प्रभा थी!! ऋषि थे, आदि कवि थे। मुझे अपने अमर उपदेशों और पवित्र अनुष्टुप छन्दों के द्वारा, जीवन-चरण से मुक्त करने आये थे।"

फिर पत्नी की ओर घूम कर रामधन ने कहा—"भद्रे! इस समय मैं रामगिरि या उज्जयिनी जाना चाहता हूँ। पाटलिपुत्र और अंग-बंग कलिंग आदि के भी पावन दर्शन करने हैं। तरु-पत्रों के श्रवण-सुखद रव में, प्रभु मेरा आह्वान कर रहे हैं। ये नव दल-भार-नम्र, अरुण राग-रंजित कोमल किसलय, मेरे हृदय धन के हाथों की याद दिला रहे हैं। यह विराट आह्वान है, मूक निमंत्रण है। वन-विहंगम स्वर्णपिञ्जर में सुखी नहीं रह सकता। उस मुक्त-पवन में स्वेच्छानुसार विचरण करने और हृदय के तरंगित उच्छ्वास को संगीत के रूप में प्रकट होने दो। आर्य चम्पक-वरणि सुमुखि, क्षमा करो। ऐसी क्रूरता अच्छी नहीं।"

रामधन उठ खड़ा हुआ और अधखुली आँखो से इधर-उधर देखता मन्द-मन्थर गति से एक ओर चल पड़ा। पत्नी की बाधा उसे रोक न सकी। लाचार वह चिल्ला उठी। मुहल्ले वालों की भीड़ लग गयी।

रामधन ने सब को सम्बोधित करके कहा—"अहा विश्वबन्धु, आज मेरे सम्मुख महामानव का मेला लगा हुआ है। अनन्त जन-समूह के रूप में मैं अपने प्रियतम के विराट रूप की झलक देख रहा हूँ। आज मेरा जीवन धन्य हो गया।"

चेथरू तेली बोला—"अरे, यह तो पागल हो गया।"

बेचारा रामधन कवि पकड़ कर कोठरी में बन्द कर दिया गया।

* * *

माँ सरस्वती ने कवियों को बुलाया और कहा—'देखो, रामधन हठात् कवि हो गया। उसकी कैसी दशा हुई!"

कवियों ने कहा—"माँ, वह विशेष शिक्षित न था। उसका परिवार भी मूर्ख था। इसीलिए उसके साथ क्रूरता की गयी। एक बार और अवसर दीजिये।"

'तथास्तु' कह कर माँ अन्तर्धान हो गयी।

❀ ❀ ❀

एस० एन० सिंह विख्यात डिप्टी मैजिस्ट्रेट हैं। सजा करने तथा जुर्माना करके सरकारी कोष भरने की आप सतत चेष्टा किया करते हैं। इजलास पर बैठे-बैठे आप अचानक चौंक उठे और आरोपी के वकील से कहा—"प्रिय बन्धु, इस अनन्त संसार में, चिन्ता-शोकादि के घात-प्रतिघातों को सहते हुए हम काल-यापन करते हैं। यहाँ और है ही क्या? एतदर्थ अपराधी को मैं प्रेम से गले लगाता हूँ, तथा उसके साथ गहरी सहानुभूति रखते हुये, उसे घर जाने को कहता हूँ। इन खिले हुए फूलों को देखो और देखो इस मुक्तपवन को। इनके साथ आनन्दोपभोग करने और जी-खोल कर विहार करने का सब को समान अधिकार है। (अपराधी से) प्यारे भाई, तुम्हारे पतन का मुझे विशेष दुःख है। जाओ, घर जा कर अपने चाँद के टुकड़े-से बच्चे तथा प्रभात-सी पवित्र पत्नी को गले लगाओ।"

वकीलों की ओर घूम कर आपने कहा—"हे भाइयो, आज मेरा हृदय रवि रश्मियों की उज्ज्वल प्रकाश-धारा में नृत्य कर रहा है। चलो इस कमरे के बाहर। अहा! देखो, पक्षी गा रहे हैं। सुनो उनके हृदय का मूक-निवेदन।"

सारा न्यायालय दंग रह गया। डिप्टी साहब अपराधी को गले लगा कर रोने लगे!

गोरे जिलाधीश ने मि० सिंह को बुला कर पूछा—"यह बेकानून

कार्रवाई क्यों की गयी ?"

मि० सिंह ने स्नेह-गद्‌गद् कंठ से कहा—"हे सखे, इस विराट् विश्व को देखो और देखो संसार के तृषित हृदय को। उसमें वासना की ज्वाला—"

जिलाधीश बीच में ही रोक कर बोला—"यह क्या बोल रहे हैं ? मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि ऐसी बेकानूनी कार्रवाई क्यों की गयी ! आपको बतलाना होगा !"

आकाश की ओर दोनों हाथ उठा कर मि० सिंह बोले—"न्याय कैसा ? परमात्मा के राज्य में तुम्हें और मुझे न्याय करने का अधिकार नहीं है। न्याय ? न्याय परमात्मा करता है। देखो उसके राजसिंहासन को। वह हमारे तुम्हारे—सभी के—हृदय में स्थिर है। चँदोआ की भाँति उसके सिर पर अनन्त आकाश तना हुआ है। अपने कल-कल स्वर में निर्झर उसकी प्रशंसा के गीत गा रहे हैं। सागर शंखनाद कर रहा है।"

कलक्टर कुछ भी न समझ सका। घबरा कर उसने मि० सिंह को समीप बुलाया।

जिलाधीश ने कहा—"मि० सिंह, मैं जानता हूँ, आप विद्वान् और अनुभवी शासक हैं। मुझे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि आपके द्वारा न्याय की छीछालेदर हुई है। क्या यह सच है कि आज आपने भयंकर बेकानून कार्रवाई की है ?"

मि० सिंह बोले—"बन्धु आओ तुम्हें हृदय से लगा लूँ। तुम भ्रमजाल में पड़े हो। मैं नहीं समझता न्याय क्या बला है ! निर्झर के कलरव में पतित पावनी की तरंग माला में, चन्द्रमा की अमल धवल चन्द्रिका में, जो एक विराट् संदेश फूट उठा है, उसके सामने दूसरा न्याय-अन्याय कुछ नहीं है। इस मिथ्या जगत में नीरस न्याय—"

बेचारा कलक्टर घबरा उठा और बोला—"चुप रहो !"

बलपूर्वक कलक्टर को हृदय से लगाते हुये मि० सिंह स्नेह-विजड़ित स्वर में बोले—"चलो, हम-तुम दोनों प्रकृति के अछोर अंचल में आनन्द से विचरण करें। तितली के साथ लुकाचोरी और श्याम-सजल मेघ-घटाओं के साथ—"

कलक्टर चिल्ला उठा—"ओह! तुम ज़रूर पागल हो गये हो!" घन्टी बजी और चपरासी ने प्रवेश किया।

* * *

गंभीर घोष के साथ—स्वर्ग में—भगवती भारतीय के मन्दिर का द्वार खुला! माता ने कवियों का आह्वान किया।

माँ बोली—"वत्स, मैंने अपना प्रण पूरा किया। रामधन कवि होकर नरकवास कर रहा था। घबरा कर उसने आत्महत्या कर ली। उसके स्त्री-बच्चे-दाने-दाने को तरस रहे हैं। यह दूसरा कवि आज पागलखाने में बन्द है। बेटा, इस समय भारत को कवियों की आवश्यकता नहीं, यह मैं पहले ही कह चुकी थी। श्मशान में कोयल नहीं, गिद्धों की शोभा होती है।"

कवियों ने माता को प्रणाम किया और क्षमा माँगी।

माँ हँसती हुई मन्दिर के भीतर चली गयी। द्वार बन्द हो गया। सारा स्वर्गलोक भारती के मुखचन्द्र की हँसी से खिलखिला कर हँस उठा; पर अभागा भारत अर्थशून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखता हुआ सावन-भादों की आँखों के आठ-आठ आँसू रो उठा।

रोज़

[अज्ञेय]

दोपहर में उस घर के सूने आँगन में पैर रखते ही मुझे ऐसा जान पड़ा, मनों उस पर किसी शाप की छाया मँडरा रही हो, उसके वातावरण में कुछ ऐसा अकथ्य, अस्पृश्य, किन्तु फिर भी बोझल और प्रकम्पमय और घना-सा फैल रहा था......

मेरी आहट सुनते ही मालती बाहर निकलीं। मुझे देख कर, पहचान कर उसकी मुरझाई हुई मुख-निद्रा तनिक से मीठे विस्मय से जगी-सी और फिर पूर्ववत् हो गयी। उसने कहा—"आ जाओ।" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये भीतर की ओर चली। मैं भी उसके पीछे हो लिया।

भीतर पहुँच कर मैंने पूछा—"वे यहाँ नहीं हैं ?"

"अभी आये नहीं, दफ्तर में हैं। थोड़ी देर में आ जायेंगे। कोई डेढ़-दो बजे आया करते हैं।"

"कब के गये हुये हैं ?"

"सबेरे उठते ही चले जाते हैं—"

मैं 'हूँ' कह कर पूछने को हुआ "और तुम इतनी देर क्या करती हो ?" पर फिर सोचा, आते ही एकाएक यह प्रश्न ठीक नहीं है। मैं कमरे के चारों ओर देखने लगा।

मालती एक पंखा उठा लायी, और मुझे हवा करने लगी। मैंने आपत्ति करते हुये कहा—"नहीं, मुझे नहीं, चाहिये।" पर वह नहीं मानी, बोली—"वाह ! चाहिये कैसे नहीं ? इतनी धूप में तो आये हो। यहाँ तो—"

मैंने कहा—"लाओ मुझे दे दो।"

वह शायद 'ना' करने को थी, पर तभी दूसरे कमरे से शिशु के रोने की आवाज़ सुन कर उसने चुपचाप पंखा मुझे दे दिया और घुटनों पर हाथ टेक कर एक थकी हुई, 'हुँह' करके उठी और भीतर चली गयी।

मैं उसके जाते हुये दुबले शरीर को देख कर सोचता रहा—यह क्या है...यह कैसी छाया सी इस घर पर छायी हुई है।

मालती मेरी दूर के रिश्ते की बहिन है, किन्तु उसे सखी कहना ही उचित है, क्योंकि हमारा परस्पर संबन्ध सख्य का ही रहा है। हम बचपन से इकट्ठे खेले हैं, इकट्ठे लड़े और पिटे हैं, और हमारी पढ़ाई भी बहुत-सी इकट्ठे ही हुई थी। और हमारे व्यवहार में सदा सख्य की स्वेच्छा से स्वछंदता रही है, वह कभी भातृत्व के, या बड़े छोटेपन के बंधनों में नहीं घिरा।

मैं कोई चार वर्ष के बाद उसे देखने आया हूँ। जब मैंने उसे इससे पूर्व देखा था, तब वह लड़की ही थी; अब वह विवाहिता है, एक बच्चे की माँ भी है। इससे कोई परिवर्तन उसमें आया होगा और यदि आया होगा तो क्या, मैंने अभी तक सोचा नहीं था; किन्तु अब उसकी पीठ की ओर देखता हुआ मैं सोच रहा था, यह कैसी छाया इस घर पर छाई हुई है...और विशेषतया मालती पर...

मालती बच्चे को लेकर लौट आयी और फिर मुझसे कुछ दूर नीचे बिछी हुई दरी पर बैठ गयी। मैंने अपनी कुर्सी घुमा कर कुछ उसकी ओर उन्मुख हो कर पूछा "इसका नाम क्या है?"

मालती ने बच्चे की ओर देखते हुये उत्तर दिया—"नाम तो कोई निश्चित नहीं किया, वैसे टिटी कहते हैं।"

मैंने उसे बुलाया—"टिटी! टिटी! आ जा?" पर वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से मेरी ओर देखता हुआ अपनी माँ से चिपट गया, और रुआँसा-सा होकर कहने लगा उहुँ-उहुँ-ऊँ......"

मालती ने फिर उसकी ओर एक नजर देखा, और फिर बाहर आंगन की ओर देखने लगी।

काफ़ी देर मौन रहा। थोड़ी देर तक तो मौन आकस्मिक ही था, जिसमें मैं प्रतीक्षा में था कि मालती कुछ पूछे; किन्तु उसके बाद एकाएक मुझे ध्यान हुआ, मालती ने कोई बात ही नहीं की—यह भी नहीं पूछा कि मैं कैसे हूँ, कैसे आया हूँ,—चुप बैठी है, क्या विवाह के दो वर्ष में ही वे बीते दिन भूल गयी? या अब मुझे दूर—इस विशेष अंतर पर—रखना चाहती है? क्योंकि वह निर्बाध स्वच्छंदता अब तो नहीं हो सकती......पर फिर भी ऐसा मौन, जैसा अजनबी से भी नहीं होना चाहिये......

मैंने कुछ खिन्न-सा होकर, दूसरी ओर देखते हुये कहा—"जान पड़ता है तुम्हें मेरे आने से विशेष प्रसन्नता नहीं हुई।"

उसने एकाएक चौंक कर कहा—"हूँ?"

यह 'हूँ' प्रश्नसूचक था, किन्तु इस लिये नहीं कि मालती ने मेरी बात सुनी नहीं थी, केवल विस्मय के कारण। इसीलिए मैंने अपनी बात दुहराई नहीं, चुप बैठ रहा। मालती कुछ बोली ही नहीं, तब थोड़ी देर बाद मैंने उसकी ओर देखा। वह एकटक मेरी ओर देख रही थी; किन्तु मेरे उधर उन्मुख होते ही उसने आँखें नीची कर लीं। फिर भी मैंने देखा—उन आँखों में कुछ विचित्र सा भाव था; मानों मालती के भीतर कहीं कुछ चेष्टा कर रहा हो, किसी बीती हुई बात को याद करने की, किसी बिखरे हुये वायुमण्डल को पुनः जगा कर गतिमान करने की, किसी टूटे हुये व्यवहार तंतु को पुनरुज्जीवित करने की और चेष्टा में सफल न हो रहा हो...वैसे जैसे बहुत देर से प्रयोग में न लाये हुये अंग को कोई व्यक्ति एकाएक उठाने लगे और पाये कि वह उठता नहीं है, चिर विस्मृति में मानों मर गया है, उतने

क्षीण बल से (यद्यपि वह सारा प्राप्य बल है) नहीं उठ सकता......
मुझे ऐसा जान पड़ा, मानों किसी जीवित प्राणी के गले में किसी मृत जंतु का तौक डाल दिया गया हो, वह उसे उतार कर फेंकना चाहे, पर उतर न पाए......

तभी किसी ने द्वार खटखटाए। मैंने मालती की ओर देखा, पर वह हिली नहीं। जब किवाड़ दूसरी बार खटखटाए गए, तब वह शिशु को अलग करके उठी और किवाड़ खोलने गयी।

वे, यानी मालती के पति आये। मैंने उन्हें पहली ही बार देखा था, तथापि फोटो से उन्हें पहचानता था। परिचय हुआ। मालती खाना तैयार करने आँगन में चली गयी, और हम दोनों भीतर बैठ कर बातचीत करने लगे—उनकी नौकरी के बारे में उनके जीवन के बारे में, उस स्थान के बारे में, आबोहवा के बारे में और ऐसे अन्य विषयों के बारे में जो पहिले परिचय पर उठा करते हैं, एक तरह का स्वरक्षात्मक कवच बन कर......

मालती के पति का नाम है महेश्वर। वे एक पहाड़ी गाँव में सरकारी डिस्पेंसरी के डाक्टर हैं। उसी हैसियत से इन क्वार्टर्स में रहते हैं। प्रातःकाल सात बजे डिस्पेंसरी चले जाते हैं और डेढ़ या दो बजे लौटते हैं। उसके बाद दोपहर भर छुट्टी रहती है, केवल शाम को एक दो घंटे चक्कर लगाने के लिये चले जाते हैं। डिस्पेंसरी के साथ के छोटे-से अस्पताल में पड़े हुए रोगियों को देखने और अन्य जरूरी हिदायतें करने—उनका जीवन भी बिल्कुल एक निर्दिष्ट ढर्रे पर चलता है। नित्य वही काम, उसी प्रकार के मरीज, वही हिदायतें, वही नुस्खे, वही दवाइयाँ......वे स्वयं सताए हुए हैं, और इसीलिए और साथ ही इस भयंकर गर्मी के कारण वे अपने फुरसत के समय में भी सुस्त ही रहते हैं।

मालती हम दोनों के लिए खाना ले आयी। मैंने पूछा—'तुम नहीं

खाओगी ? या खा चुकी ?"

महेश्वर बोले, कुछ हँस कर—"वह पीछे खाया करती है...।"

पति ढाई बजे खाना खाने आते हैं, इसलिए पत्नी तीन बजे तक भूखी बैठी रहेगी !

महेश्वर खाना आरम्भ करते हुए मेरी ओर देख कर बोले—"आपको तो खाने का मजा ही क्या आएगा, ऐसे बेवक्त खा रहे हैं !"

मैंने उत्तर दिया—"वाह ! देर से खाने पर तो और भी अच्छा लगता है—भूख बढ़ी हुई होती है । पर शायद मालती बहिन को कष्ट होगा—"

मालती टोक कर बोली—"उहुँ, मेरे लिए तो यह नयी बात नहीं है—रोज ही ऐसा होता है......"

मालती बच्चे को गोद में लिये हुए थी । बच्चा रो रहा था; पर उसकी ओर कोई भी ध्यान नहीं दे रहा था ।

मैंने कहा—"यह रोता क्यों है ?"

मालती बोली—"हो ही गया है चिड़चिड़ा-सा, हमेशा ही ऐसा रहता है ।" फिर बच्चे को डाँट कर कहा—"चुप कर !" जिससे वह और भी रोने लगा । मालती ने भूमि पर बैठा दिया और बोली—"अच्छा, ले रो ले !" और रोटी लेने आँगन की ओर चली गयी ।

जब हमने भोजन समाप्त किया, तीन बजने वाले थे । महेश्वर ने बताया कि उन्हें आज जल्दी अस्पताल जाना है, वहाँ एक दो चिन्ता जनक केस आये हुए हैं, जिनका आपरेशन करना पड़ेगा—दो की शायद टाँगें काटनी पड़ें, Gangrene हो गया है—थोड़ी ही देर में वे चले गये । मालती किवाड़ बन्द कर आयी और मेरे पास बैठने ही लगी थी कि मैंने कहा—"अब खाना तो खा लो, मैं उतनी देर टिटी से खेलता हूँ ।"

वह बोली—"खा लूँगी, मेरे खाने की कौन बात है," किन्तु चली

गयी। मैं टिटी को हाथ में ले कर झुलाने लगा, जिससे वह कुछ देर के लिये शान्त हो गया।

दूर—शायद अस्पताल में ही, तीन खड़के। एकाएक मैं चौंका। मैंने सुना, मालती वहीं आँगन में बैठी, अपने-आप ही, एक लम्बी-सी, थकी हुई साँस के साथ कह रही है—"तीन बज गये......" मानों बड़ी तपस्या के बाद कोई कार्य संपन्न हो गया है.......

थोड़ी ही देर में मालती फिर आ गयी। मैंने पूछा—तुम्हारे लिये कुछ बचा भी था? सब कुछ तो......"

"बहुत था—"

"हाँ, बहुत था! भाजी तो सारी मैं ही खा गया था, वहाँ बचा कुछ होगा नहीं, यों ही रोब तो न जमाओ कि बहुत था! मैंने हँस कर कहा।

मालती मानो किसी और विषय की बात कहती हुई, बोली—"यहाँ सब्जी-वब्जी तो कुछ होती नहीं, कोई आ-जाता है, तो नीचे से मँगा लेते हैं। मुझे आये पन्द्रह दिन हुए हैं, जो सब्जी साथ लाए थे, वही अभी बर्ती जा रही है......।"

मैंने पूछा—"नौकर कोई नहीं है?"

कोई ठीक मिला नहीं, शायद दो-एक दिन में हो जाय।"

"बर्तन भी तुम्हीं माँजती हो?"

"और कौन?" कह कर मालती क्षण-भर आँगन में जाकर लौट आयी।

मैंने पूछा—"कहाँ गई थीं?"

"आज पानी ही नहीं है, बर्तन कैसे मँजेंगे।

"क्यों पानी को क्या हुआ!"

"रोज़ ही होता है—कभी वक्त पर तो आता नहीं। आज शाम को सात बजे आयेगा, तब बर्तन मँजेंगे।"

"चलो, तुम्हें सात बजे तक छुट्टी तो हुई"—कहते हुये मैं मन ही मन सोचने लगा, "अब इसे रात के ग्यारह बजे तक काम करना पड़ेगा, छुट्टी क्या खाक हुई !"

यही उसने कहा। मेरे पास कोई उत्तर नहीं था; पर मेरी सहायता टिटी ने की, एकाएक फिर रोने लगा और मालती के पास जाने की चेष्टा करने लगा। मैंने उसे दे दिया।

थोड़ी देर फिर मौन रहा। मैंने जेब से अपनी नोटबुक निकाली, और पिछले दिनों के लिखे हुये नोट देखने लगा। तब मालती को याद आया कि उसने मेरे आने का कारण तो पूछा नहीं, "यहाँ आए कैसे ?"

मैंने कहा ही तो—"अच्छा, अब याद आया ? तुमसे मिलने आया था, और क्या करने ?"

"तो दो-एक दिन रहोगे न ?"

"नहीं, कल चला जाऊँगा, जरूरी जाना है।"

मालती कुछ नहीं बोली, कुछ खिन्न-सी हो गई। मैं फिर नोटबुक की तरफ देखने लगा।

थोड़ी देर बाद मुझे भी ध्यान हुआ, मैं आया तो हूँ मालती से मिलने, किन्तु यहाँ वह बात करने को बैठी है और मैं पढ़ रहा हूँ ! पर बात भी क्या की जाय ? मुझे ऐसा लग रहा था कि इस घर पर जो छाया घिरी हुई है, वह अज्ञात रह कर भी मानों मुझे भी वश कर रही है, मैं भी वैसा ही नीरस, निर्जीव-सा हो रहा हूँ, जैसे—हाँ जैसे यह घर, जैसे मालती......

मैंने पूछा—"तुम कुछ पढ़ती-लिखती नहीं ?" मैं चारों ओर देखने लगा कि कहीं किताबें दीख पड़ें।

"यहाँ ?" कह कर मालती थोड़ा-सा हँस दी। वह हँसी कह रही थी—यहाँ पढ़ने को है क्या ?

मैंने कहा—"अच्छा, मैं वापस जा कर जरूर कुछ पुस्तकें भेजूँगा......" और वार्तालाप फिर समाप्त हो गयी।

थोड़ी देर बाद मालती ने फिर पूछा—"आए कैसे हो, लारी में?"

"पैदल।"

"इतनी दूर? बड़ी हिम्मत की!"

"आखिर तुमसे मिलने आया हूँ।"

"ऐसे ही आए हो?"

"नहीं, कुली पीछे आ रहा है, सामान लेकर। मैंने सोचा—बिस्तरा ले ही चलूँ।"

"अच्छा किया, यहाँ तो बस......" कह कर मालती चुप रह गयी। फिर बोली—"तब तुम थके होगे, लेट जाओ।"

"नहीं, बिल्कुल नहीं थका।"

"रहने भी दो, थके नहीं हैं! भला थके हैं!"

"और तुम क्या करोगी।"

"मैं बर्तन माँज रखती हूँ, पानी आएगा तो धुल जायँगे!"

मैंने कहा—"वाह!" क्योंकि और कोई बात मुझे सूझी नहीं...

थोड़ी देर में मालती उठी और चली गयी, टिटी को साथ ले कर। तब मैं भी लेट गया और छत की ओर देखने लगा, और सोचने लगा...मेरे विचारों के साथ आँगन से आती हुई बर्तनों के घिसने की खन-खन ध्वनि मिल कर एक विचित्र एकस्वरता उत्पन्न करने लगी, जिसके कारण मेरे अंग धीरे-धीरे ढीले पड़ने लगे, मैं ऊँघने लगा...

एकाएक वह एकस्वरता टूट गयी—मौन हो गया। इससे मेरी तंद्रा भी टूटी, मैं उस मौन में सुनने लगा।

चार खड़क रहे थे, और इसी का पहला घंटा सुन कर मालती रुक गई थी......

वही तीन बजे वाली बात मैंने फिर देखी, अब की बार और भी

उग्र रूप में। मैंने सुना, मालती एक बिल्कुल अनैच्छिक, अनुभूतिहीन नीरस, यंत्रवत्—वह भी थके हुए यंत्र की भाँति—स्वर में कह रही है—"चार बज गये......" मानो इस अनैच्छिक समय गिनने-गिनने में ही उसका मशीन-तुल्य जीवन बीतता हो, वैसे ही, जैसे मोटर का स्पीडोमीटर यंत्रवत् फ़ासला नापता जाता है, और यंत्रवत् विश्रांत स्वर में कहता है (किससे ?) कि मैं अपने अमित शून्य पथ का इतना अंश तय कर लिया......न जाने कब, कैसे मुझे नींद आ गयी .....

* * *

तब छः कभी के बज चुके थे, जब किसी के आने की आहट से मेरी नींद खुली और मैंने देखा कि महेश्वर लौट आए हैं, और उनके साथ ही बिस्तर लिए हुए मेरा कुली। मैं मुँह धोने को पानी माँगने ही को था कि मुझे याद आया, पानी नहीं होगा। मैंने हाथों में मुँह पोंछते-पोंछते महेश्वर से पूछा—"आपने बड़ी देर की ?"

उन्होंने किंचित ग्लानि-भरे स्वर में कहा "हाँ, आज वह Gangrene का आपरेशन करना ही पड़ा। एक कर आया हूँ, दूसरे को एम्बुलेन्स में बड़े अस्पताल भिजवा दिया है।"

मैंने पूछा—"Gangrene कैसे हो गया ?"

"एक काँटा चुभा था, उसी से हो गया। बड़े लापरवाह लोग रहते हैं यहाँ के......।"

मैंने पूछा—"यहाँ आपको केस अच्छे मिल जाते हैं ? आय के लिहाज से नहीं डाक्टरी के अभ्यास के लिये ?"

बोले—"हाँ, मिल ही जाते हैं। यही Gangrene हर दूसरे-चौथे दिन एक केस आ जाता है। नीचे बड़े अस्पतालों में भी......"

मालती आँगन से ही सुन रही थी, अब आ गयी, बोली—"हाँ; केस बनते देर क्या लगती है ? काँटा चुभा था, उस पर टाँग काटनी

पड़े, यह भी कोई डाक्टरी है? हर दूसरे दिन किसी की टाँग, किसी की बाँह काट आते हैं, इसी का नाम है अच्छा अभ्यास!"

महेश्वर हँसे। बोले—न काँटे तो उसकी जान गँवाएँ?

"हाँ! पहले तो दुनिया में काँटे ही नहीं होते होंगे? आज तक तो सुना नहीं था कि काँटों के चुभने से मर जाते हों।"

महेश्वर ने उत्तर नहीं दिया; मुस्करा दिये। मालती मेरी ओर देख कर बोली—"ऐसे ही होते हैं डाक्टर! सरकारी अस्पताल है न क्या परवाह है। मैं तो रोज़ ही ऐसी बातें सुनती हूँ। अब कोई मर-मुर जाय तो खयाल ही नहीं होता। पहले तो रात-रात भर नींद नहीं आया करती थी।"

तभी आँगन में खुले हुए नल ने कहा—टिप, टिप, टिप, टिप... मालती ने कहा—"पानी।" और उठ कर चली गयी। 'खनखन' शब्द से हमने जाना, बर्तन धोए जाने लगे हैं।

टिटी महेश्वर की टाँगों के सहारे खड़ा मेरी ओर देख रहा था। अब एकाएक उन्हें छोड़ कर मालती की ओर खिसकता हुआ चला। महेश्वर ने कहा—"उधर मत जा।" और उसे गोद में उठा लिया। वह मचलने और चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा।

महेश्वर बोले—"अब रो-धो कर सो जायगा, तभी घर में चैन पड़ेगी।"

मैंने पूछा—"आप लोग भीतर ही सोते हैं? गर्मी तो बहुत होती है?"

"होने को तो मच्छर भी बहुत होते हैं, पर ये लोहे के पलंग उठा कर बाहर कौन ले जाए! अब की नीचे जाएँगे, तो चारपाइयाँ ले जाएँगे।" फिर कुछ रुक कर बोले—"आज तो बाहर ही सोएँगे। आपके आने का इतना लाभ ही होगा।"

टिटी अभी तक रोता ही जा रहा था। महेश्वर ने उसे एक पलंग

पर बिठा दिया, और पलंग बाहर खींचने लगे। मैंने कहा, "मैं मदद करता हूँ" और दूसरी ओर से पलंग उठा कर बाहर निकलवा दिये।

अब हम तीनों—महेश्वरी, टिटी और मैं, दो पलंगों पर बैठ गए और वार्तालाप के लिए उपयुक्त विषय न पाकर उस कमी को छिपाने के लिए टिटी से खेलने लगे। बाहर आ कर वह चुप हो गया था; किन्तु बीच-बीच में जैसे एकाएक कोई भूला हुआ कर्तव्य याद करके रो उठता था और फिर एकदम चुप हो जाता था...और तब कभी-कभी हम हँस पड़ते थे, यह महेश्वर उसके बारे में कुछ बात कह देते थे......

मालती बर्तन धो चुकी थी। जब वह उन्हें ले कर आँगन के एक ओर रसोई के छप्पर की ओर चली, तब महेश्वर ने कहा—'थोड़े से आम लाया हूँ, वे भी धो लेना।"

"कहाँ हैं?"

"अँगीठी पर रखे हैं—कागज़ में लिपटे हुए।"

मालती ने भीतर जा कर आम उठाये और अपने आँचल में डाल लिये। जिस कागज़ में वे लिपटे हुए थे, वह किसी पुराने अखबार का टुकड़ा था। मालती चलती-चलती संध्या के उस क्षीण प्रकाश में उसी को पढ़ती जा रही थी......वह नल के पास जाकर खड़ी हो उसे पढ़ती रही, जब दोनों ओर पढ़ चुकी तब एक लम्बी साँस ले कर उसे फेंक कर आम धोने लगी।

मुझे एकाएक याद आया......बहुत दिनों की बात थी—जब हम अभी स्कूल में भरती हुए ही थे। जब हमारा सबसे बड़ा सुख, सबसे बड़ी विजय थी, हाजिरी हो चुकने के बाद चोरी से स्कूल से निकल भागना और स्कूल से कुछ दूर पर आम के बगीचे में पेड़ों पर चढ़ कर कच्ची अमियाँ तोड़-तोड़ कर खाना। मुझे याद आया—कभी जब मैं भाग आता था और मालती नहीं आ पाती थी, तब मैं खिन्न मन लौट जाया करता था......

मालती कुछ नहीं पढ़ती थी, उसके माता-पिता तंग थे। एक दिन उसके पिता ने उसे एक पुस्तक लाकर दी, और कहा कि इसके बीस पेज रोज़ पढ़ा करो। हफ़्ते भर बाद मैं देखूँ कि इसे समाप्त कर चुकी हो। नहीं तो मार मार कर चमड़ी उधेड़ दूँगा। मालती ने चुपचाप किताब ले ली, पर क्या उसने पढ़ी ? वह नित्य ही उसके दस पन्ने, बीस पेज, फाड़ कर फेंक देती। जब आठवें दिन उसके पिता ने पूछा, "किताब समाप्त कर ली ?" तो उत्तर दिया—"हाँ; कर ली।" पिता ने कहा, "लाओ, मैं प्रश्न पूछूँगा।"—तो चुप खड़ी रही। पिता ने फिर कहा, तो उद्धत स्वर में बोली—"किताब मैंने फाड़ कर फेंक दी है। मैं नहीं पढ़ूँगी।"

उसके बाद वह बहुत पिटी, पर वह अलग बात है......इस समय मैं यही सोच रहा था कि वही उद्धत और चंचल मालती आज कितनी सीधी हो गई है, कितनी शान्त, और एक अखबार के टुकड़े को तरसती है......यह क्या है, यह......

तभी महेश्वर ने पूछा—"रोटी कब बनेगी ?"

"बस अभी बनाती हूँ।"

पर अब की बार जब मालती रसोई की ओर चली, तब टिटी की कर्तव्य-भावना बहुत विस्तीर्ण हो गयी। वह मालती की ओर हाथ बढ़ा कर रोने लगा और नहीं माना, नहीं माना। मालती उसे भी गोद में लेकर चली गयी। रसोई में बैठ कर एक हाथ से उसे थपकाने और दूसरे हाथ से कई एक छोटे-छोटे डिब्बे उठा कर अपने सामने रखने लगी।...

और हम दोनों चुपचाप रात्रि की, और भोजन की, और एक दूसरे के कुछ कहने की, और न जाने किस-किस न्यूनता की पूर्ति की, प्रतीक्षा करने लगे।

* * *

हम भोजन कर चुके थे और बिस्तर पर लेट गए थे। टिटी सो गया था, मालती उसे अपने पलंग के एक ओर मोमजामा बिछा कर उस पर लिटा गई थी। वह सो तो गया था; पर नींद में कभी-कभी चौंक उठता था। एक बार तो उठ कर बैठ भी गया था, पर तुरन्त ही लेट गया।

मैंने महेश्वर से पूछा—"आप तो थके होंगे, सो जाइये!"

वे बोले—"थके तो आप अधिक होंगे—अठारह मील पैदल चल कर आये हैं।" किन्तु उनके स्वर ने मानो जोड़ दिया—"थका तो मैं भी हूँ।"

मैं चुप हो रहा। थोड़ी देर में किसी अपर संज्ञा ने मुझे बताया, वे ऊँघ रहे हैं।

तब लगभग साढ़े दस बजे थे। मालती भोजन कर रही थी।

मैं थोड़ी देर मालती की ओर देखता रहा, वह किसी विचार में (यद्यपि बहुत गहरे विचार में नहीं) लीन हुई धीरे-धीरे खाना—खा रही थी। फिर मैं इधर-उधर खिसक कर, पलंग पर आराम से होकर, आकाश की ओर देखने लगा।

पूर्णिमा थी। आकाश अनभ्र था।

मैंने देखा—उस सरकारी क्वार्टर की दिन में अत्यंत शुष्क और नीरस लगने वाली, स्लेट की छत की स्लेटें भी चाँदनी में चमक रही हैं, अत्यन्त शीतलता और स्निग्धता से छलक रही हैं, मानो चन्द्रिका उन पर से बहती हुई आ रही हो, झर रही हो...

मैंने देखा—पवन में चीड़ के वृक्ष—गर्मी से सूख कर मटमैले हुए चीड़ के वृक्ष—धीरे-धीरे गा रहे हैं—कोई राग जो कोमल है, किन्तु करुण नहीं; अशांतमय है, किन्तु उद्वेगमय नहीं......

मैंने देखा—दिन भर तपन, अशांति, थकान, दाह, पहाड़ों में से भाप की नाईं उठ कर वातावरण खोए जा रहे हैं, और ऊपर से

एक कोमल, शीतल, सम्मोहन, अह्लाद-सा बरस रहा है, जिसे ग्रहण करने के लिये पर्वत-शिशुओं ने अपनी चीड़-वृक्ष रूपी भुजाएँ आकाश की ओर बढ़ा रखी हैं।

पर यह सब मैंने ही देखा, अकेले मैंने...महेश्वर ऊँघ रहे थे, और मालती उस समय भोजन से निवृत्त हो कर, दही जमाने के लिए मिट्टी का बर्तन गर्म पानी से धो रही थी और कह रह थी "बस, अभी छुट्टी हुई जाती है।" और मेरे कहने पर कि "ग्यारह बजने वाले हैं" धीरे से सिर हिला कर जता रही थी कि रोज ही इतने बज जाते हैं......मालती ने वह सब कुछ नहीं देखा। मालती का जीवन अपनी रोज की नियत गति से बहा जा रहा था और एक चंद्रमा की चंद्रिका के लिए एक संसार के सौन्दर्य के लिए रुकने को तैयार नहीं था......

चाँदनी में शिशु कैसा लगता है इस अलस जिज्ञासा से मैंने टिटी की ओर देखा। और एकाएक मानों किसी शैशवोचित वामता से उठा और खिसक कर पलंग के नीचे गिर पड़ा और चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा। महेश्वर ने चौंक कर कहा—"क्या हुआ? मैं झपट कर उसे उठाने दौड़ा, मालती रसोई से बाहर निकल आयी, मैंने उसे 'खट्' शब्द की याद करके धीरे से करुणा भरे स्वर में कहा—"चोट बहुत लग गई बिचारे के......!"

यह सब मानों एक ही क्षण में एक ही क्रिया की गति में हो गया।

मालती ने रोते हुए शिशु को मुझसे लेने के लिए हाथ बढ़ाते हुए कहा—"इसको चोटें लगती ही रहती हैं, रोज ही गिर पड़ता है।"

एक छोटे क्षण-भर के लिए मैं स्तब्ध हो गया। फिर एकाएक मेरे मन ने, समूचे अस्तित्व ने, विद्रोही के स्वर में कहा—कहा मेरे मन के भीतर ही, बाहर एक शब्द भी नहीं निकला—"माँ! युवती माँ! यह तुम्हारे हृदय को क्या हो गया है जो तुम एकमात्र बच्चे के गिरने पर ऐसी

बात कह सकती हो......और यह अभी, जब तुम्हारा सारा जीवन तुम्हारे आगे है !"

और, तब एकाएक मैंने जाना कि वह भावना मिथ्या नहीं है। मैंने देखा कि सचमुच उस कुटुम्ब में कोई गहरी, भयंकर छाया घर कर गई है, उनके जीवन के इस पहले ही यौवन में घुन की तरह लग गई है, उनका इतना अभिन्न अंग हो गई है कि वे उसे पहचानते ही नहीं, उसी की परिधि में घिरे हुए चले जा रहे हैं। इतना ही नहीं, मैंने उस छाया को देख भी लिया।

इतनी देर में, पूर्ववत् शांति हो गई थी ! महेश्वर फिर लेट कर ऊँघ रहे थे। टिटी मालती के लेटे हुए शरीर से चिपट कर चुप हो गया था, यद्यपि कभी एक-आध सिसकी उसके छोटे से शरीर को हिला देती थी। मैं भी अनुभव करने लगा था कि बिस्तर अच्छा-सा लग रहा है। मालती चुपचाप आकाश में देख रही थी; किन्तु क्या चंद्रमा को ! या तारों को ?......

तभी ग्यारह का घंटा बजा। मैंने अपनी भारी हो रही पलकें उठा कर अकस्मात् किसी अस्पष्ट प्रतीक्षा से मालती की ओर देखा। ग्यारह के पहले घंटे की खड़कन के साथ ही मालती की छाती एकाएक फफोले की भाँति उठी और धीरे-धीरे बैठने लगी और घंटा-ध्वनि के कंपन के साथ ही मूक हो जाने वाली आवाज़ में उसने कहा—"ग्यारह बज गये !......"

कामकाज

[चंद्रगुप्त विद्यालंकार

१

बाजार भर में तहलका मच गया। अधेड़ उम्र के एक सज्जन अपने एक नौजवान रिश्तेदार के सहारे अनारकली बाजार के बीचो-बीच चले जा रहे थे। उनकी एक बाँह बंधी हुई थी, कपड़े मैले हो गये थे और मालूम होता था कि बहुत दिनों से ये हजामत नहीं बना पाए। इन सज्जन की आँखों में इतनी गहरी निराशा और असीम व्यथा का भाव स्पष्ट अंकित था कि देखने वाले सहम कर रह जाते थे। उनके पीछे-पीछे चालीस-पचास व्यक्ति चुपचाप चले जा रहे थे। क्वेटा के भूकम्प से बचे हुए आहत व्यक्तियों का पहला बैच आज लाहौर पहुँचा था, और उनमें से सम्भवतः यही एक ऐसे सज्जन थे, जो पैदल चलने लायक बच रहे थे।

लाला कस्तूरीमल अपनी दूकान में खड़े हो कर नये आने वाले कपड़ों के नमूनों की जाँच-पड़ताल कर रहे थे। उनकी निगाह दूर से आते हुए उस मातमी-से मजमें पर पड़ी; मगर उन्होंने उस ओर ध्यान नहीं दिया। दो-एक मिनट में वह सज्जन लाला कस्तूरीमल की दूकान के सामने आ पहुँचे और उन्होंने अपने साथ के नौजवान से कहा—"बेटा, मुझे दो एक कपड़े न खरीद दोगे?

"मैं भी आपसे वही प्रार्थना करने वाला था।"—कह कर नवयुवक उन्हें लाला कस्तूरीमल की दूकान के भीतर ले गया। साथ का सारा मजमा दूकान के बाहर रुक गया।

लाला कस्तूरीमल की दूकान पर सेल्समैन की कमी नहीं है; मगर इन सज्जन की मैली कुचैली हो रही आकृति में भी कुछ ऐसा आकर्षण था कि लाला साहब ने आगे बढ़ कर उनका स्वागत करते हुए पूछा—"कहिए क्या हुक्म है ?

उस सज्जन ने धीरे से कहा—"कुछ धोतियाँ दिखलाइयेगा ?"

उसी वक्त एक आदमी को धोतियाँ लाने का हुक्म हो गया। सहसा लाला कस्तूरीमल को भी जैसे इलहाम-सा हो गया कि यह सज्जन कहाँ से आ रहे हैं। उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ पूछा—आप क्वेटा से आ रहे हैं ?"

"जी हाँ ;"

लाला कस्तूरीमल की उत्सुकता अपनी चरम सीमा तक जा पहुँची। वे पिछले तीन दिनों में कम-से-कम बारह तार क्वेटा को दे चुके थे, और उनमें के एक का भी जवाब नहीं मिला था। उनके बहनोई अपने संपूर्ण परिवार-सहित क्वेटा में ही रहते थे और उनके संबंध में उन्हें अब तक कोई खबर नहीं मिली थी। धोतियों के एक नए आए हुए बंडल का तागा कैंची से काटते हुये उन्होंने जरा व्यग्र भाव से पूछा—"पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट के मि० मधुसूदन को आप जानते हैं ?"

उन वृद्ध सज्जन ने बड़ी गंभीरता के साथ कहा—"जी हाँ ।?"

"उनके घरवालों को भी।"

"जी हाँ, अच्छी तरह।"

लाला कस्तूरीमल ने लाल किनारी की एक धोती उन सज्जन के सामने खोल कर दिखाते हुए पूछा—"यह नागपुर की धोती है।... मि० मधुसूदन शायद उन दिनों दौरे पर थे ?"

"जी नहीं। २६ मई की रात को उन्हें दौरे के लिए रवाना होना था; मगर वे गए नहीं। दौरा उन्होंने अगले दिन के लिए

मुल्तवी कर दिया था।"

एक और जोड़ा उन सज्जन के सामने फैलाते हुए लाला कस्तूरीमल ने कहा—"यह धोती धुलने के बाद बहुत हल्की हो जाती है—ठीक गरमियों के लायक। यह भी नागपुर की है। अच्छा, तो वे दौरे पर नहीं गये?"

"जी, नहीं जा सके।"

"मेरा कोई तार उन्हें नहीं मिला था?"

"मुझे आपके साथ हार्दिक सहानुभूति है। मि० मधुसूदन अब इस दुनिया में नहीं रहे।"

लाला कस्तूरीमल को उन वृद्ध सज्जन की बात पर जैसे रत्ती भर भी विश्वास नहीं आया। धोतियों के ढेर में से एक जोड़ा निकालते हुए उन्होंने कहा—"आप किन मधुसूदन की बात कर रहे हैं?"

"उन्हीं मधुसूदन की, जिनकी पत्नी का नाम उर्मिला है, जो पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेन्ट में इंजीनियर थे और जिनकी कोठी बाबू मोहल्ले के दक्षिण किनारे पर सरकारी हाई स्कूल के खेलने के मैदान के नज़दीक थी।

लाला कस्तूरीमल के चेहरे पर गहरे विषाद की रेखा साफ़-साफ़ दीख पड़ी। डूबा हुआ व्यक्ति जिस तरह तिनके के आसरे को भी नहीं छोड़ना चाहता, उसी तरह लाला कस्तूरीमल ने अपने अविश्वास को जबरदस्ती जमाए रखने की चेष्टा करते हुए कहा—"भूकंप के बाद आप उनके यहाँ गए थे?"

"नहीं जी।"

"फिर आपको कैसे मालूम कि वे नहीं बच पाये?"

"उनके छोटे भाई साहब की जबानी मालूम हुआ। आप बिना किनारे की भी कुछ धोतियाँ दिखाइएगा?"

"मदरासी धोतियाँ। कर्नाटक मिल। पाँच-सात प्लेन डिजाइन फेंको!" लालाजी ने अपने आदमी को आवाज दी और उसके बाद कहा—"उनके भाई साहब से? क्या उन्होंने मि० मधुसूदन का अंतिम संस्कार किया था?"

"जी नहीं! उनको देह मिली ही नहीं। शायद कोठी की खुदाई करने पर कहीं कुछ पता चले।"

दक्षिण के छज्जे पर से पाँच-सात धोतियों का एक ढेर इसी समय लाला कस्तूरीमल के ठीक सामने आ कर गिरा उस उद्विग्नता में भी लाला साहब के हाथ अपनी सहज आदत से गाहक के सामने जोड़ा खोल कर दिखाने लगे—"यह कर्नाटक का माल है। कर्नाटक ने नागपुर को बड़ा धक्का पहुँचाया है।" लाला साहब ने उन वृद्ध सज्जन के अत्यन्त गंभीर बने हुए चेहरे की ओर देखते हुए कहा—"तो फिर क्या यह मुमकिन नहीं कि घर में किसी को इत्तला दिए बिना ही वे दौरे पर चले गए हों?"

"नहीं जी। ऐसा नहीं हुआ। वे लोग रात को बहुत देर तक एक साथ ताश खेलते रहे थे।"

"ये धोतियाँ आप अवश्य पसंद करेंगे। हाँ, उर्मिला का क्या हाल है?"

"अस्पताल में?" लाला कस्तूरीमल की संपूर्ण देह एक बारगी काँप उठी और क्षण-भर के लिए उनके दोनों हाथ धोतियों के ढेर पर से उठ गये—"उनकी हालत कैसी है?"

"चोट तो उन्हें अधिक नहीं लगी, जितना पति और बच्चे के देहांत का सदमा पहुँचा है। आपको अवश्य ही स्वयं क्वेटा जाकर उन्हें लाने का प्रबन्ध करना चाहिए। इस जोड़े की कीमत क्या है?"

"चार रुपया छः आना इसकी खरीद है। मैं आपसे ज्यादा चार्ज नहीं करूँगा। कुछ और भी नमूने दिखाऊँ क्या?"

"आपकी मेहरबानी। बनी-बनाई कमीजें भी तो आपके यहाँ होंगी!"

"आप विदेशी कपड़ा तो नहीं पहनते न?"

"जी नहीं। मुझे स्वदेशी कपड़ा ही चाहिए।"

"हम खुद जहाँ तक बन पड़ता है, स्वदेशी माल ही बेचते हैं। आपने खुद उर्मिला को अस्पताल में देखा था?"

"जी नहीं। यह भी मि० मधुसूदन के भाई साहब ने ही बताया था। मैं खुद चोट खा गया था, कहीं आ जा नहीं सका।"

"आप रेशमी कमीजें चाहते हैं या सूती? दोनों ही देख लीजिए। रामलाल ३८ नम्बर की कमीजे लाना।" और उस एक ही साँस के उत्तर भाग को अत्यधिक करुण और एकदम ठंडा बनाते हुए लाला कस्तूरीमल ने कहा—"तो क्या काशी भी इस दुनिया में नहीं रहा?"

"मुझे इस बात का हार्दिक दुःख है कि ये दारुण समाचार मैं आपको दे रहा हूँ।"

इस समय तक काउंटर पर कमीजों का एक ढेर लग गया था। लाला कस्तूरीमल उस ढेर की कमीजें दिखाते हुए बोले—"यह मुर्शिदाबादी रेशम की कमीजें हैं, यह ढाके के रेशम की और यह काशी के रेशम की। मजबूती के लिहाज़ से यह काश्मीर रेशम सबसे बढ़िया है। मगर यह इत्तू का सूती कपड़ा सबको मात कर गया है। मिल ने हाल ही में कीमतें भी बहुत गिरा दी हैं।" और तब अपने हृदय के कुचले हुए अविश्वास को जबरदस्ती जगा कर लाला कस्तूरी मल ने कहा—"मि० मधुसूदन के भाई तो चमन गए हुए थे।"

"दो एक दिन पहले ही वे क्वेटा पहुँचे थे। उस रात वे बरामदे में सोए थे इसी से बच गये। इस कमीज की कीमत क्या है?"

"तीन रुपया छः आना। आपसे मैं तीन ही लूँगा।"

"धन्यवाद! इस वक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए।"

इसी समय एक संभ्रांत महिला उस दूकान में आयीं। लाला कस्तूरीमल अपने एक सहकारी को उन सज्जन के पास छोड़ कर स्वयं उस महिला की ओर बढ़ गये। उनके चेहरे पर इस समय हद दर्जे की उदासी छाई हुई थी, परंतु उनकी तत्परता पर इस उदासी का कोई प्रभाव न पड़ने पाया था।

२

रावलपिंडी जेल का सब से अधिक ताकतवर और कठोर चौकीदार यूसुफ़ मज़े-मज़े में ग्यारह का घंटा बजा रहा था। सरदियों का मौसम था और मध्याह्न सूर्य की हल्की-हल्की धूप बहुत भली प्रतीत हो रही थी। इसी समय जेल के बड़े फाटक के बाहर से आवाज़ आयी—"तार ले लो।"

ड्योढ़ी में कोई चौकीदार नहीं था। भीतर के सहन से यूसुफ ने तार वाले की आवाज़ सुनी; मगर उसने कोई परवा न की। मज़े-मज़े उसने मुगरी अपनी जगह रखी और धीरे-धीरे फाटक की ओर बढ़ा। तार वाला बहुत अधीर हो रहा था, परंतु यूसुफ़ का डील-डौल देख कर उसे हिम्मत न हुई कि वह उस पर अपना रोब डालने का प्रयत्न करे।

नजदीक आकर यूसुफ़ ने पूछा—"किसका तार है?"

"यूसुफ़ जमादार का।"

अट्टहास करके यूसुफ़ हँस पड़ा। जेल भर में तो कोई यूसुफ़ है नहीं। बाकी रहा वह, सो उसका तार आ ही नहीं सकता। पिछले कई बरसों से जिस आदमी के पास एक चिट्ठी तक नहीं आयी, उसका तार कहाँ से आ सकता है? फिर उसे तार देगा ही कौन? सरहद के जिस अफ़ीदी प्रांत में उसका मकान है, उसके पचास मील की परिधि तक में एक भी डाकखाना या तारघर नहीं। जी-भर हँस लेने के

बाद यूसुफ़ ने कहा—"कहीं गलती से कचहरी के यूसुफ़ का तार जेल के यूसुफ़ के पास तो नहीं ले आये।"

मगर तार सचमुच उसी का था और बहुत शीघ्र उसे मालूम हो गया कि उसके ससुर साहब मरणासन्न हैं। मौत के बाद कोई और व्यक्ति ठीक तौर से उन्हें दफ़ना सकेगा, इस बारे में उन्हें शक था इसीसे उन्होंने यूसुफ़ को बुलाने के लिये तार भिजवाया है।

इस जेल में चौकीदार नियुक्त हुए यूसुफ़ को पन्द्रह बरस बीत चुके हैं। इन पन्द्रह बरसों में वह एक बार भी अपने देश को नहीं गया। कभी किसी बात के लिये दिन की भी छुट्टी नहीं ली। युवावस्था के प्रारम्भिक दिनों में उस अशासित प्रांत में अपने अनेक साथियों के साथ यूसुफ़ ने बीसों साहसिक काम किये हैं—डाके डाले हैं, चोरियाँ की हैं और छोटी-मोटी लड़ाइयाँ भी लड़ी हैं। मगर उसके बाद जब यूसुफ़ का विवाह हो गया, तो उसके श्वसुर-पक्ष का यह सबसे बड़ा उलाहना बन गया कि यूसुफ़ निठल्ला है—न वह खेती-बारी करता है, न वह किसी गिरोह का सरदार है और न सरकार ही से कुछ पाता है। उन उलाहनों से तंग आकर वह अपने देश से भाग खड़ा हुआ और रावलपिंडी पहुँच कर जेल में पहरेदार के पद पर नियुक्त हो गया था। पिछले पन्द्रह बरसों में प्रतिमास वह कम-से-कम दस रुपये अपने श्वसुर साहब के पास भेजता रहा है, मगर न तो खुद कभी उनसे मिलने के लिये गया और न उसने अपनी पत्नी को ही अपने पास बुलवाया।

अपने श्वसुर का तार पाकर सहसा यूसुफ़ को अपनी मातृभूमि की स्मृति हो आयी। वज़ीरिस्तान के वे नंगे पहाड़, उन पहाड़ों पर चरती हुई भेड़ें और उन भेड़ों के साथ-साथ स्वच्छ, हृष्ट पुष्ट और सुन्दर पठान युवतियाँ! उन्हीं सूखी-सी पहाड़ियों पर अंगूर पैदा होते हैं। उसी भूमि की मटियाली-सी सतह पर सरदे बिछे रहते हैं और

वहीं किशमिश न्योजे और बादाम की बहार आती है ! वहाँ आजादी है, वहाँ वीरता है और सबसे बढ़ कर वहाँ पुरुषत्व है। हाँ, यूसुफ़ का बहिश्त वही तो है।

और इसके साथ-ही-साथ उसे अपने श्वसुर की बीमारी का स्मरण हो आया। वह बीमार हो गया है। बुड्ढा है, चल बसेगा। एक दिन जाना ही तो था। इसमें न कोई अचम्भे की बात है, न चिन्ता की और न शोक की। मगर फिर उसने बुलाया। और कौन उसे ठीक तौर से दफना सकेगा। यूसुफ़ को जाना ही चाहिए। वह जायेगा ही।

मातृभूमि की याद से एक विशेष तरह की स्निग्धता का भाव यूसुफ़ के चेहरे पर झलक उठा और पश्तो का एक गीत गुनगुनाता जेलर साहब के दफ़्तर की ओर बढ़ गया। यूसुफ़ के आने से पहले ही उसके तार की बात जेलर साहब को मालूम हो चुकी थी। एक मुसकराहट के साथ उसकी ओर देख कर उन्होंने कहा—क्यों यूसुफ़, पंद्रह साल का रिकार्ड तोड़ कर छुट्टी लेना चाहते हो ?"

यूसुफ़ ने कोई जवाब न दिया।

जेलर साहब ने पूछा—"तुम्हारे ससुर की उम्र कितनी है ?"

"छियत्तर साल।"

"अब भी तुम चाहते हो कि वहाँ पहुँच कर उन्हें बचाने की कोशिश करो ?"

यूसुफ़ चुप रहा।

जेलर ने अबकी ही गंभीर बन कर कहा—"कानून के मुताबिक यहाँ छै जमादारों को हर वक्त मौजूद रहना लाज़मी है। आठ जमादारों में से दो पहले ही छुट्टी पर हैं। इस हालत में मैं तुम्हें छुट्टी किस तरह दे सकता हूँ।

यूसुफ़ ने कहा—"अलादीन की छुट्टी कल मंजूर हो चुकी है,

मगर वह गया नहीं। मेरे कहने से वह अपनी छुट्टी मेरे हक में बाद के लिये मन्सूख करवा लेगा। उसे कोई खास-काम तो है नहीं।"

जेलर साहब ने कुछ चिढ़ कर कहा—"तुम्हें कौन खास काम है? ससुर का दफ़नाना? यह भी कोई काम है!"

कठोर हृदय यूसुफ ने सिर झुका लिया—जैसे वह पराजित हो गया हो; मगर जेल के क्लर्क ने उसकी मदद की। वह बोला—"शायद कोई जायदाद वायदाद का सवाल हो।"

यूसुफ खीज उठा—वह अब बरदाश्त न कर सका। उसने कहा—"मैं किसी जायदाद के लालच से नहीं, अपने ससुर के खिदमत के ख्याल से ही वहाँ जाना चाहता हूँ।"

जेलर ने जरा ऊँची आवाज में कहा—"ससुर का भी कोई नाता होता है! एक आदमी का लड़की ले ली, इससे वह उम्र भर के लिए रिश्तेदार हो गया!—यह भी कोई रिश्ता है?"

जेल का क्लर्क मुँह मोड़ कर हँसी छिपाने की कोशिश करने लगा। जेलर का लेक्चर अभी तक जारी था—"देखो यूसुफ, हिंदुस्तान भर में तुम्हारा यह रिकार्ड है कि तुमने अपनी पंद्रह साल की सरकारी नौकरी में एक भी दिन की छुट्टी कभी नहीं ली थी। एक जरा सी बात के पीछे तुम अपना वह शानदार रेकार्ड तोड़ डालना चाहते हो।"

दानवकाय यूसुफ से जब और कुछ न बन बड़ा तो उसकी आँखों में आँसू भर आये।

क्लर्क को अब उस पर सचमुच रहम आ गया। उसने कहा—"तो तुम जरूरी छुट्टी लेना चाहते हो?"

यूसुफ ने स्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया।

क्लर्क ने जेलर से कहा—"वह छुट्टी लेना चाहता है। उसकी पूरी छुट्टी बाकी है। कानूनन हम लोग उसे छुट्टी न लेने के लिये मजबूर नहीं कर सकते।"

जेलर ने एक बार अपने क्लर्क की ओर अग्निमय दृष्टि से देखा परन्तु सहसा उन्हें उसी समय एक भूली बात का स्मरण हो आया। करीब दो महीने बाद पेशावर के जेल-इन्सपेक्टर महोदय रावलपिंडी नियुक्त होकर आने वाले थे। जेलर ने उन्हें भेंट में भेजने के लिये सेवों की एक पेटी का आर्डर दे रखा था। यह पेटी दो दिन बाद काश्मीर से आने वाली थी। क्यों न वह पेटी यूसुफ के हाथ ही पेशावर भेज दी जाय।

जेलर ने जैसे एक मिनट तक सोचते रहने के उपरान्त कहा—"तुम पेशावर के रास्ते ही अपने गाँव जाओगे न ?"

"जी हाँ।"

"तो तुम्हें दस दिनों की छुट्टी मैं दे सकता हूँ। मगर आज से नहीं। दो दिन बाद से"

यूसुफ ने नम्रता से कहा—उनका तो मालूम नहीं, वे कब चल बसें। आज रात को रवाना होकर भी जल्दी-से-जल्दी तीन दिन बाद ही वहाँ पहुँच सकता हूँ।"

जेलर ने कहा—"तुम्हारी छुट्टी मंजूर होने में दो दिन अवश्य लग जायँगे।"

यूसुफ और क्लर्क दोनों ने हैरानी के साथ जेलर-साहब की ओर देखा। उन दोनों के लिये यह बात अश्रुतपूर्व थी। क्लर्क ने कहा—"दरखास्त पर आप के दस्तखत काफी नहीं हैं क्या ?"

अपनी कमीनगी पर मुस्कराहट का परदा डालते हुये जेलर ने कहा—"यार, तुम्हें मेरी सेवों की पेटी पेशावर तक अपने साथ ले जानी होगी। वह पेटी परसों से पहले यहाँ नहीं पहुँच सकती।"

जेलर साहब का यह काम इतना अधिक महत्वपूर्ण था कि बेचारा युसुफ आज ही रवाना हो जाने के लिए और अधिक आग्रह न कर सका।

(३)

साइकिल के पैडिलों पर तेजी के साथ पैर मारता हुआ देसराज बैंक की ओर चला जा रहा था। इस समय बारह बज कर पैंतीस मिनट हुये हैं और आज शनिवार है। एक बजे के बाद बैंक से लेन-देन न हो सकेगा। देसराज की जेब में पाँच सौ रुपयों के नोट पड़े हैं। बैंक में जाकर उसे अपने मालिक की एक रेलवे की रसीद छुड़ानी है।

सड़क गोलबाग से होकर जहाँ माल रोड की ओर घूमती है, वहाँ देसराज के मार्ग में सहसा एक बाधा आ खड़ी हुई। सड़क के किनारे बीस-पचीस आदमी जमा थे। देसराज की साइकिल जब वहाँ पहुँची, तो दो-तीन आदमियों ने हाथ बढ़ा कर उनसे कहा—"बाबूजी, जरा ठहरिये।"

देसराज को रुकना पड़ा। पूछने पर मालूम हुआ कि राह चलते चलते एक आदमी को गश आ गया है। उसे क्या बीमारी है, यह किसी को नहीं मालूम; मगर बेहोशी की दशा में भी अत्यधिक व्याकुल और क्षीण स्वर में वह बार-बार पुकार उठता है—'पानी! पानी!'

मगर आस पास कहीं पानी नहीं है।

एक ठेलेवाले ने देसराज से कहा—"बाबूजी, वह यहाँ से थोड़ी दूर पर यूनिवर्सिटी के लड़कों का क्लब है। आप यदि साइकिल पर वहाँ जाकर एक लोटा पानी ला सकें तो इस बेचारे की जान बच जाय।"

देसराज ने पूछा—"यह यहाँ कब से पड़ा है?"

किसी ने बताया—"क़रीब पन्द्रह मिनट से।"

देसराज ने दूसरा सवाल किया—"इसे क्या बीमारी है?"

एक मुसाफिर ने जरा झुँझला कर कहा—"हम लोगों में से कोई डाक्टर तो है ही नहीं! जो कुछ है, वह आपके सामने है!"

देसराज शायद इस बात पर खीज उठता; परन्तु उसी समय उसी ठेलेवाले ने बड़ी नम्रता के साथ कहा—"बाबू साहब, यहाँ इस आदमी का अपना सगा कोई भी नहीं। यदि दो चार मिनट में आप साइकिल पर जा कर कहीं से पानी ला दे सकते, तो उसके बाद मैं अपने ठेले पर लिटा कर इसे अस्पताल तक छोड़ आता। आप साहब हैं, आपको माँगने पर पानी मिल भी जायगा, मगर हम गरीबों को इन बड़ी-बड़ी इमारतों में कोई घुसने भी न देगा।"

देसराज के जी में सचमुच दया का संचार हो आया। वह खुद भी एक गरीब बाबू है—ऐसा गरीब बाबू, जिसे अपने जीवन-निर्वाह में इन ठेलेवाले और झल्लीवाले मजदूरों से भी बढ़ कर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसका मालिक उससे दिन भर में बारह घंटे और चार सप्ताहों में सत्ताइस दिन (क्योंकि उसकी दूकान महीने में एक ही दिन बन्द होती है) कस कर काम लेता है, तब जा कर उसे तीन रुपया मासिक वेतन मिलता है। वह भी यदि गरीबों के दुःख दर्द और उनकी असहाय अवस्था को नहीं समझेगा; तो और कौन समझेगा? वह देख ही रहा था कि कालेज के विद्यार्थियों की साइकिल और अमीरों की कारें काफी संख्या में उसी सड़क पर से होकर इधर-उधर निकल जाती हैं, किसी को इस ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं है। मगर उसी समय उसकी निगाह अपनी घड़ी पर पड़ी। बारह बज कर पैंतालिस मिनट हो चुके हैं। पन्द्रह मिनट के बाद बैंक में न तो रुपये ही जमा कराए जा सकेंगे और न रेलवे-रसीद ही ली जा सकेगी। कल रविवार है। माल मिलने में दो दिन की देर हो जायगा, और वह स्वतंत्र नहीं है।

हृदय का संपूर्ण भावुकता को कुचल कर देसराज साइकिल पर सवार हो गया और कुछ गज आगे बढ़ कर वह कहता गया—'बीस-पच्चीस मिनट में वापस आता हूँ।'

बैंक से अपना काम समाप्त करके देसराज जब गोलबाग के नज़दीक पहुँचा तो उसने देखा कि वहाँ तमाशबीनों की भीड़ इतनी बढ़ गई है कि सड़क पर राह मिलनी भी कठिन है।

देसराज साइकिल से उतर पड़ा और पास ही खड़े हुए एक आदमी से उसने पूछा—"क्या बात है?"

उसने बताया—"कुछ नहीं, कोई मुसाफिर राह चलते सड़क पर गिर कर मर गया है और पुलीस उसकी लाश लेने आई है।"

देसराज ने एक ठंडी साँस ली और धीरे-धीरे उस भीड़ को पार करके पुनः साइकिल पर सवार हो गया। पाँच सौ रुपयों की पामेड बेसलीन के पार्सल की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रेलवे-रसीद अब उसकी जेब में पड़ी थी।

पगडंडी

[कमलाकांत वर्मा]

तब मैं ऐसी नहीं थी। लोग समझते हैं, मैं सदा की ऐसी ही हूँ—मोटी, चौड़ी, भारी-भरकम, क्षितिज की परिधि को चीर कर, अनंत को सांत बनाती, संसार के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक लेटी हुई। वह पुराना इतिहास है। कोई क्या जाने!

तब मैं न तो इतनी लम्बी थी, न इतनी चौड़ी। न चेहरे पर ईंटों की सुर्खी की ललाई थी, न शरीर पर कंकड़ों के गहने। मेरे दाएँ-बाएँ वृक्षों की जो ये क़तारें देख रहे हो, वे भी नहीं थीं, न फ़ुट-पाथ था, न बिजली के खम्भे, अप्सराओं की-सी सजी न ये दूकानें थीं, न अँगूठी के नगीने की तरह ये पार्क। तब मैं एक छोटी-सी पगडंडी थी—दुबली, पतली, सुकुमार नटखट!

कब से मैं हूँ, इसकी तो याद नहीं आती; किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि अमराई के इस पार की कोई तरुणी, नदी से जल लाने के लिए उस पार गई होगी; जैसे किसी छोटी-सी नगण्य घटना के बाद किसी प्रथा का जन्म हो जाता है, और उसके बाद एक धर्म भी निकल पड़ता है; उसी तरह एक तरुणी के जल भर लाने के बाद गाँव की सारी तरुणियाँ घड़े में जल लेकर अटकती, इठलाती एक ही पथ से आती रही होंगी और फिर वहीं से मेरे जीवन की कहानी बह निकली।

मेरे अतीत के आकाश के दो तारे अब भी मेरे जीवन के सूनेपन की अँधियारी में झलमला रहे हैं। यों तो सारी अमराई, सारा गाँव मेरे परिचितों से भरा था; किंतु मेरी घनिष्टता थी केवल दो जनों से, एक थे बट दादा और दूसरा था रामी का कुआँ।

बट दादा अमराई के सभी वृक्षों में बूढ़े थे और सभी उन्हें श्रद्धा और आदर से बट दादा कहा करते थे। थे तो वे वृद्ध, किन्तु उनका हृदय बालकों से भी सरल और युवकों से भी सरस था। अमराई के कुलपति थे। उन के तपस्वियों का तेज भी था और गृहस्थों की कोमलता भी। उनकी सघन छाया के नीचे लेट कर बीते हुये युगों की वेदना और आह्लाद से भरी कहानियाँ सुनना, रिमझिम-रिमझिम वर्षा में उनकी टहनियों में लुक कर बैठे हुये पक्षियों की सरस बरसाती का मज़ा लूटना, आज भी याद करके मैं विह्वल हो उठती हूँ।

ठीक उन्हीं से सटा हुआ रामी का कुआँ था—पक्का, ठोस, सजल स्वच्छ, गंभीर, उदार। साँझ-सबेरे गाँव की स्त्रियाँ झन्-झन् करती आतीं और अमराई को अपने कलकंठ से मुखरित करके कुएँ से पानी भर कर मुझे भिगोती हुई, चली जातीं।

मेरी चढ़ती हुई जवानी का आदि भी इन्हीं से होता है, मध्य भी इन्हीं से और अंत भी इन्हीं से। भूलने की चेष्टा करने पर भी क्या कभी मैं इन्हीं भूल सकती हूँ?

मनुष्य के जीवन का इतिहास प्रायः अपने सगों से नहीं, परायों से बनता है। ऐसा क्यों होता है, समझ में नहीं आता, किन्तु देखा जाता है कि अकस्मात् कभी की सुनी हुई बोली, किंचित मात्र देखा हुआ स्वरूप, घड़ी-दो-घड़ी का परिचय, जीवन के इतिहास की अमर घटना, स्मृति की अमूल्य निधि बन कर रह जाते हैं और अपने सगों का समस्त समाज, अपने जीवन का सारा वातावरण कमल के पत्ते के चारों ओर के पानी की तरह छल्-छल् करते रह जाते हैं, उछल-उछल कर आते हैं, बह जाते हैं, टिक नहीं पाते। मैं सोचती हूँ, ऐसा क्यों होता है, पर समझ नहीं पाती।

जेठ के दिन थे। असल दुपहरी। गरम हवा अमराई के वृक्षों में लुढ़कती फिरती थी। बट दादा ऊँघ रहे थे। एक वृक्षों में लपटी हुई

दो लताओं में झगड़ा हो रहा था। मैं तन्मय हो इनका झगड़ा सुन रही थी, इतने में ही कुएँ ने पूछा—"पगडंडी, सो गई क्या ?"

"नहीं तो" मैंने कहा—"इन लताओं का झगड़ा सुन रही हूँ!"

कुएँ ने हँस कर पूछा—"क्या बात है ?"

मैंने कहा—कुछ नहीं, नाहक का झगड़ा है, दोनों मूर्ख हैं।'

कुएँ ने हँस कर कहा—"संसार में मूर्ख कोई नहीं होता। परि-स्थिति सब को मूर्ख बनाती है। इस अमराई में तुम अकेली हो, कल एक और पगडंडी बन जाय तो क्या यह संभव नहीं कि फिर तुम दोनों झगड़ने लग जाओ ?"

मैं तिनक गयी। बोली—'साधारण बात में भी मेरा जिक्र खींच लाने का तुम्हें क्या अधिकार है ?"

कुएँ ने पूछा—'उन्हें मूर्ख कहने का क्या अधिकार है ?'

मैंने कहा—'मैं सौ बार कहूँगी; वे दोनों मूर्ख हैं, तुम भी मूर्ख हो, सब मूर्ख हैं !'

इतने में ही बट दादा भी जग पड़े, बोले—'किसको मूर्ख बना रही है ?"

बात रुक गयी, कुआँ चुप हो गया। दो दिन तक बोल-चाल बन्द रही।

मैंने जान-बूझ कर उससे झगड़ा क्यों किया, इसे वह समझ नहीं पाया, इसलिए मुझे संताप भी हुआ और ग्लानि भी ! स्त्री प्रेम से विह्वल हो जाती है और अपने उच्छ्वसित हृदय के उद्गारों को जब निरुद्ध नहीं कर पाती तब वह झगड़ा करती है। स्त्री का सबसे बड़ा बल है रोना : उसकी सब से बड़ी कला है झगड़ा करना। झगड़ा करके तिनकना, रूठ कर रोना, फिर दूसरे को रुला कर मान जाना, नारी-हृदय का प्रियतम विषय है। पुरुष, चाहे कितना भी पढ़ा-लिखा हो, साहित्यिक हो, दार्शनिक हो, तत्त्वज्ञानी हो, यदि वह इतनी सीधी-

सीधी बात नहीं समझ पाता तो सचमुच मूर्ख है।

यह घटना कुछ नयी नहीं थी, नित्य की थी। कुछ छोटी-सी बात लेकर हम झगड़ पड़ते, आपस में कुछ कह-सुन लेते, फिर हफ़्तों एक दूसरे से नहीं बोलते। किन्तु वह बात जिसके लिए मैं सब कुछ करती, सारा झगड़ा करती, कभी नहीं होती। कुआँ मुझे कभी नहीं मनाता था। अन्त में हार कर मुझे ही बोलना पड़ता, तब वह बोलने लगता, मानो कुछ हुआ ही नहीं। मैं मन-ही-मन सोचती, यह कैसा विचित्र जीव है कि न तो इसे रूठने से कोई वेदना होती है, और न मानने से कोई आह्लाद। स्वयं भी नहीं रूठता, केवल चुप हो रहता है; बोलती हूँ तो फिर बोलने लगता न, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। हे ईश्वर! अपनी रचना की हृदयहीनता की सारी थैली क्या मेरे ही लिए खोल रखी है।

इस घटना पर मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया किन्तु वह बात रह-रह कर मेरे कानों में गूँज उठती—'इस अमराई में तुम अकेली हो, कल एक और पगडंडी बन जाय तो क्या यह सम्भव नहीं कि फिर, तुम दोनों भी झगड़ने लग जाओ?'' इसका प्रतिवाद मैंने कैसे किया? उससे झगड़ा किया, उसे मूर्ख बनाया कुआँ समझता है कि मैं स्त्री हूँ और स्त्री जाति की कमजोरी मेरी भी कमजोरी है। और इसका प्रतिवाद करने के बदले मैं स्वयं उसके तर्क का प्रतिपादन कर देती हूँ, फिर मूर्ख मैं हुई या वह?

मुझे रह-रह कर अपनी निर्बलता पर क्रोध आ जाता। यदि उसे मेरे लिये सहानुभूति नहीं; मेरे रूठने की कोई चिन्ता नहीं, मुझे मनाने का आग्रह नहीं, तो फिर मैं क्यों उसके लिए मरने लगी। यदि वह हृदयहीन है, तो मैं भी हृदयहीन बन सकती हूँ। यदि वह आत्म-निग्रह कर सकता है, तो मैं भी अपने आप पर संयम रखना सीख सकती हूँ। मैंने कसम खाई कि उससे फिर रूठूँगी ही नहीं, और यदि

रूठूँगी तो फिर बोलूँगी नहीं, चाहे जो भी हो, प्रेम के लिए स्त्रीत्व को कलंकित नहीं करूँगी।

एक दिन की बात है। आश्विन का महीना था। बरसात अभी-अभी बीती थी। न कीचड़ थी, न धूल। छोटी हरी घासों और जंगली फलों के बीच से होकर मैं अमराई के इस पार से उस पार तक लेटी थी। इस सघन हरियाली के बीच में मुझे देख कर जान पड़ता मानो किसी कुमारी कन्या की सीमंत हो। शरद मेरे अंग-अंग में प्रतिबिम्बित हो रहा था। मैं कुछ सोच रही थी, सहसा कुएँ ने कहा—"पगडंडी, सुनती हो?"

मैंने अन्यमनस्क होकर कहा—'कहो।'

उसने कहा—'तुम दिनों-दिन मोटी होती जा रही हो।'

मैं कुछ नहीं बोली।

कुछ ठहर कर वह फिर बोला—'तुम पहले जब दुबली थी, अच्छी लगती थी!'

मैंने कहा—'अगर मैं मोटी हो गई हूँ, तो केवल तुम्हें अच्छी लगने के लिए तो मैं दुबली होने की नहीं!'

कुएँ ने कहा—'यह तो मैंने कहा नहीं कि दुबली होकर तुम मुझे अच्छी लगोगी।'

मैंने पूछा—'तब तुमने कहा क्या?

उसने कहा—'कवियों का कहना है कि दुबलापन स्त्रियों के सौन्दर्य को बढ़ा देता है। मोटी होने से तुम कवियों की सौन्दर्य की परिभाषा से दूर हट जाओगी।'

मैंने खीझ कर पूछा—'तुम तो अपने को कवि नहीं समझते न?'

उसने कहा—'बिल्कुल नहीं।'

मैंने कहा—'फिर मोटी हो जाने पर मैं कवियों को अच्छी लगूँगी या बुरी इससे तुम्हें मतलब!'

उसने शांति भाव से कहा—'कुछ भी नहीं, केवल यही कि मैं उस परिभाषा को जानता हूँ और उसे तुम्हें भी बतला देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।'

मैंने गम्भीर होकर कहा—"धन्यवाद !"

स्त्री, यदि सचमुच ही स्त्री है, तो सब कुछ सह सकती है; पर अपने रूप का तिरस्कार नहीं सह सकती। स्त्री चाहे घोर कुरूपा हो, फिर भी पुरुष को उसे कुरुपा कहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं। स्त्री का स्त्रीत्व ही संसार का सब से महान् सौंदर्य है और उसके प्रति असुन्दरता का संकेत करना भी उसके स्त्रीत्व को अपमानित करना है। स्त्री के स्वरूप का उपहास करना वैसा ही है जैसा पुरुष को कायर कहना। मैं समझ गयी कि कुआँ मुझ पर मार्मिक आघात कर रहा है, परिहास नहीं, उपहास करना चाहता है। मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि चाहे अन्त जो भी हो, मैं आज से युद्ध प्रारंभ करूँगी।

उसी दिन रात को चांदनी खिली थी। रजनी गंधा के सौरभ से अमराई मस्त होकर झूम रही थी। बट दादा पक्षियों को सुला कर अपने भी सोने का उपक्रम कर रहे थे। बोले—'सो गयी बेटी ?

मैंने कहा—'नहीं दादा, ऐसी चाँदनी क्या सदा रहती हैं ? मेरे तो जी में आता है कि जीवन-भर ऐसे ही लेटे-लेटे चाँद को देखती रहूँ।'

इतने ही में कुआँ बोला—'दादा, अमराई के ब्याह के गीत अभी से गाने शुरू करवा दो।'

दादा ने पूछा—"कैसा ब्याह ?"

उसने कहा—'देखते नहीं, प्रेम का पहला चरण प्रारंभ हो गया, दूसरे चरण में कविताएँ बनेंगी, तीसरे चरण में पागलपन का अभिनय होगा, चौथे चरण में सगाई हो जायगी।'

मुझे मन-ही-मन गुदगुदी-सी जान पड़ने लगी। सोचा, आज इसे

खिझाऊँगी। मैंने हँस कर कहा—'दादा देखो अपने अपने भाग्य की बात है। ईश्वर ने तुम्हें इतना ऊँचा बनाया है। तुम अपनी असंख्य अंजुलियों से सूर्य और चंद्रमा की किरणों का अजस्र पान करते हो और दिगदिगंत से आती हुई वायु में स्नान करके विस्तृताकाश में सर उठा कर प्रकृति की अनंत विभूतियों का अनुशीलन करते हो! नक्षत्रों से भरी हुई रात में शत-शत पक्षियों को गोद में लिए हुए तुम चंद्रलोक की कहानी सुना करते हो, उषा और गोधूलि नित्य तुम्हें स्नेह से चूम लिया करते हैं, प्रकृति का अनंत भंडार तुम्हारे लिए उन्मुक्त हैं। मैं तुम्हारे जैसी ऊँची तो नहीं हूँ फिर भी दूर तक फैली हूँ। वसुन्धरा अपनी सुषमा मेरे सामने बिखेर देती है, आकाश सूर्य और चंद्रमा की किरणों का जाल मेरे ऊपर फैला देता है। वसन्त की मादकता, सावन की सजल हरियाली और शरद् की स्वच्छ सुषमा मेरे जीवन में स्फूर्ति प्रदान करती रहती है। मैं केवल जीती ही न ीं, जीवन का उपभोग भी करती हूँ। किन्तु मुझे दुःख उन लोगों को देख कर होता है जिन्हें न तो सूर्य का प्रकाश मिलता है, न चंद्रमा की किरणें अंधकार ही जिनके जीवन की भित्ति है और सूनापन ही जिनकी एक कहानी है। वे आकाश को उतना ही बड़ा समझते हैं जितना उनके भीतर समाता है, वसुन्धरा को उतनी ही दूर तक समझते हैं जितना वे देख सकते हैं। दादा! उनका अस्तित्व कैसा दयनीय, तुमने कभी सोचा है?"

दादा कुछ नहीं बोले, शायद सो गये थे। लेकिन कुआँ बोला—"सुन रहे हो, दादा? पगडंडी कितना सच कह रही है! ऐसे लोगों से अधिक दयनीय जीवन किसका होगा? कुछ दिन पहले मैं भी यह सोचा करता था, किन्तु मुझे जान पड़ा कि संसार में और भी अधिक दयनीय जीवन हो सकता है। ईश्वर ने जिसे सूर्य और चंद्रमा के आलोक से बंचित रखा, आकाश का विस्तार और वसुन्धरा का

वैभव जिसे देखने नहीं दिया, उस पर दया करके कम-से-कम उसे एक चीज़ दे दी, जिससे वह संसार का उपकार कर सकता है, जिसे वह अपना कह सकता है, जिसके द्वारा वह संसार का किसी-न-किसी रूप में लक्ष्य बन सकता हैं। किन्तु उससे अधिक दयनीय तो वे हैं जिनके सामने सृष्टि का सारा वैभव बिखरा पड़ा है, किन्तु जिनके पास अपना कहने को कुछ भी नहीं। रेखागणित की रेखा की तरह उनका अस्तित्त्व तों है, किन्तु उनकी मुटाई, लम्बाई, चौड़ाई सब कुछ काल्पनिक है। उनका अस्तित्त्व किसी दूसरे के अस्तित्त्व में अन्तर्निहित है! ये सभी के साधन हैं, किन्तु लक्ष्य किसी के भी नहीं। ऐसे लोग भी दुनियाँ में हैं। दादा, क्या उन पर तुम्हें दया नहीं आती?"

दादा बिलकुल सो गये थे। मैंने तैश में आकर कहा—"रामी के कुआँ, यदि तुम समझते हो कि तुम संसार के लक्ष्य हो और मैं केवल साधन-मात्र, तो वह तुम्हारी भूल है। संसार में जो कुछ है साधन ही है, लक्ष्य कुछ भी नहीं। लक्ष्य शब्द मनुष्य की उलझी हुई कल्पना का फल है। लक्ष्य एक भावना-मात्र है स्थूल और प्रत्यक्ष रूप में जिस किसी का अस्तित्त्व है, वह साधन ही है, चाहे जिस रूप में हो।"

कुएँ ने गंभीर स्वर में कहा—"तुमने हमारा नाम लेकर पुकारा इसके लिए धन्यवाद। मैं उत्तर में केवल दो बातें कहूँगा। पहली तो वह कि हमारा और तुम्हारा कोई अपना झगड़ा नहीं है, मैं समझता हूँ, व्यक्तिगत रूप से न तुमने मुझे कुछ कहा है, न मैं तुम्हें कुछ कह रहा हूँ। दूसरी बात यह है कि जैसा तुम कह रही हो, लक्ष्य और साधन में प्राकारिक अंतर न होते हुए भी पारिमाणिक अंतर है। संसार में लक्ष्य नाम की कोई चीज़ नहीं, ठीक है; यहाँ जो कुछ है, किसी-न-किसी रूप में साधन ही है, यह भी ठीक है। फिर भी मानना पड़ेगा कि साधनों में कुछ साधन ऐसी अवस्था में है, जिन्हें साधन के अतिरिक्त दूसरा कुछ कहा ही नहीं जा सकता, और कुछ साधन ऐसी

अवस्था में पहुँच गए हैं, जिन्हें संसार अपनी सुविधा के लिए लक्ष्य ही कहना अधिक उपयुक्त समझता है। इसका प्रत्यक्ष और स्थूल प्रमाण यह है कि कुछ लोगों के यहाँ संसार आता है, हाथ फैला कर कुछ माँगता है और फिर चला जाता है, संसार की स्थूल व्यावहारिक भाषा में वे तो हुए लक्ष्य; और कुछ लोग हैं ऐसे जिनके यहाँ संसार आता है, किन्तु इसलिए नहीं कि उनसे कुछ लेना चाहता है, बल्कि इसलिए कि उनके द्वारा वह अपने लक्ष्य के पास पहुँच सकता है। तुम्हारी सूक्ष्म दार्शनिक भाषा में ऐसे लोग हुए साधन। समझीं ?'

मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि उसने रोक दिया, कहा—

"देखो, तुम्हारी चाँदनी डूब गयी, अब तो सो सकती हो या नहीं ?"

कुछ दिन और बीते। मेरे प्रेम की आग पर आत्माभिमान की राख पड़ने लगी। कुआँ संसार का लक्ष्य है, मैं केवल एक साधन हूँ। फिर मेरा उसका प्रेम कैसे हो सकता है ? मैं कभी-कभी सोचती, प्रेम में प्रतियोगिता कैसी ? मान लो, यह संसार में सब कुछ है और मैं कुछ भी नहीं, फिर भी क्या वह यथेष्ट कारण है कि यदि मैं उससे प्रेम करूँ तो वह उसका प्रतिदान न दे। कुआँ अपने सांसारिक महत्त्व के गर्व में चूर है। वह समझता है कि उसके सामने मैं इतनी तुच्छ हूँ कि मुझसे प्रेम करना तो दूर रहा, भर मुँह बोलना भी पाप है। वह मुझसे घृणा करता है, मेरा उपहास करता है, बात-बात में मुझे नीचा दिखना चाहता है ! बर्बर पुरुष जाति !

मैं दिनों-दिन उससे दूर हटने की चेष्टा करने लगी। उसके सामीप्य में मेरा दम घुटने लगा। वह महत्त्वशाली है, संसार उसके सामने भिखारी बन कर आता है, और मैं ? मेरा तो कोई अस्तित्व ही नहीं किसी लक्ष्य तक पहुँचने का एक साधन-मात्र हूँ। मेरी उसकी क्या तुलना ?

साँझ-सबेरे गाँव की स्त्रियाँ आती और पानी भर ले जातीं। अलस

दुपहरी में पथिक अमराई में विश्राम करने के लिए आते और कुएं के पानी में सत्तू सान कर खाते, फिर थोड़ी देर वृक्षों के नीचे लेट कर अपनी राह चले जाते। गाँव के छोटे-छोटे लड़के अमराई में आकर फल तोड़ते कुएँ से पानी खींचते और फिर फल खा कर मुँह हाथ धोकर चले जाते। जहाँ देखो उसकी चर्चा, उसकी बात। मैं अपनी नगण्यता पर मन-ही-मन कुढ़ कर जली-सी जाती। मुझे जान पड़ता, मानो संसार मेरा उपहास कर रहा है, आकाश मेरा तिरस्कार कर रहा है, पृथ्वी मेरी अवहेलना कर रही है। मेरा अस्तित्त्व रेखागणित की रेखाओं और बिन्दुओं का अस्तित्त्व है। मैं सब की हूँ, पर मेरा कोई नहीं। मैं भी अपनी नहीं, केवल संसार को किसी लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए साधन-सी बन जा रही हूँ। मुझे यहाँ से हटना ही पड़ेगा। चाहे जहाँ भी जाऊँ, जाऊँगी जरूर। हृदय की शांति की खोज में बन-बन भटकूँगी, वसुन्धरा के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक के अनन्त विस्तार को छान डालूँगी, यदि कहीं शांति नहीं मिली तो किसी मरुभूमि की विशाल सैकत-राशि में जाकर विलीन हो जाऊँगी। या किसी विजन पर्वत माला की अँधेरी गुफा में जाकर सो रहूँगी, फिर भी वहाँ न रहूँगी। वहाँ से मैं हटने का उपक्रम करने लगी।

आधी रात थी। चाँदनी और अंधकार अमराई के वृक्षों के नीचे गाढ़ालिंगन में बँधे सो रहे थे। मुझे उस रात की सारी बातें अब भी याद हैं, मानो अभी तक ही की हों। मैं अपने अतीत जीवन की कितनी ही छोटी-छोटी स्मृतियाँ सहेज रही थी। इतने में कुएँ ने पुकारा—'पगडंडी!'

निशीथ के सूनेपन में उसकी आवाज़ गूँज उठी! मैं चौंक पड़ी। इतने दिनों के बाद आज कुआँ मुझे पुकार रहा है, मेरा कौतूहल उमड़ने लगा।

मैंने कहा—'क्या है !'

कुआँ थोड़ी देर चुप रहा, फिर पुकारा—'पगडंडी !'

शायद उसने मेरा बोलना सुना ही नहीं। मुझे आश्चर्य होने लगा, क्या आज कोई अभिनय होगा ? मैंने संयत स्वर में कहा—'क्या है ?'

कुआँ बोला—'पगडंडी, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ।'

मैंने कहा—'पूछो।'

वह बोला—'शायद तुम यहाँ से कहीं जा रही हो ?'

उस समय बिजली भी गिर पड़ती तो मुझे उतना आश्चर्य न होता ? इसे कैसे मालुम हुआ ? यदि मान लूँ कि किसी तरह मालूम भी हो गया, तो फिर इसे क्या मतलब ? मैं क्षण भर में ही न जाने क्या-क्या सोच गयी, कितने ही भावों से मेरा हृदय उथल-पुथल हो उठा, किन्तु मैंने सारा आवेग रोक कर उदासीन स्वर में कहा—'हाँ।'

कुआँ थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला—'तुम इस अमराई से जा रही हो, अच्छा है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ।'

मैं कुछ उत्तर देने जा रही थी, तब तक उसने रोक दिया—

ठहरो, मेरी बात सुन लो। जब तुम पहले पहल यहाँ आई थी, तब जितना प्रसन्न मैं हुआ था; उतना और कोई नहीं। आज जब तुम यहाँ से जा रही हो, तब भी जितनी खुशी मुझे हो रही है, उतनी और किसी को नहीं। तुम इसका कारण जानती हो ?'

मैं कुछ नहीं बोली।

वह कहने लगा—'मैं तुम्हें किसी दिन कहने वाला ही था। तुमने स्वयं जाने का निश्चय कर लिया। यह और भी अच्छा हुआ।'

मैंने अन्यमनस्क सी कहा—'संसार में जो कुछ होता है, अच्छा ही होता है।'

कुआँ बोला—'पगडंडी,तुम यहाँ से जा रही हो, संभावना यही है

कि फिर तुम लौट कर नहीं आओगी ! तुम्हारे जाने के पहले मैं तुमसे अपने हृदय की एक बात, एक चिर-संचित बात कहूँगा; सुनोगी तो ?'

मेरे हृदय में उस समय दो धाराएँ बह रही थीं; एक संशय की दूसरे विस्मय की ! फिर भी इतना है कि संशय से अधिक मुझे विस्मय ही हुआ। मैंने सारा कौतूहल दबा कर कहा—'कहते जाओ।'

कुआँ कहने लगा—'मुझे अधिक कुछ नहीं कहना है। केवल दो बातें हैं तुमसे कभी नहीं कहा था। इसका कारण यह है कि अब तक कहने का समय नहीं आया था। तुम अब जा रही हो, जान पड़ता है कि वह समय आ गया, इसलिये कह रहा हूँ।'

थोड़ा रुक कर, फिर उसने अपने स्वाभाविक दार्शनिक ढंग से कहना शुरू किया—

'पहली बात यह है तुम्हारे प्रति अगाध प्रेम होते भी आज तक मैंने जाहिर क्यों नहीं होने दिया ? मुझे याद है, जिस दिन आकाश के ज्योतिष्पथ की तरह पहले पहल अमराई में आकर बिछ गयी, उस दिन मैंने बट दादा से पूछा—'दादा, यह कौन है ? दादा ने विनोद से कहा—"तुम्हारी बहू !' मैं झेंप गया ! तब से लेकर आज तक युग बीत गया। कितने वसंत आये कितनी बरसातें आयें, इस अमराई की सघन छाया में हम दोनों ने कितनी कहानियाँ सुनीं, कितनी गीत सुन कर फिर भूल गये और कितनी बार हम आपस में लड़े-झगड़े हैं। इस जीवन के छोटी-से-छोटी घटना भी मेरे स्मृत-पट पर अमर रेखा बन कर खिंच गई है और उन टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं को जोड़ कर जो अक्षर बनते हैं, उनका एक मात्र अर्थ यही निकलता है कि इस अमराई में छोटी, पतली-सी जो पगडंडी के सूने, उपेक्षित जीवन का जो निष्कर्ष है वह किसी एक युग या एक देश का नहीं, विश्व भर का अनन्तकाल के लिये आलोक-स्तंभ बन सकता है। वह न रहे, किन्तु उसकी कथा युग-युग तक कल्पना-लोक के विस्तृताकाश में

स्त्रीत्व का आदर्श बन आकाश-दीप सी झिलमिलाती रहेगी।

"किन्तु इतना होते हुए भी आज तक मैंने उससे कभी कुछ कहा क्यों नहीं?

'इतना ही नहीं, मैंने अब तक तुम्हारे प्रति केवल उदासीनता और कठोरता के भाव ही प्रदर्शित किए। नीरस उपेक्षा, आलोचनात्मक विनोद, इसके अतिरिक्त मुझे याद नहीं, मैं और भी तुम्हें कुछ दे सका हूँ या नहीं। किन्तु क्यों? केवल एक ही कारण था।'

'पगडंडी, मैं तुम्हें जानता था, तुम्हारे हृदय को अच्छी तरह पहचानता था। मैं तुम्हारे जीवन का दार्शनिक अध्ययन कर रहा था। मैं जानता था, संसार के कल्याण के किस अभिप्राय को लेकर तुम्हारे जीवन का निर्माण हुआ है। मैं जानता था, किस लक्ष्य को लेकर विश्व की रचनात्मक शक्ति ने तुम्हें स्वर्ग से ला कर इस अमराई की घासों और पत्तों की सेज पर सुला दिया है। मैं यह भी जानता था कि तुम्हारे अवतरण का जो अंतर्निहित अभिप्राय है वह किस पथ पर चल कर तुम अधिक-अधिक प्राप्त कर सकती हो।

'जिस महान् उद्देश्य को ले कर तुम जन्मी हो, उसमें मैं मानता हूँ इच्छा रहते हुये भी तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता। किन्तु हाँ, एक बात कर सकता हूँ। गायक अपनी तान को आरोह-अवरोह के बीच में नाचता हुआ ले जा कर सम पर बिठा देता है। सुनने वाले उसे सहायता नहीं दे सकते, किन्तु अंत में सम पर एक बार सर हिला देते हैं। तान लौट कर घर आ गयी, सब का सिर हिल गया। पगडंडी, अपने जीवन के उच्चादर्श को तुम्हें अकेले ही निभाना पड़ेगा, मैं केवल इतना ही कर सकूंगा कि जिस दिन तुम्हारे जीवन की तान लौट कर घर आ जायगी, उस दिन उस संगीत में अपने को बहा कर सर हिला दूँगा। तुम्हारे जीवन-संगीत के सम पर अपने को निछावर कर दूँगा, बस।"

'प्रेम से स्वर्ग मिलता है, किन्तु, उससे भी ऊँचा, उससे भी पवित्र एक स्थान है। उसका वही पथ है जिस पर तुम जा रही हो—सेवा प्रेम सभी कर सकते हैं, किन्तु सेवा सभी नहीं कर सकते। प्रेम करना संसार का स्वभाव है, किन्तु सेवा एक साधना है। प्रेम हृदय की सारी कोमल भावनाओं का आकुञ्चन है, सेवा उसका प्रसार। प्रेम में स्वयं लक्ष्य बन कर अपना एक कोई लक्ष्य बनाना पड़ता है, सेवा में अपने को संसार का साधन बना कर संसार को अपनी साधनाओं की तपोभूमि बना देना पड़ता है। प्रेम यज्ञ है और सेवा तपस्या। प्रेम से प्रेमिक मिलता है और सेवा से ईश्वर।

'जन्म से लेकर आज तक तुम सेवा के पथ पर रही हो और अब भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही हो। तुम्हारे मार्ग में जो सब से बड़ा विघ्न बन कर खड़ा हो सकता है वह प्रेम। प्रेम मनुष्यत्व है और सेवा देवत्त्व। तुम्हारी आत्मा स्वर्गिक होते हुए भी तुम्हारा शरीर भौतिक है। आत्मा और शरीर का द्वन्द्व संसार की अमर कहानी है। बसन्त जब अपना मधुकलश पृथ्वी पर उड़ेल देता है, वर्षा जब वन-वन में हरियाली बिखरा देती है, शरद् के शुभ्राभ्र-खण्ड जब आकाश में तैरने लगते हैं, तब आत्मा की साधनाओं में शरीर छोटे-छोटे सपने छींट देता है; सामवेद की मधुर गंभीर ध्वनि में मेघ-मलार की मस्तानी तानें भीग जाती हैं, सोमरस में कादम्ब की बूँदें चू पड़ती है, कैलास में बसन्त आ जाता है। यह बहुत पुरानी कथा है। युगयुगांतर से यही होता आया है, और यही होता रहेगा। फिर भी सभी इसे भूल जाते हैं। आँखें झप जाती हैं, तपस्या के शुभ्र प्रत्यूष में अनुराग की अरुण उषा छिटक पड़ती है, साधना का बर्फ लगने लगता है, लगन की आग झँझाने लगती है, हृदय की एकांतता में किसी की छाया घुस पड़ती है, जागृति में अँगड़ाई भर जाती है, स्वप्नों में मादकता भी जाती है, और......और जब आँखें खुलती हैं तब कहीं कुछ नहीं

रहता। फिर से नयी कहानी शुरू होती है—नयी यात्रा होती है, नया प्रस्थान होता है! इसी तरह यह संसार चलता है।

'आत्मा के ऊपर शरीर का सबसे बड़ा प्रभाव है संशय। जब संसार में सभी किसी-न-किसी से प्रेम करते हैं, सभी का कोई-न-कोई एक अपना है, जब किसी से प्रेम करना, किसी के प्रेम का पात्र बनना प्राणिमात्र का अधिकार है, तब फिर मैं - केवल मैं ही - क्यों इससे वंचित रहूँ? यह जीवन की अमर समस्या है, शाश्वत प्रश्न है।

'किन्तु सत्य क्या है, लोग यह समझने की बहुत कम चेष्टा करते हैं। जिनके पैर हैं वे जमीन पर चलते हैं, किन्तु जिन्हें पंख मिले हैं यदि वे भी जमीन पर ही चलें तो यह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग है। जिन्हें ईश्वर ने आकाश में उड़ने के लिये बनाया है, अपने लिये पृथ्वी पर चलना अपने महत्व की अपेक्षा करना है, अपने आपको भूलना है।

प्रेम करने की योग्यता सब में है, किन्तु सेवा करने की शक्ति किसी-किसी को ही मिलती है। सेवा करने को योग्यता रखना दंड नहीं, ईश्वर का आशीर्वाद है। जिसे ईश्वर ने संसार में अकेला बनाया है, धन वैभव नहीं दिया है, सुख में प्रसन्न होने वाला और दुःख में गले लगा कर रोने वाला साथी नहीं दिया है, संसार के शब्दों में जिसे उसने दुखिया बनाया है, उसके जीवन में एक महान् अभिप्राय भर दिया है, शक्ति का एक अमर स्रोत, बेचैनी की तड़फड़ाती हुई आँधी, उसके अन्तर में सँजो कर रख दिया है। हो सकता है वह उसे न समझे, शायद संसार भी इसे न समझे; फिर भी वह नहीं है, ऐसी बात नहीं; वह है, आवश्यकता है केवल उसे समझने की।

"पगडंडी, तुम ईश्वर की उन्हीं रचनाओं में से एक-हो। तुम्हारा निर्माण इसलिए नहीं हुआ है कि तुम एक की होकर रहो, एक के लिए जिओ और एक के लिए मरो। नहीं, तुम पृथ्वी पर एक बहुत

बड़ा उद्देश्य लेकर आयी हो। जेठ की धधकती हुई लू में, भादों की अजस्र वर्षा में और शिशर के तुषार-पात में इसी तरह लेटी रह कर तुम्हें असंख्य मनुष्यों को घर से बाहर और बाहर से घर पहुँचाना पड़ेगा। सभ्यता के विस्तार के लिये, जीवन के सौख्य के लिए, संसार के कल्याण के लिए तुम्हें बड़ा-से-बड़ा त्याग करना पड़ेगा। तुम्हारा कोई नहीं, इसलिए कि सभी तुम्हारे हैं, तुम किसी की नहीं हो, इस लिए कि तुम सभी की हो। तुम अपने जीवन-जीवन का उपभोग नहीं करती हो, तुम विश्व की अक्षय विभूति हो।

'आज के पहले मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं कहा था, कारण यह था—पगडडी; मेरी स्पष्टवादिता को क्षमा करना—कि तुम्हारी आत्मा सोई हुई थी, केवल शरीर जगा था। तुम नहीं समझती थी कि तुम कौन हो, किसलिए यहाँ आई हो, तुम संसार के पुराने पथ पर चलना चाहती थी। आज चाहे जिस कारण से हो, तुम्हें अपने वर्तमान जीवन से असंतोष हो गया है; तुम्हें अपने से घृणा हो आई है। आज तुम अनंत में कूदने जा रही हो, संसार में कुछ करने जा रही हो, तुम्हारी आत्मा जग उठी है। इन बातों को कहने का मुझे आज ही अवसर मिला है।"

"पगडंडी' तुम ऐसा न समझना कि मैं तुमसे स्नेह नहीं करता, उससे भी अधिक मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ फिर भी अपने व्यक्तित्व को तुम्हारे पथ में खड़ा करके मैं तुम्हारी आत्मा की प्रगति को रोकना नहीं चाहता। मैं तुम्हारी चेतना में अपनी छाया डाल कर उसे मलिन नहीं करना चाहता। तुम्हारी संगीत लहरों में अपवादी स्वर बन कर उसे बेसुरा बनाना नहीं चाहता ! मैं बड़े उल्लास से तुम्हें यहाँ से विदा करता हूँ। जाओ—संसार में जहाँ अधिक-से-अधिक तुम्हारा उपयोग हो सके, वहाँ जाओ और अपने जीवन को सार्थक बनाओ —यही मेरी कामना है, यही मेरा संदेश है, यही मेरा...क्षमा करना आशीर्वाद है।'

'केवल एक बात और कहनी है मेरी हृदयहीनता को भूल जाना—हो सके तो क्षमा कर देना। मेरे भी हृदय है, उसमें भी थोड़ा रस है, पर मैंने जान बूझ कर उसे सुखा दिया। उसे आँखों में नहीं आने दिया, ओठों पर से पोंछ डाला। तुम्हारे कर्तव्य-पथ को मैं अपने आँसुओं से गीला नहीं बनाना चाहता—पगडंडी, मेरी व्यथा समझने की कोशिश करना, यदि न समझ पाओ तो...तो फिर सब कुछ भूल जाना।

'संसार तुम्हारी राह देख रहा है, अनंत तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है! जाओ, अपना कर्तव्य पालन करो। संसार तुम्हें कुचले तो तड़पना नहीं, भूल जाये तो सिसकना नहीं! भूले हुए 'पथिकों को घर पहुँचा देना, जो घर छोड़ कर विदेश जाना चाहते हों उनकी सहायता करना, जब तक जीना खुश रहना, कभी किसी के लिए रोना नहीं और—एक बात और-यदि तुम्हारे हृदय में कभी प्रेम की भावना आ जाय तो कोशिश करके, अपने अस्तित्व का सारा बल लगा कर, उसे निकाल डालना। यदि न निकाल सकी तो फिर वहाँ से कहीं दूर चली जाना।

पगडंडी! विदा! तुम अपने ज्योतिर्मय भविष्य में अपने धुँधले अतीत को डुबो देना। सब कुछ भूल जाना—घट दादा और रामी के कुआँ को भी भूल जाना! केवल यही याद रखना कि तुम कौन हो और तुम्हारा कर्तव्य क्या है—बस जाओ; विदा!—ईश्वर तुम्हें बल दे।''

कुआँ चुप हो गया। आधी रात की स्वप्निल नीरवता में जान पड़ता था उसका स्वर अब भी गूँज रहा हो, शब्द अन्तरिक्ष में अब भी घुमड़ते फिरते हों। मैं कुछ बोल नहीं सकी। तंद्रा-सी छा गयी, काठ-सा मार गया। उसके अन्तिम शब्द अर्धरात्रि के शून्य अन्धकार में बिजली के अक्षरों में मानो चारों ओर लिखे हुए-से उग रहे थे—बस जाओ; विदा ईश्वर तुम्हें बल दे।

ठीक-ठीक याद नहीं आता; कितने दिन हुए; फिर भी एक युग-सा बीत गया। मेरी आँखों के सामने वह स्वरूप आज भी रह-रह कर

नाच उठता है, कानों में वे शब्द भी रह-रह कर गूँज उठते हैं।

अब मैं राजधानी का राजमार्ग हूँ। दोनों ओर सहेलियों की तरह फुट-पाथ हैं; धूप और वर्षा से बचने के लिये दोनों ओर वृक्षों की कतारें हैं; रोशनी के बिजली के खम्भे हैं; और न जाने विभव-विलास की कितनी चीज़ें हैं। मेरा शृंगार होता है, मेरी देख रेख में हजारों रुपए खर्च किए जाते हैं; राज-महिषी की तरह मेरा सत्कार होता है, जहाँ तक दृष्टि जाती है—बस मैं ही मैं हूँ।

उत्तरदायित्व भी कम नहीं है। मैं शहर की धमनी हूँ, इसका रक्त प्रवाह मुझी से होकर चारों ओर दौड़ता है। मैं सभ्यता का स्तंभ हूँ, राज्य-सत्ता का प्राण हूँ। इतनी भीड़ रहती है कि सोचने को फ़ुर्सत भी नहीं मिलती। जन-समुद्र की अनंत लहरें मुझे कुचलती हुई एक ओर से दूसरी ओर निकल जाती हैं, मैं उफ़ तक नहीं करती। इतनी भीड़ में मुझे अपना कहने वाला एक भी नहीं, एक क्षण के लिए भी मेरा होने वाला कोई नहीं। मेरे जलते हुए निर्विश्राम जीवन पर सहानुभूति की दो बूँद छिड़क दे, ऐसा कोई नहीं फिर मैं व्यथित नहीं होती; खुश रहने की कोशिश करती हूँ। वेदना के शोलों पर मुस्कराहट की राख बिखेरती हूँ, ओठों के हृदय को छिपाए रहती हूँ। जहाँ तक होता है उसने जो कुछ कहा था सब कुछ करती हूँ। केवल एक ही बात नहीं होती, उसे भूल नहीं पाती!

अमराई की छाया में घासों और पत्तों पर यह जीवन, पक्षियों के गाने लताओं का झगड़ा, बट दादा की कहानियाँ और...और क्या कहूँ? कितनी बातें हैं भुलाई नहीं जा सकतीं! मेरे जीवन-संगीत की तान लौट कर सम पर आती है, आकर फिर लौट जाती है, पर किसी का सर नहीं हिलता!

यह पुराना इतिहास है। कोई क्या जाने! एक समय था जब मैं ऐसी नहीं थी!